प्रथम वार
१९५१

लेखक का वक्तव्य

निबन्ध-लेखन हाई स्कूल, रत्न, प्रवेशिका आदि परीक्षाओं के लिये एक आवश्यक विषय है। बालक जब तक अपने भावों की स्वयं अभिव्यक्ति न कर सके तब तक उसका पढ़ना सार्थक नहीं होता। भावों की अभिव्यक्ति के लिये शिक्षा और अभ्यास की नितान्त आवश्यकता है। शिक्षा और अभ्यास द्वारा प्रतिभा की कमी की भी किसी अंश में पूर्ति हो जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है कि विद्यार्थी-गण इसके सहारे निबन्ध-लेखन का अभ्यास कर सकें। इसमें प्रायः सभी परीक्षोपयोगी विषयों के सरल भाषा में छोटे-छोटे निबन्ध रक्खे गये हैं। भाषा इतनी सरल है कि विद्यार्थी सुगमता पूर्वक उसका अनुकरण कर सकते हैं। विद्यार्थियों को चाहिये कि वे निबन्धों को रटें नहीं, अपितु उन्हें पथ-प्रदर्शक के रूप में ग्रहण करें। इनसे सामग्री एकत्रित करके उसके आधार पर स्वतंत्र निबन्ध लिखें और अपना अभ्यास बढ़ावें। जिस प्रकार पानी में पैर दिये बिना तैरना नहीं आता उसी प्रकार निबन्ध लिखने का अभ्यास किये बिना निबन्ध लिखना नहीं आता।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू गुलाबराय जी, एम० ए० का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक का संशोधन किया है और निबन्धों के विषय में मुझे अपने बहुमूल्य सुझाव दिये हैं।

—कर्मवीर मिठास

विषय-सूची

प्रस्तावना

निबन्ध-रचना

निबन्ध की ठीक-ठीक परिभाषा देना तो कठिन कार्य है क्योंकि उसके बोध में समय-समय पर हेर-फेर होता रहा है किन्तु मोटे रूप में हम कह सकते हैं कि किसी विषय पर आकर्षक और प्रभावपूर्ण शैली में एक निजीपन के साथ लिखे हुए विचारों और भावों की क्रम-बद्ध गद्य-रचना को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध-लेखन में लेखक को विचारों के प्रकट करने में पूरी स्वतंत्रता रहती है। यह आवश्यक नहीं कि किसी विषय पर निबन्ध लिखते समय लेखक सर्वमान्य मत का ही समर्थन करे। उसे अपने निबन्ध में अपने व्यक्तित्व की छाप लगाने का पूरा-पूरा अधिकार रहता है और जो लेखक अपने इस अधिकार का जितना ही अधिक प्रयोग करता है, उसके निबन्ध में उतनी ही अधिक सजीवता रहती है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि लेखक चाहे जैसे अनर्गल विचारों को प्रकट करदे। विचारों के प्रतिपादन में उन्हीं के अनुरूप शैली एवं तर्क की आवश्यकता होती है। तर्क-हीन ढंग और अनुपयुक्त शैली के अभाव में विचार अनर्गल ही माने जायँगे। किसी निबन्ध की उत्तमता, लेखक के भाव, विचार, भाषा, शैली आदि कई बातों पर निर्भर रहती है। निबन्ध-रचना मे लेखक को विचारों की जितनी स्वतंत्रता रहती है, उनके व्यक्त करने के

ढंग में वह उतना ही परतंत्र होता है। अतः निवन्ध-लेखन एक कला है, जो गहन अध्ययन और निरन्तर अभ्यास से सीखी जाती है।

निबन्ध के विषय में विद्यार्थियों के लिये कुछ आवश्यक बातें

प्रायः देखा जाता है कि अधिकांश विद्यार्थी निवन्ध-लेखन की उपेक्षा करते हैं। वे समझ लेते हैं कि यह कोई कठिन कार्य नहीं और न इसे सीखने की ही कोई आवश्यकता है। केवल एक प्रश्न के उत्तर देने के लिये वे अधिक माथा-पच्ची करना व्यर्थ समझते हैं। यह बड़ी भूल है। परीक्षा के सभी प्रश्नों के उत्तर देने में निवन्ध-लेखन कला की आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्रश्न एक प्रकार से एक निवन्ध ही होता है। किसी भी प्रश्न के उत्तर देने में जितनी विपय के ज्ञान की आवश्यकता है उतनी ही उस ज्ञान को व्यक्त करने के ढंग की है। प्राय देखा जाता है कि वहुत से विद्यार्थी अपने विषय का अच्छा अध्ययन कर लेते हैं और पुस्तकों की कोई बात शेप नहीं रहती किन्तु परीक्षा-फल निकलने पर उन्हें आशा से बहुत ही कम अंक प्राप्त होते हैं। कम अंक प्राप्त होने का दोपारोपण वे परीक्षक पर करने लगते हैं। दूसरी ओर ऐसे विद्यार्थी भी होते हैं जो अपने विपय की पूरी पुस्तकें भी नहीं पढ़ पाते और परीक्षा के लिये वे पूर्ण रूप से तैयार नहीं होते, परन्तु परीक्षा-फल में उन्हें अच्छे अंक प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसका एक मात्र विद्यार्थियों की वह योग्यंता है जिसके द्वारा वे अपने संचित ज्ञान को भाषा में व्यक्त करते हैं। परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिये जितनी आवश्यकता विषय के ज्ञान की है, उतनी ही उस

ज्ञान के व्यक्त करने की योग्यता अथवा ढंग की है। एक के अभाव में दूसरे का महत्व बहुत कम रह जाता है। अतः विद्यार्थियों के लिये रचना शैली का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। उनकी सफलता बहुत कुछ निबन्ध-लेखन-कला पर निर्भर रहती है। संक्षेप में यहाँ निबन्ध-लेखन के विषय में कुछ आवश्यक बातें दी जाती हैं :—

आकार—निबन्धों के आकार भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ निबन्ध बड़े होते हैं और कुछ छोटे। छोटे निबन्ध बड़े निबन्धों की अपेक्षा अधिक आकर्षक और प्रभावोत्पादक होते हैं। बड़े निबन्धों में विचार-शृंखला व्यवस्थित नहीं रह पाती। विद्यार्थियों के लिये परीक्षा में आये हुए निबन्ध का आकार पाँच-छः पृष्ठ से अधिक नहीं होना चाहिए।

निबन्ध-सामग्री—किसी विषय पर निबन्ध लिखने के लिये निबन्ध-सामग्री का होना आवश्यक है। बिना सामग्री के निबन्ध लिखा ही नहीं जा सकता। अतः उस विषय पर जितने ही अधिक विचार एकत्रित किये जा सकेंगे, निबन्ध उतना ही अधिक उत्तम होगा। विचार-शक्ति के लिये विस्तृत अध्ययन और सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता है। जिस विषय पर लेखक का जितना ही अधिक अध्ययन होगा, उस पर उतने ही अधिक विचार उसके मस्तिष्क में आ सकते हैं। विद्यार्थी को जिस विषय पर निबन्ध लिखना हो उस विषय पर उसे पहिले रूप-रेखा बना लेनी चाहिए। भिन्न-भिन्न प्रश्न वह अपने आप से पूछे और उन्हें एक कागज पर लिख ले। उदाहरणार्थ, यदि 'व्यायाम को उपयोगिता' विषय पर निबन्ध लिखना हो तो इस प्रकार के प्रश्न मस्तिष्क में आ सकते हैं:—

(१ व्यायाम किसे कहते हैं ?
(२) शारीरिक परिश्रम और व्यायाम में क्या भेद है ?
(३) व्यायाम का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
(४) व्यायाम का मन पर कैसा प्रभाव पड़ता है ?
(५) व्यायाम का चरित्र से क्या सम्बन्ध है ?
(६) व्यायाम क्यों करना चाहिये ?
(७) व्यायाम से क्या-क्या लाभ हैं ?
(८) व्यायाम-प्रिय कौन-कौन प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं ?
(९) व्यायाम कितने प्रकार से किया जा सकता है ?
(१०) व्यायाम किस समय में करना चाहिये ?
(११) व्यायाम-सम्बन्धी क्या नियम हैं ?
(१२) व्यायाम न करने वालों को क्या हानि होती है ?
आदि।

इस प्रकार निबन्ध की रूप-रेखा बना लेनी चाहिये और रूप-रेखा की सभी बातें क्रम-बद्ध करके लिख लेनी चाहिये। फिर एक-एक बात को निबन्ध में उचित विस्तार के साथ लिखना चाहिये। न तो वर्णन और विवेचन इतना सूक्ष्म और संक्षिप्त हो कि समझ में ही न आवे और न इतना विस्तृत हो कि पढ़ते-पढ़ते जी ऊबने लगे। जहाँ तक हो सके एक परिच्छेद (पैराग्राफ) में एक ही बात पूरी होना चाहिये। यह भी स्मरण रखने की बात है कि निबन्ध का आरम्भ, मध्य और अन्त यथाक्रम हो। यदि किसी महापुरुष के जीवन पर निबन्ध लिखना हो तो आरम्भ में उसके जन्म, शिक्षा और बाल्यावस्था की घटनाओं का वर्णन होगा। मध्य में, उस महा पुरुष के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कार्यों का और अन्त में उसकी मृत्यु एवं उसके महत्व और चरित्र का वर्णन होगा। इस दृष्टि से किसी भी निबन्ध के तीन भाग किये जा सकते हैं:—

आरम्भ या प्रस्तावना—इस भाग में विषय की कुछ प्रारम्भिक बातों का समावेश होता है। कुछ निबन्धों में विषय की परिभाषा, कुछ में महत्व, कुछ में किसी कविता की पंक्तियाँ, कुछ में किसी प्राकृतिक दृश्य का चित्रण के साथ निबन्ध प्रारम्भ करना चाहिये। निबन्ध प्रारम्भ करने के विषय में कोई नियम नहीं दिया जा सकता है यह तो केवल विद्यार्थी की सूझ और विषय के ऊपर निर्भर है। आरम्भ, आकर्षक होना चाहिये, जिससे पढ़ने वाले की उत्सुकता बढ़ जाय और वह निबन्ध पढ़ने के लिये लालायित हो उठे। विद्यार्थियों के लिये यह कार्य कुछ कठिन है, परन्तु निरंतर अभ्यास से सभी कुछ सीखा जा सकता है। निबन्ध कई प्रकार से आरम्भ किय जा सकता है:—

(१) निबन्ध के विषय की परिभाषा देकर।

(२) किसी सुन्दर कविता या लोकोक्ति को लिख कर।

(३) एक दम बिना किसी घुमाव फिराव के विषय का प्रतिपादन करके।

(४) किसी प्राकृतिक दृश्य के चित्रण से।

उपर्युक्त किसी भी ढंग से निबन्ध शुरू किया जाय, परन्तु प्रस्तावना विषय के अनुकूल हो और प्रभावोत्पादक शैली में हो, यही बात अधिक ध्यान देने की हैं।

निबन्ध का मध्य

निबन्ध का मध्य-भाग ही विशेष महत्व रखता है अतः इस पर भी बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। रूप-रेखा की शेष बातें (प्रस्तावना और उप संहार को छोड़ कर) मध्य-भाग में क्रम से आनी चाहिये। प्रत्येक बात के लिये एक या अधिक परिच्छेद (पैराग्राफ) होने चाहिये।

जो बात अधिक महत्व की हो उसे विस्तार से और जो कम महत्व की हो उसे संक्षेप में लिखना चाहिये। विषय के बाहर की कोई बात का आना उचित नहीं समझा जाता। विचार व्यवस्थित और क्रमबद्ध हों तथा तर्क पूर्ण ढंग से उनकी व्याख्या करते हुए आगे बढ़ना चाहिये। किसी एक ही बात को घुमा-फिरा कर कई बार लिखने के दोष से बचना वांछनीय है। लोकोक्ति, मुहावरे, उदाहरण, उद्धरण आदि का समुचित प्रयोग करने से निबन्ध में रोचकता आ जाती है और भाषा, साहित्यिक बन जाती है।

निबन्ध का अंत या उपसंहार

आरम्भ की ही भाँति, निबन्ध का अन्त करना कठिन है और यह भी अभ्यास से आता है। निबन्ध का आरम्भ यदि अच्छे ढंग से किया जाता है तो पाठक की निबन्ध पढ़ने की उत्सुकता बढ़ जाती है, इसी प्रकार यदि निबन्ध का अन्त अच्छे ढंग से किया जाता है तो पाठक की उत्सुकता की परितृप्ति हो जाती है और निबन्ध के अन्तिम वाक्य बहुत देर तक पाठक के कान में गूँजते रहते हैं। यदि अन्त, एक दम कर दिया जाय तो पढ़ने वाले को एक झटका सा लगता है और वह अनुभव करने लगता है कि बात अधूरी ही रह गई। निबन्ध का मध्य-भाग जब अपने पूरे उत्कर्ष पर पहुँच जाय, तभी लेखक को उपसंहार का प्रारम्भ करना चाहिये और आरम्भिक दो चार पंक्तियों में ही यह प्रकट कर देना चाहिये कि अब वह निबन्ध के अन्त की ओर जा रहा है। फिर भी अन्त ऐसे ढंग से किया जाय जिससे पाठक का आनन्द अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाय। उपसंहार के विषय में भी कोई निर्धारित नियमावली नहीं है। विषय के अनुकूल,

अपनी सहज बुद्धि से ही निवन्ध का अन्त किया जा सकता है। कुछ लोग विषय का सारांश देकर निवन्ध का अन्त कर देते हैं, कुछ परिणाम निकाल कर रख देते हैं। कुछ अपनी सम्मति अथवा शिक्षा देकर अन्त करते हैं। कुछ ऐसे भी निबंध होते हैं जिनके विषय का महत्व अथवा भविष्य, उपसंहार में बतलाना अच्छा होता है। विद्यार्थियों के लिये, परीक्षा के दृष्टिकोण से तो निवन्ध का अन्त अत्यन्त ही महत्व पूर्ण है क्योंकि अन्तिम पैराग्राफ का ही!पाठक के ऊपर विशेष प्रभाव पड़ता है।

भाषा और शैली

निवन्ध-लेखक की सामग्री कैसी ही उत्तम क्यों न हो, उसके भाव, विचार और कल्पना कितनी ही परिपक्व और अनूठी क्यों न हो, जब तक उसकी कृति में रूप-सौंदर्य नहीं आयेगा तब तक वह उत्तमता की श्रेणी में नहीं गिनी जायगी। निवन्ध में रूप-सौंदर्य लाने के लिये अच्छी भाषा और शैली की आवश्यकता है। जिस प्रकार आभूषणों से स्त्री का सौंदर्य और भी अधिक बढ़ जाता है उसी प्रकार निवन्ध की आत्मा सुन्दर भाषा और शैली के प्रयोग से चमकने लगती है। शैली का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग भाषा है। क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से भाषा बिगड़ जाती है और जो विद्यार्थी ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। भाषा सीधी-साधी और आडंबर शून्य होनी चाहिये। भाषा में धारा प्रवाह हो जिससे पाठक को कोई रुकावट अनुभव न हो।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने रचना-चमत्कार को ही शैली बतलाया है। किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उनकी ध्वनि

आदि का नाम ही शैली है। भाव, विचार और कल्पना तो लेखक में स्वाभाविक अवस्था में वर्त्तमान रहती है और साथ ही उन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी उसमें रहती है। यदि इस शक्ति को बढ़ाकर ऐसा उन्नत कर लिया जाय जिससे भाव, विचार और कल्पना प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त हो सकें तो यही शक्ति साहित्य में शैली कहलायेगी। शैली में शब्दों का बड़ा महत्व होता है। भाषा ऐसे सार्थक-शब्द-समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होते हैं। अतः भाषा की मुख्य वस्तु शब्द और वाक्य हैं जिनके ठीक रीति से प्रयोग करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्व समझना चाहिये। जिन लेखकों की कृति में संगठित शैली का अभाव होता है। उनके लेखों में शब्दाडंबर अधिक होता है। और भावों की कमी रहती है। उनके बहुत से शब्द भी भावों को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर पाते। परन्तु प्रौढ़ लेखकों की रचनाओं में भावों की अधिकता तथा शब्दों की कमी स्पष्ट देख पड़ती है। ऐसे लेखक उपयुक्त शब्द ग्रहण करने, थोड़े में बड़ी-बड़ी गंभीर और भावपूर्ण बातें कहने और सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को प्रदर्शित करने में समर्थ होते हैं। निबन्ध लिखने के संबंध में सबसे पहली बात यह है कि शब्दों का उपयुक्त प्रयोग किया जाय। जिस भाव या विचार को प्रकट करना हो, ठीक उसी को प्रत्यक्ष करने वाले शब्दों का अनुपयुक्त प्रयोग वाक्यों की सुंदरता को नष्ट करता और लेखक के शब्द भंडार की अपूर्णता अथवा उसकी असावधानी प्रकट करता है। अतएव वाक्यों में प्रयोग करने के लिये शब्दों का चुनाव बड़े ध्यान और विवेचन से करना वांछनीय है। यह आवश्यक नहीं कि जितने भी शब्द प्रयोग

किये जायँ वे सब शुद्ध हिन्दी के ही हों। कहीं कहीं उर्दू या अँगरेजी के ऐसे शब्द रक्खे जा सकते हैं जो अधिक प्रचार में आ गये हैं।

शब्दों के पश्चात् निबन्ध मे वाक्य रचना का स्थान है। वाक्य-रचना ऐसी हो जिससे अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके। वाक्य-रचना में ध्यान देने योग्य बात शब्दों का संघटन तथा भाषा की प्रांजलता है। जब किसी वाक्य में संघटन का अभाव होता है तो मुख्य भाव प्रायः लुप्त सा हो जाता है और पढ़ने वाला वाक्य की जटिलता में पड़कर निरुत्साहित हो बैठता है। वाक्य सीधे सादे और व्याकरणानुकूल हों जिनसे लेखक का भाव पूर्ण रूप से व्यक्त हो जाय और पाठक सरलता से भाव को पकड़ता चले। वाक्यों की लम्बाई या विस्तार के सम्बन्ध में कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। यह तो लेखक के अभ्यास, कौशल और सहजबुद्धि पर निर्भर है। विद्यार्थियों को अपने निबन्धों में यथा संभव छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करना चाहिये। बड़े वाक्यों में, वाक्यांशों के संबंध का निर्वाह करना कठिन हो जाता है।

शैली में अलंकृत वाक्य-रचना के प्रयोग से भाषा में सौन्दर्य आ जाता है पर उसकी अधिकता उसे नष्ट भी कर देती है। अलंकारों के प्रयोग में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है अतः जो विद्यार्थी उन्हें ठीक समझते हों वे ही प्रयोग कर सकते हैं।

लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भी निबन्ध की रोचकता बढ़ जाती है और पढ़ने वाले को अधिक आनंद आता है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि उनका प्रयोग ठीक ठीक किया जाय। कवियों की कुछ कविताओं

और महापुरुषों के वाक्यों का प्रयोग भी निबन्ध में यत्र-तत्र किया जा सकता है। इनसे भी भाषा में सजीवता आ जाती है और पढ़ने वाले पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। पर महापुरुषों के वाक्यों अथवा उक्तियों और कविताओं का उपयोग मर्यादा से अधिक नहीं होनां चाहिये उनके अधिक प्रयोग से निबन्ध-लेखक का व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह केवल दूसरों की बातें ही दुहरा रहा है। अतएव लेखक को विद्वानों के वचन कहीं कहीं पर ही इस ढंग से देने चाहिये जिससे वे उसी के विचारों का समर्थन करते जान पड़ें।

निबन्ध में विषय को स्पष्ट करने के लिये उदाहरण और दृष्टान्त देने की भी आवश्यकता होती है। किसी सिद्धान्त या मत के प्रतिपादन में उदाहरण देने से बड़ी सहायता मिलती है और निबन्ध में रोचकता आ जाती है। गंभीर और सूक्ष्म विचार, उदाहरण द्वारा सरलता से समझाये जा सकते हैं। पर अधिक उदाहरणों से निबन्ध की शोभा कम हो जाती है।

निबन्ध की रोचकता बढ़ाने के लिये कहीं-कहीं हास्य और विनोद के छींटे डालने की भी आवश्यकता होती है। गंभीर विषयों के ऊपर लिखे गये निबंधों में तो विनोद पूर्ण वाक्यों का प्रयोग यथा-संभव अधिक ही होना चाहिये जिससे कि पाठक का मन लगा रहे। हास्य अथवा विनोद भद्दा और अश्लील न होना चाहिये।

निबन्ध के भेद

विषय-भेद के अनुसार निबन्ध कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक इत्यादि। परन्तु साधारणतः

सभी प्रकार के निबन्ध तीन भेदों में ही आ सकते हैं जो इस प्रकार हैं :—

(१) वर्णनात्मक (Descriptive) निबन्ध।
(२) विवरणात्मक (Narative) निबन्ध।
(३) विचारात्मक (Reflective) निबन्ध।

इनके अतिरिक्त कुछ निबन्ध भावात्मक भी होते हैं जो गद्य-काव्य के अधिक निकट आते हैं। वियोगी हरि, राय कृष्णदास तथा महाराज कुमार डाक्टर रघुवीरसिंह के कुछ निबन्ध इसी कोटि के कहे जा सकते हैं।

वर्णनात्मक-निबन्ध

इस प्रकार के निबन्धों में किसी दृश्य, स्थान, भवन, यात्रा, जीवित अथवा अजीवित वस्तु का वर्णन किया जाता है। ऐसे निबन्ध की सफलता, वर्णित वस्तु के सजीव एवं यथार्थ चित्रण पर निर्भर रहती है। वस्तु का वर्णन इस ढंग से होना चाहिये जिससे पढ़ने वाले के नेत्रों के सम्मुख उसका चित्र सा खिंच जाय और उपस्थित विषय पाठक को दीखने सा लगे। किसी वस्तु का जीता जागता चित्र तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब कि उस वस्तु को लेखक ने स्वयं देखा हो और उससे प्रभावित हुआ हो विद्यार्थियों को देखी हुई वस्तुओं का ही वर्णन अपने निबन्ध में करना चाहिये। ऐसे निबन्ध के लिये सूक्ष्म निरीक्षण की बड़ी आवश्यकता है। प्रत्येक वस्तु को बारीकी से देखना चाहिये तभी उसका यथार्थ वर्णन किया जा सकता है। जब कोरी कल्पना के आधार पर किसी वस्तु या दृश्य का वर्णन किया जाता है तो वह स्पष्ट ही फीका लगने लगता है और उसका बनावटीपन प्रकट हो जाता हे। ताजमहल, कुतुब-मीनार

हाथी, घोड़ा, कोई मेला, हिमालय के प्राकृतिक दृश्य, प्रदर्शनी आदि के वर्णन इस प्रकार के निबन्धों के विषय बनते हैं।

विवरणात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्धों में किसी बीती हुई घटना आदि का वर्णन किया जाता है। आत्म-कथा, जीवन-चरित्र, ऐतिहासिक घटना आदि विषय इसी के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार के निबन्धों में काल-क्रम का ध्यान रखना पड़ता है। जो घटनाएँ पहले होती हैं उनका वर्णन निबन्ध के आदि में होता है और पीछे की घटनाएँ क्रमशः बाद में लिखी जाती हैं। जीवन-चरित्र लिखने में जन्म और बाल्यकाल की घटनाएँ पहिले, जीवन-सम्बन्धी कार्य, बाद में तथा मृत्यु सबसे अन्त में दी जाती है। यदि ऐसा न किया जाय तो निबन्ध भद्दा लगने लगेगा। ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में यदि इतिहासकारों की भाँति वर्णन किया जाय तो वह बड़ा ही शुष्क हो जायगा। निबन्ध-लेखन का कार्य इतिहासकार से भिन्न है। जब तक निबन्ध में रोचकता नहीं होगी, तब तक वह साहित्यिक नहीं कहला सकता। अतएव विद्यार्थियों को चाहिए कि वे विवरणात्मक निबन्धों को शुष्कता के दोष से बचाने के लिये उनमें कहावतों, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि के प्रयोग से रोचकता लाने का प्रयत्न करें। इस प्रकार के निबन्ध की सफलता कौतूहल के जाग्रत रखने में है। लेखक को ऐसी सजीवता और गतिमयता के साथ वर्णन करना चाहिए कि एक चल-चित्र सा पाठक के सामने उपस्थित हो जाय और वह यह जानने को उत्सुक रहे कि आगे क्या होता है।

विचारात्मक निबन्ध

इस प्रकार के निबन्ध में किसी अमूर्त विषय पर विचार

प्रकट किये जाते हैं जैसे, एकाग्रता, स्वावलम्बन, जीवन में अहिंसा का महत्व, हिन्दू-समाज के दोष, ग्राम्य-जीवन, भारत की नारी, मनुष्य जीवन में परिश्रम का महत्व आदि। वाद-विवाद और तर्क के विषय भी इसी श्रेणी में आते हैं। किसी विषय के पक्ष-प्रतिपक्ष का प्रतिपादन, किसी वस्तु या ग्रंथ के गुण दोष, समालोचना आदि अनेक बातें इसी कोटि के निबन्धों का विषय बनती हैं। इन निबन्धों में विचार तत्व का अधिक आश्रय लिया जाता है और भाँति भाँति के तर्कों एवं सिद्धांतों द्वारा अपने मत की पुष्टि की जाती है। वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक निबन्धों की अपेक्षा विचारात्मक निबन्ध लिखना कुछ कठिन होता है। ऐसे निबन्धों के लिये विद्यार्थियों को अपना अध्ययन विस्तृत करने और ज्ञान बढ़ाने की आवश्यकता है। विभिन्न विषयों पर पुस्तक पढ़ने, समाचार पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन एवं अभ्यास से उच्च-कोटि के विचारात्मक निबन्ध लिखे जा सकते हैं। विचारात्मक निबन्धों में आवश्यक नहीं कि सभी दृष्टिकोणों का समावेश हो तथापि विद्यार्थी को यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि उसका निबंध संयत और संतुलन पूर्ण हो विद्यार्थियों का काम किसी विशेष पक्ष की वकालत करना नहीं है, वरन् एक विवेकपूर्ण अध्ययन उपस्थित करना है।

निबन्ध लिखने के सम्बन्ध में कुछ ध्यान देने योग्य बातें

(१) निबन्ध लिखने से पहिले विषय पर कुछ समय तक विचार करके उसकी संक्षिप्त रूप-रेखा एक अलग कागज पर बना लेनी चाहिये। रूप रेखा की सभी बातें यथा-क्रम लिख लेनी चाहिये।

(२) निबन्ध की प्रस्तावना प्रभावोत्पादक ढङ्ग से होनी चाहिये ताकि पढ़ने वाले की उत्सुकता बढ़ जाय।

(३) निबन्ध के मध्य भाग में सभी आवश्यक बातें आ जानी चाहिये। प्रत्येक विचार तर्क पूर्ण ढंग से प्रकट करना चाहिये।

(४) भाषा शुद्ध और शैली रोचक होनी चाहिये। विषय की कोटि के अनुसार ही शैली ग्रहण कर लेनी चाहिये।

(५) भाषा को सजीव बनाने के लिये लोकोक्तियों और मुहावरों का यथा-स्थान उचित रूप से प्रयोग होना चाहिये। कहीं कहीं पर अपने मत की पुष्टि में उदाहरणों से भी काम लेना चाहिये। शब्दों की उपयुक्तता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(६) एक बात समाप्त होने पर दूसरा पैराग्राफ प्रारम्भ कर देना चाहिये और अर्द्ध-विराम तथा पूर्ण-विराम चिह्नों के यथावत प्रयोग के साथ, व्याकरण के नियमों का भी पूरा पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। अच्छा चौड़ा पार्श्व भाग, स्पष्ट लेखन, शुद्ध अक्षर विन्यास तथा अनुच्छेदों के उपयुक्त शीर्षक, इन छोटी-छोटी बातों के ध्यान रखने से लेख बहुत कुछ सुधर सकता है।

(७) विदेशी भाषाओं के चालू शब्द भी निबन्ध में लिये जायँ परन्तु मातृ-भाषा के शब्दों का ही अधिकाँश में प्रयोग होना चाहिये।

(८) यदि किसी अँगरेजी की कहावत या मुहावरे का निबन्ध में देना आवश्यक हो तो उसका हिन्दी की प्रकृति और शैली के अनुकूल ही अनुवाद करना चाहिये। प्रत्येक देश के मुहावरे उसके वातावरण से सम्बन्ध रखते हैं। मौन भंग करने के लिये अँगरेजी में 'Breaking the ice' मुहावरे का प्रयोग होता

है, यदि इसका शाब्दिक अनुवाद किया जाय तो वह हास्यास्पद हो जायगा।

(९) उपसंहार में विशेष सतर्क होने की आवश्यकता है। निबन्ध का अन्त अच्छे ढङ्ग से होना चाहिये।

(१०) निबन्ध पूरा लिखकर उसे एक बार अवश्य पढ़ लेना चाहिये।

संक्षेप में हमको अच्छे निबन्ध के लिये विचारों की संगति और क्रम, भावों का नियमन एवं भाषा की व्याकरणानुकूलता और प्रवाहमयता आवश्यक है।

वर्षा ऋतु

—अजमेर बोर्ड १६४७

भारतवर्ष में वर्षा का महत्व—यों तो सभी देशों में वर्षा होती है और न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र ही इसके हानि-लाभ सामने आते हैं परन्तु भारतवर्ष में वर्षा ऋतु की कुछ निराली ही छटा है। अन्य देशों में, कहीं पूरे वर्ष वर्षा होती रहती है, कहीं शीत काल में होती है और कहीं जब कभी होती है। भारतवर्ष ही ऐसा देश है जहाँ पूरे तीन महीने सूर्य के प्रचण्ड ताप से तप कर सभी जीव-धारी वर्षा का हृदय से स्वागत करते हैं। यदि भारतवर्ष में ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षा का आगमन न होता, तो वर्षा ऋतु का इतना महत्व न होता। 'बिना दुख के सब सुक्ख निसार, बिना आँसू के जीवन भार' वाली पंक्तियाँ यहाँ चरितार्थ होती हैं। जिसने कभी मिर्चों के स्वाद का अनुभव न किया हो, वह गुड़ के मिठास को क्या जान सकता है। तात्पर्य यह है कि वर्षा से पूर्व ग्रीष्म-ऋतु की कठोरता वर्षा-ऋतु के माधुर्य को कई गुना बढ़ा देती है। आइये, वर्षा के आनन्दों से पहिले कुछ गर्मी के दुखों की अनुभूति कर लें।

ग्रीष्म का प्रकोप—आज से दो दिन पहिले क्या था? सारा संसार तवे की भाँति जल रहा था। लू के झोंके लगते

ही कानों के पर्दे फटे जाते थे। घर से निकलने को किसी का साहस नहीं होता था। बेचारे पशु और पक्षी प्यासे तड़-पते थे। सर, सरिता, जलाशय आदि सूख गये थे। हरियाली का कहीं नाम तक नहीं था। सभी काम काज बन्द थे। दस बजे से ही लोग अपने-अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द करके पंखा लेकर पड़ रहते थे। वन के हिंसक पशु भी अपने स्वभाव को छोड़कर निर्जीव से हुए कहीं वृक्षों के तले पड़ रहते थे। बिहारी की ये पंक्तियाँ कि "कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग, बाघ,

जगत तपोवन सौ कियो, दीरघ दाघ निदाघ।"

ग्रीष्म काल का कैसा भयंकर प्रभाव प्रकट करती हैं। सचमुच, गर्मी के कारण समूचा संसार तपोवन-सा लग उठा था।

वर्षा का आगमन—परन्तु आज वर्षा की प्रथम झड़ी ने ही क्या से क्या परिवर्तन ला दिया ? देखते ही देखते आकाश में बादल छा गये। वायु शीतल लगने लगी। सारा प्राणी मात्र जीवित सा हो गया। धड़ाधड़ पानी बरसने लगा और कुछ ही समय में जहाँ पृथ्वी से आग की लपटें उठती दिखलाई देती थीं, वहाँ पानी ही पानी भर गया। पृथ्वी एक ही साँस में अपनी महीनों की प्यास बुझाने का प्रयास करने लगी। पशु पक्षी भी स्वतंत्रता से खेतों में विचरण करने लगे और दादुर व केकी तो मानो अपने आनन्द को चिल्ला-चिल्ला कर सब को सुनाने लगे। जड़ और चेतन सभी के हृदयों में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। एक सिरे तक सिह-रन की एक लहर सी दौड़ गई। वर्षा क्या हुई, जीवन ही मिल गया। जल के महत्व को आज से अधिक किसी भी दिन इतना नहीं समझा गया था। इसीलिये, कदाचित जल का एक नाम जीवन भी रक्खा गया।

वर्षा ऋतु—वर्षा की प्रथम झड़ी के उपरान्त फिर तो वर्षा ऋतु प्रारम्भ ही हो जाती है और कभी-कभी लगातार कई दिन तक पानी बरसता रहता है। पृथ्वी पर कुछ ही दिनों में सर्वत्र ही हरियाली दिखाई देने लगती है। किसान मस्त होकर अपने हल बैल खेतों पर ले जाता है और कठिन परिश्रम में जुट पड़ता है। आकाश दिन भर बादलों से आच्छन्न रहता है। काली-काली घटायें उठती हैं और भयंकर गर्जन के साथ बरस पड़ती है। वर्षा काल में रात्रि का दृश्य तो बड़ा ही डरावना होता है। चन्द्रदेव के तो कभी कदाचित ही दर्शन होते हैं। खद्योतों की चमक से रात्रि के अंधकार की भयानकता का ही बोध होता है। दादुरी की टर्र-टर्र से रात्रि की निस्तब्धता का और भी अधिक उग्र रूप में आभास मिलता है। तिस पर बादलों का ताण्डव नृत्य तो प्रलयकारी हो जाता है। रात्रि के इस भयंकर दृश्य को देख कर जब मर्यादा पुरुषोत्तमराम के मुँह से यह निकला था कि,

घन घमण्ड गर्जत नभ घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

तब साधारण जनों के हृदयों में भय का संचार होने लगे तो आश्चर्य ही क्या ?

पावस ऋतु में सर्वत्र पानी की ही माया होती है। नदी, नाले उमड़ पड़ते हैं। जलाशय अपनी सीमा को तोड़ देते हैं। पर्वतीय नदियाँ तो बड़ा ही प्रचण्ड रूप धारण कर लेती हैं। उनके प्रवाह का शब्द दूर से ही भय उत्पन्न कर देता है और उनके निकट जाने का तो साहस ही नहीं होता। बड़े-बड़े वृक्षों को ये सरितायें एक ही झटके में उखाड़ कर फेंक देती हैं। यदि इनके मार्ग में कोई भूला भटका पशु या मनुष्य आ गया तो उसका तो अवशेष भी मिलना दुर्लभ होता है।

अधिक वर्षा होने पर मैदानी नदियों में बाढ़ आ जाती है और उनसे सैकड़ों ही गाँव बह जाते हैं, खेतों की फसल नष्ट हो जाती है और सहस्रों की ही संख्या में जीव-धारी नष्ट हो जाते हैं। जहाँ वर्षा ऋतु से प्राणी-मात्र में नये जीवन का संचार हो जाता है, वहाँ इसके आधिक्य से विनाश भी बहुत कुछ होता रहता है।

वर्षा से लाभ—वर्षा के आगमन से शरीर और मन को तो प्रसन्नता होती ही है, परन्तु इसके साथ ही व्यावहारिक रूप में भी बहुत से लाभ होते हैं। एक प्रकार से तो मनुष्यों और पशुओं का जीवन वर्षा के ऊपर ही निर्भर करता है। किसानों की जीविका इसी के ऊपर आधारित है। वर्ष भर की खेती वर्षा-ऋतु के जल पर ही अवलम्बित है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश के लिये तो वर्षा ऋतु का महत्व अत्यन्त ही अधिक है। वैसे तो सिंचाई के अन्य साधन भी हैं परन्तु उन साधनों का मूल स्रोत भी वर्षा का जल है। किसी वर्ष जब वर्षा नहीं होती है अथवा कम होती है तो सर्वत्र ही त्राहि-त्राहि मचने लगती है। देश में दुर्भिक्ष पड़ जाता है। हजारों और लाखों मनुष्य अन्न के अभाव से मर जाते हैं। पशुओं के लिये चारे की समस्या भी वर्षा के पानी से हल होती है। जिस प्रकार अन्न के ऊपर मनुष्यों का जीवन निर्भर है, उसी प्रकार पशु, चारे पर निर्भर करते हैं। वर्षा के जल से ही नदियों में पानी आता है। नदियों से सिंचाई का काम तो लिया ही जाता है परन्तु इसके साथ ही बहुत सी नदियाँ यातायात के लिये भी बहुत उपयोगी ठहरती हैं।

वर्षा से हानियाँ—जहाँ वर्षा से अनेकों लाभ हैं, वहाँ कुछ हानियाँ भी हैं परन्तु लाभ की अपेक्षा हानि बहुत कम हैं। अधिक वर्षा से खेती को भी हानि पहुँचती है। पौधों की

जड़ें गल जाती हैं और वे गिर पड़ते हैं। नदियों में बाढ़ के परिणाम-स्वरूप भी अपार क्षति उठानी पड़ती है। प्रतिवर्ष ही बहुत से मकान और वृक्ष गिर जाते हैं। वर्षा ऋतु में ही कुछ विषैले जानवर जैसे साँप, बिच्छू आदि निकल आते हैं। मच्छर तो वर्षा का ही कीड़ा है। मच्छर, मक्खी, डाँस इत्यादि कीड़ों से मलेरिया, हैजा आदि रोग फैल जाते हैं।

उपसंहार—सारांश यह है कि वर्षा ऋतु भारतवर्ष जैसे देश के लिये अत्यन्त ही आवश्यक है। शरीर और मन की प्रसन्नता के साथ हम भारतीयों का जीवन ही इस ऋतु के ऊपर निर्भर रहता है।

ताजमहल

प्रस्तावना—संसार के सप्त-आश्चर्यों में ताजमहल की गणना की जाती है। विश्व के कोने-कोने से इस विशाल भवन को देखने के लिये यात्री आते हैं और इस अद्भुत कृति को देखकर अपने नेत्रों को परितृप्त करते हैं। कदाचित ही संसार की अन्य किसी इमारत को इतना गौरव प्राप्त हुआ होगा। मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ के पत्नी-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण आज लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष के उपरान्त भी ताजमहल के रूप में ज्यों का त्यों विद्यमान है। प्रेम अमिट होता है, परन्तु प्रेम के स्थूल-रूप की अमिटता की कल्पना ताजमहल से पूर्व किसी ने नहीं की थी। कवीन्द्र रवीन्द्र ने ताजमहल को ठीक ही शाहजहाँ का प्रस्तरी-भूत अश्रु विन्दु कहा है।

यह विशाल और भव्य भवन आगरे में यमुना नदी के दाँयें किनारे पर स्थित है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग में मुग़ल बादशाह शाहजहाँ ने इसका निर्माण कराया था। शाहजहाँ और उसकी पत्नी मुमताज महल का प्रेम प्रसिद्ध था। साम्राज्ञी की परम अभिलाषा थी कि उसकी स्मृति को अमर बना दिया जाय। अपनी महत्वाकांक्षिणी पत्नी की इच्छा-पूर्त्ति के निमित्त प्रेमी शाहजहाँ ने ताजमहल के रूप में ऐसी प्रेम-प्रतिमा संसार में खड़ी कर दी जो उसकी प्रेयसि की स्मृति को यदि अमर नहीं तो युगों तक स्थायी अवश्य बनाये रख सकेगी।

निर्माण—कहा जाता है कि ताजमहल का नकशा शाहजहाँ ने स्वप्न में देखा था। अपने स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये उसने दूर-दूर से कुशल कारीगर बुलाये और सन् १६३१ में इस संसार-प्रसिद्ध इमारत के निर्माण का प्रारम्भ हुआ। देश के विभिन्न भागों से बहुमूल्य पत्थर तथा अन्य सामान मँगाया गया। बीस सहस्र से अधिक कारीगर और मजदूरों ने २० वर्ष से अधिक समय तक इसके निर्माण में कार्य किया फ्रान्स और इटली जैसे दूरस्थ देशों से भी कारीगरों के आने के विषय में कहा जाता है। बीस करोड़ से अधिक रुपया इसके निर्माण में व्यय हुआ। कुछ भी हो, यह भवन स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है।

प्रवेश द्वार और इमारत का वर्णन—ताजमहल की सुन्दरता का वर्णन शब्द की शक्ति के बाहर है। अनेकों लेखकों और कवियों ने इसकी प्रशंसा के गीत गाये हैं परन्तु यह कहना कि वे अपने प्रयास में सफल हुए, नितान्त भूल होगी। मुख्य भवन के बाहर लाल पत्थर का एक विशाल प्रवेश-द्वार है जिसमें होकर ताजमहल के प्रांगण में प्रविष्ट

होते हैं। प्रवेश द्वार की दीवालों में श्वेत पत्थर के अक्षरों में कुरान की आयतें इस अनुपात में अंकित हैं कि देखने वाले को वे समान आकार की लगती हैं। प्रवेश-द्वार ही में एक छोटा-सा अजायब घर है जिसमें मुगल बादशाहों के समय की बहुत सी वस्तुएँ यथा स्थान बड़ी व्यवस्था के साथ रक्खी हुई हैं। इस प्रवेश द्वार से ताजमहल तक पहुँचने के लिये पत्थर का एक चौड़ा मार्ग है जिसके मध्य में फ़व्वारों की पंक्ति से प्रस्फुरित एक जल-धारा है। मार्ग के दोनों ओर सर्व के एक ही आकार वाले सुन्दर वृक्ष क्रम से लगे हुए हैं जो शोक पूर्ण मुद्रा में भवन के मौन प्रहरी से प्रतीत होते हैं। इस वृक्ष-पंक्ति से हट कर इधर उधर के उद्यानों की हरी-भरी घास अत्यन्त ही आकर्षक दृश्य उपस्थित करती है। मार्ग में आगे चलकर एक बड़ा-सा रमणीक जल-कुंड है जिसमें कमल के विकसित पुष्पों और रंगीन मछलियों की क्रीड़ायें हृदय को प्रफुल्लित कर देती हैं। जलकुंड के चारों ओर संगमरमर की बेञ्चें पड़ी हुई हैं। इन पर बैठ कर दर्शक वृन्द जलकुण्ड और आस-पास के उद्यानों की शोभा निहारते हैं। यहाँ से ताजमहल का विशाल चबूतरा और मुख्य इमारत भी स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। जिस चबूतरे पर ताजमहल स्थित है वह अठारह फुट ऊँचा है और इसका क्षेत्रफल ३०० वर्ग फुट से भी अधिक है। चबूतरे के चारों कोनों पर संगमरमर से बनी हुई गगनचुम्बी चार मीनारें हैं। ये चारों मीनारें समान आकार की हैं तथा प्रत्येक की १३० फुट उँचाई है। मीनारों के भीतर चक्करदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जिन पर होकर दर्शक लोग मीनारों के ऊपर जा सकते हैं। ऊपर से नीचे का दृश्य बड़ा ही विचित्र लगता है। मीनारों के ऊपर बैठे हुए दर्शक को नीचे चबूतरे

पर चलते हुए व्यक्ति खिलौने जैसे लगते हैं बहुत थोड़े लोग ही इन मीनारों पर चढ़ने और नीचे की ओर दृष्टिपात करने का साहस कर पाते हैं। चबूतरे से मध्य भाग में ताजमहल का मुख्य भवन है। इस भवन का गुम्बद लगभग २५० फुट तक आकाश की ओर उठा हुआ है। संसार में इतना ऊँचा गुम्बद अन्यत्र कठिनाई से मिलेगा। इस गुम्बद के चारों ओर छोटे-छोटे चार गुम्बद और हैं जिनके अनुपात में मध्य गुम्बद की विशालता और भी अधिक बढ़ जाती है। समूची इमारत श्वेत संगमरमर से बनी हुई है जिसकी दीवारों पर काले पत्थर के अक्षरों में अंकित कुरान की आयतें बड़ी ही सुन्दर प्रतीत होती है। विभिन्न रंगों के पत्थरों से बने हुए भाँति-भाँति के बेल बूटे आज भी प्राचीन भारत की उत्कृष्ट पच्चीकारी कला का एक आदर्श उपस्थित कर रहे हैं।

समाधियों का वर्णन—बड़े गुम्बद के नीचे शाहजहाँ और मुमताज महल की समाधियाँ हैं जिन तक जाने के लिये ऊपर के चबूतरे से नीचे को सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर की समाधियाँ असली समाधियों की नकल मात्र हैं। शाहजहाँ की समाधि, मुमताजमहल की समाधि से कुछ ऊँची है। इन समाधियों के चारों ओर प्रदक्षिणा मार्ग है जिसके द्वारा दर्शक उनकी परिक्रमा करते हैं। इस स्थान पर इतना अन्धकार है कि वहाँ बिना मोमबत्ती अथवा लालटेन के कुछ दिखाई नहीं देता। असली समाधियों के तहखाने का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। वहाँ सुगन्धित अगर बत्तियों और लोभान के सुगन्धित धुँए से चित्त प्रसन्न हो जाता है। मोमबत्ती के प्रकाश में समाधियों की पच्चीकारी जगमगाने लगती है। तह-खाने में उपस्थित मुसलमान प्रहरी अपनी वेषभूषा एवं गति-विधि से अब भी मुगल बादशाहों के वैभव की

याद दिलाते हैं। मनुष्य चाहे जिस धर्म का हो समाधियों के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किये बिना नहीं रहता। वहाँ का वातावरण ही कुछ ऐसा है जो अनायास हृदय में श्रद्धा और भक्ति के भावों का संचार कर देता है और दर्शक अपनी साम्प्रदायिकता को भुला कर समाधियों के प्रति नत मस्तक हुए बिना नहीं रह सकता। समाधियों के ऊपर आकर गुम्बद के नीचे चारों ओर एक विस्तृत और चित्ताकर्षक प्रदक्षिणा मार्ग है। इस प्रदक्षिणा मार्ग में भी पत्थर की खुदाई और पच्चीकारी के अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलते हैं। दीवारों, कोनों, जालियों, द्वारो एवं महराबों इत्यादि का सादृश्य तथा अनुपात दर्शक को आश्चर्य चकित कर देता है।

अन्य दृश्य—ताजमहल के उत्तर में इसके चबूतरे को स्पर्श करती हुई यमुना नदी प्रवाहित हो रही है। चबूतरे पर खड़े होकर यमुना नदी के जल-प्रवाह का दृश्य बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता है। यमुना से परे दूर दूर तक फैले हुए खेत भी बड़े भले लगते हैं। मुख्य भवन के तीन ओर पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में परन्तु ताज के घेरे के भीतर रमणीक उद्यान हैं जिनमें अनेकों प्रकार के सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं और समूची भूमि में हरी-हरी घास की चादर फैली हुई है। गुलाब के रंग बिरंगे पुष्पों से उद्यान की शोभा और भी अधिक बढ़ जाती है। दर्शकों को उद्यानों की सैर करने और मखमली घास पर बैठ कर गपशप करने में विशेष आनन्द आता है। स्थान-स्थान पर नल और फौवारे लगे हुए हैं जिनका शीतल जल हृदय को परितृप्त कर देता है।

शरद पूर्णिमा की रात्रि में ताज की शोभा—यों तो सभी समय ताज महल की शोभा दर्शनीय है और प्रतिदिन ही यहाँ सैकड़ों यात्री आते रहते हैं, परन्त शरद-पूर्णिमा की

रात्रि को इसकी छटा वर्णनातीत हो जाती है। उस रात्रि के पूर्ण-चन्द्र की शुभ्र ज्योत्स्ना में ताज देदीप्य मान हो उठता है। दूर से देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है मानों इसे साँचे में ढाल कर खड़ा कर दिया हो। ताजमहल की दीवारों के बहुत से बहुमूल्य पत्थर चन्द्र-किरणों की आभा से हीरे के समान जगमगाते हुए आकाश के तारों की प्रतिद्वंद्विता करने लगते हैं। सहस्रों नर नारियों के समूह शरद-पूर्णिमा की रात्रि को ताज की अनिर्वचनीय शोभा से अपने नेत्रों को तृप्त करने वहाँ पहुँचते हैं। मध्य-निशा में जब कि सुधाकर अपने पूर्ण यौवन पर होता है ताजमहल के संगमरमर के शीतल चबूतरे पर चहल क़दमी करते हुए दर्शक अपने हृदयों में अपूर्व उल्लास और शान्ति का अनुभव करते हैं। स्त्री और पुरुष, बालक और वयस्क, धनी एवं निर्धन सभी तन्मय होकर ताज की शोभा एक टक निहारते हैं। यमुना के शान्त एवं निर्मल जल में ताजमहल का प्रतिबिम्ब अनूठे सौन्दर्य की उत्पत्ति करता है जिसे देखकर मुख पर आश्चर्य मिश्रित अलौकिक आनन्द की झलक देखी जाती है। दर्शकों के झुण्ड अपनी-अपनी टोली बना कर विभिन्न प्रकार से ताज के नीचे अपना मनोरंजन करते हैं। कवि, कविता करने में और चित्र-कार चित्र लेने में तल्लीन हो जाते हैं। कुछ साहसी नवयुवक कभी-कभी यमुना के निर्मल जल में नौका विहार करने निकल पड़ते हैं। कुछ गगन भेदी मीनारों की चोटियों पर जाकर अपना आसन लगा देते हैं। ताश, कविता पाठ, अन्त्याक्षरी, गायन आदि के विभिन्न साधनों द्वारा दर्शकगण अर्द्ध निशा तक ताजमहल के विस्तृत प्रांगण में क्रीड़ायें और मनोरंजन करते रहते हैं। वास्तव में शरद पूर्णिमा की रात्रि जैसी चहल पहल ताजमहल में फिर कभी नहीं होती।

उपसंहार—भारतवर्ष को ताजमहल के ऊपर गर्व है। भारतीय निर्माणकला और पच्चीकारी के इस उत्कृष्ट नमूने को देख कर विदेशी यात्री भी दाँतों तले उँगली दबा जाते हैं और आश्चर्य की बात तो यह है कि लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष के लम्बे समय में भी इसकी सुन्दरता में कोई अन्तर नहीं आया है। वर्षा, आतप, शीत, ओलों, वायु के झोंकों आदि प्रकृति की किन्हीं भी विनाशकारी शक्तियों का इस पर प्रभाव नहीं पड़ा है। इन सब को सहन करता हुआ, ताज-महल आज भी निश्चिन्त भाव से अपने प्राचीन गौरव को स्थिर किये हुए है। इसकी खुदाई, चित्रकारी, पच्चीकारी, कटाई और बनावट को देखकर मुगल कालीन वास्तुकला की श्रेष्ठता का परिचय मिलता है। शाहजहाँ के प्रेमी हृदय और उच्च कल्पना की यह प्रति मूर्ति है।

एक फ्रान्सीसी महिला ने ताजमहल को देखकर अपने पति से कहा था कि यदि वह उसकी कब्र पर ऐसी ही समाधि बनवा सके तो वह उसी समय प्राण त्यागने को तैयार है। वास्तव में विश्व के वक्षस्थल पर कदाचित ही किसी प्रेयसी को अपने प्रेमी से ऐसा दिव्य, ऐसा अलौकिक एवं ऐसा स्थायी स्मृति चिह्न उपहार में प्राप्त हुआ हो।

मित्र को पत्र किसी नगर के वर्णन पर

(बम्बई)

उ० प्र० बोर्ड १९४६

प्रिय महेश ! नमस्ते

आज तुम्हारा पत्र मिला। यह जानकर कि बड़े दिन की छुट्टियों में मेरे गाँव न आने पर तुम्हें अत्यन्त दुख हुआ, मुझे बड़ा ही खेद है। परन्तु यदि तुम मेरे न आने का कारण जान जाओगे तो कदाचित्, मेरा व्यवहार तुम्हारी दृष्टि में क्षम्य होगा। मित्र ! तुम यह तो जानते ही थे कि चिरकाल से मैं बम्बई नगर को देखने के लिए उत्सुक था और किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में था। इस वर्ष, अपनी छः मासिक परीक्षा में प्रथम आने पर, पिताजी से मैंने १००) रु० पुरुष्कार स्वरूप प्राप्त कर लिये थे। मेरा एक सहपाठी रमेश, अपने बड़े भाई के पास छुट्टियों में बम्बई जाने वाला था। उसने मुझसे एक दिन वैसे ही बम्बई चलने को कहा। छुट्टियाँ आ ही गई थीं, रुपये पास में थे, मैंने रमेश के साथ जाने का निश्चय कर लिया। रमेश के आश्चर्य और प्रसन्नता की सीमा न रही जब उसने अप्रत्याशित रूप से इस प्रकार, मेरा अपनी लम्बी यात्रा में साथ पा लिया। हम दोनों, बड़े दिन की छुट्टियों के प्रारम्भ होते ही बम्बई चले गये।

भाई ! मेरी इस यात्रा में यद्यपि कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हुई, और रमेश के भाई के घर बम्बई में मुझे सभी प्रकार की सुविधायें रहीं, परन्तु मुझे वहाँ तुम्हारा साहचर्य का अभाव प्रतिक्षण अखरता रहा। यदि तुम भी मेरे साथ होते तो कितना अच्छा रहता ! उस वैभव पूर्ण नगरी में मैंने क्या देखा और कैसा अनुभव किया, मैं तुम्हें बतलाये बिना कैसे रह सकता हूँ। अच्छा तो सुनो।

दिसम्बर का अन्तिम सप्ताह था, जब कि हम राजामण्डी स्टेशन से रेलगाड़ी में बम्बई के लिए सवार हुए। आगरे में कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। मैंने, रमेश के विरोध करने पर भी एक बड़ा-सा विस्तर शीत-देवता के प्रकोप से बचने के लिये अपने साथ ले लिया था। मैंने सोचा कि यदि बम्बई में इतनी सर्दी न भी हुई, तब भी रेल में २८ घण्टे के सफर के लिये जाड़े का बिस्तर आवश्यक होगा। मेरी यह सूझ काम कर गई नहीं तो रास्ते में ही अकड़ रहता। हमारी रेल की यात्रा भी बड़ी सुखप्रद और मनोरंजक रही। बड़े-बड़े मैदानों, हरे भरे लहलहाते खेतों, ऊँची-नीची चट्टानों और लम्बी गुफाओं को पार करते हुये हम दूसरे दिन बम्बई के विक्टोरिया टर्मीनस स्टेशन पर जा उतरे।

बम्बई के इस जंकशन को देख कर ही, मैं तो आश्चर्य चकित रह गया। यहाँ पर बीसियों ही प्लेटफार्म थे, और बीसियों ही गाड़ियाँ उनसे लगी हुई दिखलाई दे रही थीं। सहस्रों नरनारियों के झुण्ड स्टेशन के उस विस्तृत घेरे में आते-जाते दिखाई दे रहे थे। उस जंकशन पर अनजान व्यक्तियों के लिये, गाड़ी में बैठ जाना या स्टेशन से बाहर होजाना, बिना कुलियों की सहायता के असम्भव सा ही था। गाड़ियों की सीटी, यात्रियों की भगदड़, कुलियों की धर-पकड़ से मैं तो एक बार घबरा गया। यदि रमेश मेरे साथ न होता, तो जंकशन से बाहर निकलना ही मेरे लिये एक समस्या बन जाती। जैसे-तैसे रमेश के साथ, एक कुली पर अपना सामान रखवा कर मैं बाहर आया। रमेश ने एक घोड़ा गाड़ी जो स्टेशन के बाहर खड़ी हुई थी, किराये पर की और अपने भाई के मकान का पता बतलाते हुए, कोचवान से चलने के लिये कहा। रात्रि का आगमन हो चुका था और उस समय

बम्बई नगरी सहस्रों विद्युत-दीपों से जगमगाने लगी थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब कि मैंने यह अनुभव किया कि अभी एक दिन पहले आगरे में जहाँ हमारे हाथ-पैर ठण्ड से सिकुड़े जा रहे थे, वहाँ बम्बई में मुझे अपने कपड़ों में पसीना आ रहा था। मैंने अपना स्वेटर भी उतार दिया। बम्बई की गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं, विस्तृत सड़कों, वहाँ के नर नारियों की वेष-भूषा को देखने में ही मैं ऐसा आत्म-विस्मृत हो गया कि रमेश के भाई के घर तक पहुँच जाने का ध्यान मुझे तब हुआ जब कि रमेश ने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा कि अरे भाई! घोड़ा-गाड़ी में ही ऊँघते रहोगे या उतर कर घर भी चलना है। मैं जाग-सा उठा और अपना सामान लेकर एक बड़े से मकान में रमेश के पीछे हो लिया। बहुत-सी सीढ़ियाँ चढ़ने के पश्चात् रमेश एक सजे हुए कमरे में जाकर रुक गया। हमने अपना सामान वहीं रख दिया और यात्रा के अपने कपड़े उतार कर, स्नान आदि कार्यों में व्यस्त हो गये। रमेश के भाई आये और उन्होंने मुझे रमेश के साथी के रूप में देख कर बड़ी प्रसन्नता अनुभव की।

दूसरे दिन रमेश के साथ मैं बम्बई देखने निकला। वहाँ के बाजार कुछ दूसरे ही ढंग के हैं। कई-कई मंजिलों की कोठियाँ हैं जिनमें दूकानें अन्दर ही हैं। सड़क पर चलते हुए कोई व्यक्ति, यह नहीं अनुभव कर सकता कि वह बम्बई के बाजार में होकर जा रहा है। देहली, आगरा जैसे शहरों में पटरी पर ही बहुत से व्यक्ति बिक्री का सामान लेकर बैठ जाते हैं और उनके कारण सडक पर बड़ी भीड़-भाड़ हो जाती है। बम्बई में यह बात नहीं है। सड़कें बहुत ही चौड़ी हैं और उनकी दोनों ओर पैदल चलने वालों के लिये चौड़ी-चौड़ी पगडंडियाँ बनी हुई हैं। ये पगडंडी ही आगरे की मुख्य

सड़कों से चौड़ी हैं। बम्बई की सड़कों पर कारों, ट्रामा और घोड़ा गाड़ियों का ऐसा ताँता लगा रहता है कि उनके बीच में होकर कोई व्यक्ति कदाचित ही सड़क पार करने का साहस कर सकता है। इक्के-ताँगों का बम्बई में नाम तक नहीं। सड़कों पर इतनी सफाई रहती है कि कहीं एक तिनका तक नहीं दिखाई देता। सुबह से शाम तक आदमी सड़कों पर पैदल घूमता रहे, परन्तु धूलि या मिट्टी का एक कण तक उसके शरीर पर नहीं लगेगा। गन्दे पानी की नालियाँ, कूड़े-करकट के ढेर, गोबर, पेशाब, फलों के छिलके बम्बई में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। विक्री की वस्तुएँ सब दूकानों के अन्दर बड़ी व्यवस्था से लगी हुई रहती हैं। यहाँ अधिकांश मकान छः-सात मंजिल के हैं और कई-कई मंजिलों तक दूकानें चली गई हैं। लिफ्ट (बिजली की सीढ़ी) की सहायता से ऊपर मंजिलों में आदमी आते-जाते हैं। बम्बई में मैंने एक बात बड़ी अच्छी देखी। बहुत-सी दूकानें यहाँ ऐसी हैं जहाँ चाय, खाने-पीने का सामान और बिसातगीरी की सभी वस्तुएँ मिलती हैं। एक बड़े से चौकोर कमरे के बीच में बहुत-सी मेज कुर्सियाँ सजी हुई लगी रहती हैं। उन पर बैठ कर लोग चाय पीते हैं। कमरे की दीवारों में बड़ी-बड़ी अलमारियाँ लगी हुई होती हैं जिनमें शीशे जड़ी हुई किवाड़ों के अन्दर बिसातगीरी की चीजें बड़े ढंग से सजी हुई रक्खी रहती हैं। ग्राहक के माँगने पर नौकर बड़ी तत्परता से संकेतिक वस्तु अलमारियों से निकाल कर मेज पर रख देता है। इन विश्रान्ति-गृहों में लोगों का आना-जाना बराबर बना रहता है। विभिन्न प्रकार की वेषभूषा देखने ही योग्य होती है।

मैं रमेश के साथ, बम्बई का ताजमहल होटल देखने भी गया था, वहीं पर गेट वे आफ इण्डिया (भारतवर्ष का

प्रवेश द्वार) है। ताजमहल होटल को मैंने उसके नाम के अनुरूप ही पाया। बहुत प्रयत्न करने पर भी हमें उसमें प्रवेश की अनुमति नहीं मिली। जो कुछ उसे बाहर से देख सका वही मुझे आश्चर्य में डालने के लिये काफी था। इसकी विस्तृत इमारत, उसकी भव्यता, उसमें आने जाने वालों की शान शौकत सभी कुछ प्रशंसनीय था।

समुद्र देखने की मेरी प्रबल अभिलाषा थी। रमेश मुझे बन्दरगाह पर ले गया। यह स्थान अधिक दूर नहीं था, अतः हम ताज महल होटल से पैदल ही वहाँ पहुँच गये। मीलों के बीच में अथाह सागर हिलोरें ले रहा था। समुद्र कैसा होता है, यह समुद्र को देख कर ही पता लग सकता है। यहाँ बन्दरगाह पर कई जल-पोत भी मैंने खड़े देखे। पानी के जहाज के इतने बड़े होने की कल्पना भी मैंने कभी नहीं की थी। मैं एक जहाज में भीतर घुस गया और उसके सभी स्थान भली भाँति निहारे। सबसे नीचे बड़ा सा गोदाम था जिसमें सैकड़ों मन रुई की गाँठें और अन्य सामान रक्खा हुआ था। जहाज की बीच की मंजिल में यात्रियों के बैठने के लिये स्थान बने हुए थे। ऊपर की मंजिल के कमरे प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिये थे। समुद्र में बहुत से स्टीमर और नावें भी आ जा रही थीं जिनमें बैठ कर बहुत से आदमी समुद्री वायु का सेवन कर रहे थे। बन्दरगाह का दृश्य भी अनूठा और अलौकिक था।

एक दिन सन्ध्या-समय मैं, चौपाटी नामक स्थान पर भी समुद्र की शोभा देखने गया। चौपाटी पर सभी श्रेणी के लोग सुबह शाम घूमने के लिये आते हैं। यह अत्यन्त ही रमणीक स्थान है। यहाँ समुद्र और भी अधिक आकर्षक है। एक ओर इसके, बम्बई नगर है, और एक ओर मालाबार

की पहाड़ी। चौपाटी पर सागर की लहरें सड़क के बिलकुल निकट आ जाती हैं। असंख्यों नरनारी सागर की बालू में बैठते और चहल कदमी करते हैं। बालू पर ही शाम को बहुत से खोमचे वाले, मालिश करने वाले और पैर चप्पी करने वाले आ जाते हैं। कुछ लोग सागर में चार छ कदम भीतर भी चले जाते हैं। मैंने भी समुद्र के जल को स्पर्श किया था और थोड़ा-सा आचमन भी। चौपाटी से मलाबार हिल की पहाड़ी और उस पर बने हुए गगनचुम्बी भवन बड़े ही चित्ताकर्षक प्रतीत होते हैं। मैं मलाबार हिल पर भी गया था। वहाँ पर बम्बई के धनाढ्य लोगों की कोठियाँ हैं। यहाँ की सड़कें भी बहुत चौड़ी परन्तु टेढ़ीमेढ़ी हैं। इस स्थान पर पर्वत प्रदेश का सा आनन्द आता है। मलाबार हिल पर ही प्रसिद्ध Hauging gardens (झूलते हुए उद्यान हैं।) इस उद्यान में रंग बिरंगे पुष्पों और झाड़ियों से काट कर बनाये गये मोरों, शेरों तथा अन्य पशुओं की आकृतियां देखने ही योग्य हैं।

बम्बई नगर तीन ओर समुद्र से घिरा हुआ एक टापू है। कहा जाता है कि समूचे संसार में ऐसा कोई भी शहर नहीं जो समुद्र के इतने निकट बसा हुआ हो। बम्बई का समुद्र तो बाजारों की सड़क से कई स्थानों पर लगा हुआ है। मैं लगभग एक सप्ताह बम्बई में ठहरा परन्तु किसी प्रकार उससे जी नहीं भरता था। इच्छा होती थी कि वहीं दो चार महीने रहा जाय। परन्तु छुट्टियाँ समाप्त होने को आ रही थीं अतः खेदपूर्ण हृदय से उस वैभव पूर्ण नगर को नमस्कार करके फिर रमेश के साथ लौट आया। तुमसे मिलने पर वहाँ की अन्य भी बहुत सी बातें बतलाऊँगा।

आगरा
५ जनवरी १९४६

तुम्हारा मित्र
सुरेशचन्द्र

किसी मनोरंजक यात्रा का वर्णन

उ० प्र० बोर्ड १९४१
अजमेर बोर्ड १९४२

यात्रा की तयारी—उन दिनों मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था। दशहरा की छुट्टियाँ समीप ही थीं। छुट्टियों से चार दिन पहिले हमारी कक्षा के मास्टर साहब ने कक्षा में घोषणा की कि हैड मास्टर साहब बालचरों की एक टोली दशहरा की छुट्टियों में नैनीताल भेजना चाहते हैं। प्रत्येक बालचर को स्कूल की ओर से पाँच-पाँच रुपये मिलेंगे और शेष व्यय उसे अपना करना होगा। मास्टर साहब ने यह भी बतला दिया कि इस यात्रा में लगभग २०) रु० व्यय होंगे। जो बालचर अपने पास से शेष १५ रु० का व्यय कर सकें, वे यात्रा में जा सकते हैं। मेरे लिये उन दिनों पन्द्रह रुपये बहुत बड़ी बात थी। परन्तु यात्रा में जाने का लोभ उससे भी अधिक था तिस पर यात्रा भी ऐसे स्थान के लिये जिसकी प्राकृतिक शोभा का वर्णन मैं बहुत दिनों से सुन चुका था। रुपयों की समस्या टेढ़ी खीर थी। माताजी पर पूरा भरोसा था अतः एक दिन की छुट्टी लेकर गाँव आया और माताजी को सारी बातें सुनादीं। कुछ रोने का सा भी उपक्रम किया। फिर क्या था, उनका मातृ हृदय उमड़ आया और पिताजी के घर आते ही उन्होंने मेरी माँग पेश करदी। पिताजी ने बहुत ही गम्भीर आकृति धारण करली और अपनी आर्थिक स्थिति पर एक लम्बा व्याख्यान दे डाला, साथ ही यात्रा की निरर्थकता और मेरी पढ़ने की ओर कम रुचि की भी बातें कहीं परन्तु माता की वकालत के सामने उन की एक भी न चली और अन्त में

पन्द्रह रुपये उन्हें देने ही पड़े। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। माताजी को कृतज्ञता पूर्ण नेत्रों से नमस्कार करके आगरे लौट आया मास्टर साहब का रुपये देकर यात्रा-पार्टी मे इस की त्याव-भंगिमा धारण करते हुए नाम लिखा दिया मानों मुझ पर रुपयों के लिए कुछ बीती ही न हो।

यात्रा का प्रारम्भ—देखते ही देखते चार दिन व्यतीत हो गये और छुट्टियाँ आ गई। हम बीस विद्यार्थी यात्रा के लिये तैयार हुए थे। सभी बालचर थे अत: सब अपनी अपनी खाकी वर्दी पहिने हुए थे और हाथ में एक एक लाठी थी। लाठी वाली बात मुझे कुछ जँची नहीं किन्तु वह हमारी वेष भूषा की एक आवश्यक वस्तु थी और तिस पर भी स्काउट मास्टर का भय। सब लोग बिस्तर बाँध कर और यात्रा का आवश्यक सामान लेकर स्टेशन पहुँच गये। हमने भोजन बनाने के लिए अपने छात्रालय का महाराज भी अपने साथ ले लिया था। आटा, दाल और घी सब अपने अपने घरों से ले आये थे। हमारे स्काउट मास्टर साहब ने एक दिन पहिले से ही एक छोटा रेल का डिब्बा रिजर्व करा लिया था। यह बड़ी अच्छी बात हुई अन्यथा न मालूम कितनी धक्का मुक्की टिकट लेने और गाड़ी में बैठने के लिए करनी पड़ती। गाड़ी में बैठने के लिए हम सभी बालचर बड़ी शान्ति और उत्साह के साथ एक पंक्ति में मार्च करते हुए प्लेट फार्म से होकर निकले थोड़ी देर के लिए प्लेट फार्म की उस भीड़-भाड़ में निस्तब्धता छागई और सभी की आँखें हमारी ओर उठ गईं। हमारी छाती गर्व से फूल गई। चलने में और भी अकड़ आ गई। भीड़ के आदमी हमारे लिए अपने आप ही मार्ग छोड़ देते थे, कदाचित हमारी वेष भूषा और लम्बी लाठियों का यह प्रभाव था। लाठी लेकर चलने की बात मुझे

उस समय अच्छी मालूम हुई। हमारा डिब्बा पहिले से रिजर्व तो था ही। भूल से दो चार आदमी जो हम से पहिले उस में बैठ गये थे, हमें देखकर बिना कहे ही चुपचाप नीचे खिसक आये। अपने बालचर होने का महत्व उस दिन से पहिले मुझे कभी अनुभव नहीं हुआ था। सब लोग यथा स्थान पर डिब्बे में बैठ गये और कुछ ने तो अपने बिस्तर लम्बे कर लिए और तो सब बातें अब तक ठीक हुई थीं परन्तु एक बात कुछ अखरने वाली हो गई थी और वह थी स्काउट मास्टर की अपने पास ही डिब्बे में उपस्थिति, पूरे १५ घन्टे के लिये। वैसे तो मास्टर साहब बड़े ही हँस-मुख और हम लोगों से खुलकर बातें करने वाले थे परन्तु आखिर थे तो मास्टर साहब ही। अस्तु, इस बात को हमने यह सोच कर अपने दिमाग से निकाल दिया कि गाड़ी का अधिकांश समय तो सोने में चला जायगा, चार-छः घण्टे की आ पड़ेगी सो देखा जायगा। शाम को ठीक पौने सात बजे गाड़ी आगरा फोर्ट स्टेशन से काठ-गोदाम के लिये चल पड़ी क्योंकि यही हमारी रेल-यात्रा का अन्तिम स्टेशन था। कुछ दूर तक तो डिब्बे में शान्ति छाई रही और दो ही चार विद्यार्थी अपनी-अपनी टोलियों में धीरे-धीरे बातें करते रहे। परन्तु मथुरा का स्टेशन निकल जाने के पश्चात् अचानक मास्टर साहब का मौन टूटा और बड़ी प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने कहा कि भाई, इस तरह तो रास्ता कटना ही दूभर हो जायगा। आओ, कुछ कविता पाठ और लतीफेबाजी ही की जाय। 'अन्धे को क्या चाहिए? दो आँखें' हम लोग तो पहले से ही अपने अरमानों को दबाये बैठे थे। पहिले तो कुछ विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी रुचि की कवितायें सुनाईं और फिर अन्ताक्षरी शुरू हो गई। मैं अन्ताक्षरी प्रतियोगिता के लिये अपने स्कूल में प्रसिद्ध था, अतः दोनों

दलों में मुझे लेने के लिये थोड़ा-सा वाक्-युद्ध हुआ परन्तु स्काउट मास्टर ने एक दल का नेतृत्व अपने ऊपर लेकर यह समस्या शीघ्र ही सुलझा दी। पहले तो हमारे विरोधी दल वाले मास्टर साहब को मेरे विरुद्ध लेकर विशेष प्रसन्न नहीं हुए परन्तु अन्ताक्षरी में उनकी कविताओं को सुन कर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह किसी को क्या पता था कि मास्टर साहब भी पूरे कवि निकलेंगे। मेरे विरोधी दल के विद्यार्थी शीघ्र ही अन्ताक्षरी में पराजित हो जाते परन्तु मास्टर साहब ने उनकी लाज रखली। अभी लतीफेबाजी भी करनी थी, अतः अन्ताक्षरी को बराबर पर छोड़ कर, लतीफा सुनाये गये। मास्टर साहब के लतीफों को सुन कर तो हम लोग हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। उनकी रसिकता का परिचय हमें उस दिन से पहिले कभी नहीं मिला था। अभी लतीफे हो ही रहे थे कि कासगंज जंकशन आ गया और गाड़ी खड़ी हो गई। मैंने अपनी घड़ी देखी तो १२ बज रहे थे। समय कटते देर न लगी। हम सब लोग डिब्बे से निकल कर बाहर प्लेटफार्म पर आ गये। उस समय भूख भी खूब लग आई थी। सबने खोमचे वालों से लेकर अपनी-अपनी रुचि की चीज़ें खाईं और बहुत देर तक स्टेशन पर चहल क़दमी करते रहे। लगभग एक घण्टे तक गाड़ी खड़ी रही। सिगनल होने पर हम सब अपने डिब्बे में घुस गये। गाड़ी ने सीटी दी और चल पड़ी। यद्यपि कुछ विद्यार्थी तो अब भी मास्टर साहब के लतीफे सुनने को उत्सुक हो रहे थे परन्तु अधिकांश की आँखें झपने लगी थीं। अतः यही निश्चित हुआ कि सब सो जायँ।

मार्ग के दृश्य—प्रातःकाल आँखें खुलीं तो गाड़ी बरेली स्टेशन पर खड़ी देखी। यहाँ प्लेटफार्म पर कासगंज जैसी

शीघ्रता से बढ़े चले जा रहे थे। तीन घण्टे में ही हम लोग भीमताल पहुँच गये। भीमताल बड़ा ही सुन्दर स्थान प्रतीत हुआ। यहाँ एक बड़ा सरोवर है। कदाचित इसीलिये इस स्थान का नाम भीमताल पड़ा है। इस ताल में नौका-विहार किया और स्नान भी किये। हृदय अपूर्व आनन्द से उल्लसित हो उठा। चूँकि हमें उसी दिन अपने कैम्प को लौटना था, अतः इच्छा होते हुए भी वहाँ अधिक समय नहीं ठहरे। दो पहर बाद भीमताल से लौट पड़े और शाम तक रानीबाग आ गये।

नैनीताल-प्रस्थान—तीसरे दिन हमारी यात्रा का मुख लक्ष्य नैनीताल था। पहिले दिन भीमताल की पैदल यात्रा के कारण सब लोग थक गये थे परन्तु नैनीताल देखने की इच्छा ने सबके हृदयों को उत्साह से भर रक्खा था। हमने एक पूरी मोटर नैनीताल के लिये करली। मोटर के मार्ग से नैनीताल रानीबाग से लगभग २० मील है। सुबह ही फिर गर्म-गर्म हलुआ और चाय से महाराज ने हमारा सत्कार किया। आज महाराज और कहार भी हमारे साथ हो लिये। मोटर चल दी और नैनीताल के कल्पित चित्रों ने हमारे मस्तिष्क में घर कर लिया।

ज्यों-ज्यों मोटर आगे बढ़ रही थी, चढ़ाई सीधी होती जा रही थी। हमें आश्चर्य हो रहा था कि इतनी चढ़ाई पर भी ये मोटरें कैसे चलती हैं। सड़क इतनी टेढ़ी-मेढ़ी थी कि आगे की सड़क पर की कोई वस्तु दिखलाई नहीं देती थी। प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता, उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। चीड़ के वृक्षों की शोभा देखने ही योग्य थी। चढ़ाई के साथ-साथ वायु में शीतलता बढ़ रही थी और शरीर में कम्पन होने लगा था। अब तक हमारी मोटर समुद्र की सतह से ४००० फीट ऊँचे

पहाड़ पर आ गई थी। क्वार का महीना था। आकाश निर्मल था। मोटर से दूर के पहाड़ी गाँव भी कैसे भले दिखलाई देते थे। निर्झर और सरिताओं की शोभा तो अपूर्व थी। जल-प्रपातों अ [illegible] सरिताओं का कलख ही उस पर्वतीय वन-प्रदेश की निस्तब्धता को भंग कर रहा था। हम सबके लिये वह दृश्य अभूतपूर्व था। मार्ग के प्राकृतिक दृश्यों में हम लोग इतने तल्लीन हो गये कि नैनीताल का ध्यान ही न रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि न मालूम हमारी यह मोटर हमें किस विचित्र स्थान को लिये जा रही है। हमारी इस आत्म-विस्मृति की अवस्था में ही १॥ घण्टे का समय निकल गया और नैनीताल आ गया। मोटर से उतर कर पहिले हमने अपना सामान एक होटल में रक्खा और नैनीताल की सैर को चल दिये।

नैनीताल के दृश्य—मेरी धारणा थी कि नैनीताल कोई बड़ा नगर होगा। परन्तु जब हम वहाँ पहुँचे तो सबसे पहले हमारी दृष्टि एक बहुत बड़ी झील पर पड़ी। इस झील की लम्बाई लगभग पौन मील और चौड़ाई आधे मील से कुछ कम है। जल का इतना विस्तृत भण्डार मैंने पहिले कभी नही देखा था। इस झील का नाम ही नैनीताल है और इसी के नाम पर नैनीताल नगर का नाम पड़ गया है। झील के चारों ओर सड़क है जिस पर स्त्री और पुरुष अपनी विभिन्न वेष-भूषाओं में सुबह और शाम को घूमने के लिये आते हैं। नैनीताल नगर झील की लम्बाई के दोनों छोरों पर बसा हुआ है। एक भाग को तल्लीताल कहते हैं और दूसरे को मल्लीताल। झील के चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ हैं। रात्रि को नगर की विद्युत बत्तियों का प्रकाश झील के जल में पड़कर अपूर्व शोभा

को धारण कर लेता है। इस झील में ही हमने नौका-विहार किया। शाम तक हम लोग झील के आस-पास चक्कर लगाते रहे। यहाँ की प्राकृतिक छटा को देखते-देखते नेत्र परितृप्त नहीं होते थे। दिन भर घूमते रहने से बहुत थकावट आगई थी, इसलिए रात्रि को जल्दी ही भोजन करके सोगये।

दूसरे दिन प्रातःकाल हमारा प्रोग्राम, नैनीताल के निकटवर्त्ती दर्शनीय स्थानों को देखने का था। पहिले तो हमने नैनीताल के कुछ प्रसिद्ध भवनों को देखा और फिर चीना पीक के लिये पैदल यात्रा प्रारम्भ करदी। यह एक ऊँची पर्वत चोटी है जो समुद्री सतह से लगभग सात हजार फीट की ऊँचाई पर है। तीन मील की सीधी चढ़ाई चढ़कर हम लोग इस चोटी पर पहुँचे। इस स्थान से उत्तर की ओर हिमालय की हिम-आच्छादित पर्वत मालायें दिखाई दे रही थीं और दक्षिण की ओर काठ गोदाम से भी परे के मैदान दृष्टिगोचर हो रहे थे। आस-पास चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और घने वनों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। यहाँ से नैनीताल तो एक छोटे से घर के समान लगता था। चीना पीक पर खड़े होकर जो कुछ मुझे अनुभव हुआ, वह वर्णनातीत है। उसे तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

उपसंहार—हम लोग शाम को नैनीताल लौट आये। उस दिन भी हमने खूब परिश्रम किया था। नैनीताल में हम एक दिन और ठहरे। वहाँ के दृश्यों को देखकर जी भरता ही न था। इच्छा होती थी कि वहीं एक स्थान पर कुटी बना कर प्रकृति-रंगस्थली की गोद में इस जीवन का अभिनय पूरा किया जाय। परन्तु मास्टर साहब की आज्ञा दूसरे दिन नैनीताल छोड़ देने की हो चुकी थी। उस दिन अन्तिम वार नैनीताल को नमस्कार किया और मोटर से काठ गोदाम

लौट आये। फिर वही रेल गाड़ी, वे ही स्टेशन और दूसरे दिन प्रातःकाल वही आगरा। घर आकर सबको अपनी यात्रा का वर्णन सुनाया और सोचा कि यदि माता जी मेरी वकालत न करतीं और पिता जी १५) रु० न देते तो क्या जीवन में फिर वैसा अवसर मिल सकता था ?

कवि-सम्मेलन

सूचना----पिछली साल जाड़ों के दिन थे और नवम्बर का महीना था। वैसे इतनी सर्दी नहीं थी जिसके लिए गर्म कपड़ों की जरूरत हो। मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था। हमारे स्कूल में कुछ पर्चे बाँटने के लिये नागरी प्रचारिणी-सभा के विद्यार्थी आये। पर्चों द्वारा सूचना दी गई थी कि अगले शनिवार की शाम को सात बजे नागरी-प्रचारिणी-सभा में कवि-सम्मेलन और कवि-दरबार होगा। कवि सम्राट मैथिलीशरण गुप्त अध्यक्ष-पद का आसन ग्रहण करेंगे तथा हिन्दी के अन्य सुप्रसिद्ध कवि- बच्चन, सोहनलाल द्विवेदी, पंकज आदि भी पधारेंगे। सूचना क्या थी, मेरे लिये तो मानो किसी राज्य-गद्दी का निमंत्रण था। भावों में एक साथ उथल-पथल मचने लगी और नाना प्रकार के उत्सुकता पूर्ण प्रश्न मैं अपने ही से करने लगा। क्या 'जयद्रथ-वध' और

'भारत-भारती' के लेखक मैथिलीशरण जी आगरा आरहे हैं ? क्या सचमुच मैं उन्हें देख सकूँगा ? कवि सम्मेलन तो दो एक बार देखे भी थे, परन्तु यह कवि-दरबार क्या होता है ? यह मैं नहीं जानता था।

कवि-सम्मेलन की प्रतीक्षा में दो तीन दिन बड़ी अधीरता से कटे और शनिवार आगया। जैसे तैसे स्कूल की पढ़ाई का नीरस दिन भी व्यतीत हुआ। यों तो अन्य छात्रों को भी कवि सम्मेलन देखने की उत्सुकता थी, परन्तु हर्ष के मारे मेरे पैर तो पृथ्वी पर पड़ ही नहीं रहे थे। पाँच बजे ही भोजन कर लिया और नागरी-प्रचारिणी सभा जाने की तैयारी करने लगा। मैं अपने कुछ साथियों के साथ ६ बजे ही निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा।

सभा-भवन की सजावट—सभा-भवन के स्थान पर जाकर देखा कि एक बहुत बड़ा शामियाना तना हुआ है जिसके भीतर सैकड़ों ही बिजली के बल्ब अपनी छटा से समूचे वातावरण को देदीप्यमान कर रहे हैं। रंग बिरंगी पताकायें शामियाने के भीतर बाहर हवा से अठखेलियाँ कर रही हैं। शामियाने के एक सिरे पर लकड़ी के तख्तों का एक बहुत बड़ा मंच बनाया गया था जिस पर स्थान-स्थान पर तकिये और आसन लगा दिये थे। मंच के नीचे ज़मीन पर समूचे शामियाने में फर्श बिछा दिये गये थे जिन पर बैठे सहस्त्रों नर-नारी एक टक होकर कवियों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

स्वागताध्यक्ष का भाषण—थोड़ी देर में ही स्वागताध्यक्ष ने मंच पर खड़े होकर बड़ी ही ओजस्वी वाणी में कहा, "भाइयो और बहिनो ! आज आगरे की नागरी-

प्रचारिणी-सभा के इतिहास में यह पहिला अवसर है जब कि उसे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को इस सभा के सभापति पद पर बैठे देखने का गौरव प्राप्त हुआ है। राष्ट्र कवि के स्वागत में जो कुछ भी हमसे बन पड़ा है, किया है, परन्तु यह सब तो सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। इस अवसर पर हमने जिस कवि सम्मेलन का आयोजन किया है उसमें कवि दरबार भी सम्मिलित है जिसमें हिन्दी के सुप्रसिद्ध प्राचीन कवियों की, उन्ही के श्रीमुख से अभिनय रूप में कवितायें सुनाई जायंगी। इस प्रकार आज के कवि सम्मेलन में आप लोग जहाँ वर्त्तमान कवियों की कविता का रस-स्वादन करेंगे, वहाँ हिंदी के प्राचीन कवियों की रस माधुरी से भी अपने हृदयों को परितृप्त कर सकेंगे। समय हो चुका है और कवि लोग आने वाले हैं अतः आप लोगों से मैं शान्ति बनाये रखने की प्रार्थना करता हुआ अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।" यह कहकर स्वागताध्यक्ष जी एक ओर खिसक गये।

कवियों का आना प्रारम्भ हो गया था और वे अपने अपने स्थान पर बैठते जाते थे। इतने ही में एक क्षीण-काय, श्यामवर्ण पुरुष ने जो सिलेटी रंग का एक कुर्त्ता पहिने हुआ था और सिर पर गाँधी टोपी लगाये था, मंच पर पदार्पण किया। नवागन्तुक के आते ही सारी सभा में हर्ष की एक लहर सी दौड़ गई और मंच पर बैठे हुए सभी व्यक्ति खड़े हो गये। उनके साथ ही नीचे बैठे हुए दर्शक भी खड़े हो गये। समझदार लोगों ने इस आगन्तुक के अप्रत्याशित स्वागत से, उसके मैथिलीशरण गुप्त होने का अनुमान सहज ही कर लिया। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। 'जयद्रथ-वध' में वीर-रस की सरिता-धारा प्रवाहित कर देने वाले और

'भारत-भारती' में भारत के अतीत गौरव की झाँकी करा देने वाले 'गुप्त जी' की कल्पना मैंने इस रूप में कभी नहीं की थी। 'लाल गूदड़ों में ही छिपे रहते हैं' इस कहावत की सत्यता मेरे सामने मैथिलीशरण जी को साक्षात देखकर ही प्रकट हुई। अस्तु, गुप्तजी आकर एक ओर बैठ गये और थोड़ी देर में, सभा-भवन में उत्पन्न हो जाने वाली चहल पहल, काना फूँसी बन्द हो गई। कवि लोग बराबर आते गये। कुछ कवियों की वेष-भूषा देखकर तो हँसी फूटी पड़ती थी। परलोक से आये हुए प्राचीन कवियों में तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, रसखान, राजा लक्ष्मणसिंह, बिहारी आदि कवियों की आकृति और वेष भूषा का ऐसा सुन्दर अभिनय किया गया था कि दर्शक लोग उन्हें देख कर ही पहिचान जाते थे। सब कवियों के यथा-स्थान आसन ग्रहण करने के पश्चात् स्वागताध्यक्ष महोदय ने श्री मैथिली शरण जी से सभापति के आसन को सुशोभित करने की प्रार्थना की और तब गुप्तजी मुस्कराते हुए संकोच के साथ आसन पर आकर बैठ गये। सारा सभा-मंडप करतल-ध्वनि से गूँज उठा।

गुप्तजी ने सभापति-स्थान पर खड़े होकर अपने शरीर के अनुरूप ही अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा, "भाइयों! कवि शिरोमणि महात्मा तुलसीदास और सूरदास की उपस्थिति में, इस आसन पर बैठने की धृष्टता मैं किसी प्रकार नहीं कर सकता था परन्तु स्वर्ग लोक से आये हुए कवि मृत्युलोक के वातावरण में अधिक समय तक साँस नहीं ले सकते। हमारी प्रथना पर ये महानुभाव अल्प समय के लिये ही आये हैं और शीघ्र ही यहाँ से चले जायँगे। सभापति पद पर तो मुझ जैसा कलियुगी व्यक्ति ही आदि से अन्त तक बैठा

रह सकता है। अतः पूर्व कवियों की इच्छा और आदेश से ही मैंने ऐसा किया है। आशा है, आप सब मुझे क्षमा करेंगे। कवि सम्मेलन का कार्य क्रम अब प्रारम्भ होना चाहिये क्योंकि काफी समय हो चुका है और फिर, स्वर्ग से आये हुए कवियों की सुविधा का भी ध्यान रखना है। अतः मैं सर्व प्रथम कवि-कुल-मौर महात्मा तुलसीदासजी से ही प्रार्थना करूँगा कि वह हम सब को अपनी पीयूषवाणी से कृतार्थ करें।

कवि दरबार—गुप्तजी के शिष्टाचार और विनय से ओतप्रोत शब्दों को सुनकर तुलसीदासजी ने अपने नेत्रों को खोला और सिद्धासन की अवस्था को छोड़ते हुए धीरे से खड़े होगये। मधुरवाणी से भक्ति भाव को विकीर्ण करते हुए उन्होंने कहा, "भाइयो और बहिनो! आप लोगों ने मेरी पुस्तक 'राम चरित मानस, का जितना सम्मान किया है, उसके लिये मैं बड़ा अभारी हूँ। मैं तो स्वर्ग में भी अपने राम के चरणों में पड़ा रहता हूँ। मेरी चिर कल्पित अभिलाषा पूरी होगई है। परन्तु मैं फिर एक बार राम को इसी भारतवर्ष में किसी माता कौशल्या के उदर से प्रकट होते देखना चाहता हूँ। मेरे चित्त से तो राम का वह रूप उतरता ही नहीं कि:—

"वर दन्त की पंगति कुंद कली,
अधरा धर पल्लव खोलन की,
चपला चमकै घन बीच जगै,
छवि मोतिन माल अमोलन की।
'घुंघरारीलटैं लटकें मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की,"

निवछावरि प्रान करै 'तुलसी, वलि जाउँ लला इन बोलनि की।,,

तुलसीदास जी की वाणी में कुछ ऐसा जादू था कि उक्त पद को सुनते ही सारी सभा मंत्र मुग्ध सी होगई और सबके नेत्रों के सामने राम का वही रूप घूमने लगा। तुलसीदास जी तब शीघ्र ही सभामंडप को छोड़ कर स्वर्ग चले गये।

अब भक्त शिरोमणि सूरदासजी से प्रार्थना की गई कि वह भी अपनी वाणी से आनंद की वर्षा करें। सूरदास जी अपना सितार लेकर खड़े हो गये और इस पद को गाने लगे, "तजौरे मन हरि विमुखन को संग।

जिनके संग कुबुधि उपजत है परत भजन में भंग,,। इस पद को सुनाने के पश्चात् वह भी अपने वालकृष्ण की झाँकी कराने में लग गये और

"कहाँ लौं वरनौ सुन्दरताई।

खेलत कनक कुमर आँगन में नैन निरखि छवि छाई,,

तथा "मैया कबहि बढ़हि मेरी चोटी,, आदि पद सुनाने लगे। सूरदासजी की कविताओं को सुनकर दर्शकों में भक्ति और वात्सल्य का सागर हिलोरें लेने लगा। अभी सब लोग मंत्र मुग्ध होकर सूरदासजी के मधुर गायन को सुन ही रहे थे कि वह सहसा उठ कर सभा मंडप से बाहर चले गये और फिर उनका पता ही न लगा।

अब केशव दास जी की बारी थी। अपने वृद्ध शरीर को सँभालते हुए और सफेद मूँछों पर हाथ फेरते हुए, केशवजी आसन पर खड़े होगये और कहने लगे। "भाइयो! स्वर्गलोक में पहुँच कर भी मेरा श्रंगार रस से प्रेम कम नहीं हुआ है।

वहाँ भी मैं अपनी कविताओं से अप्सराओं और देवियों को रिझाया करता हूँ। अपने बालों की सफेदी पर मुझे अब भी बड़ा पश्चाताप होता है क्योंकि—

'केशव, केशनि अस करी जस अरिहून कराहिं,
चन्द्र-वदन-मृग-लोचनी बाबा कहि कहि जाहिं।,

केशवदासजी के इस दोहे को सुनकर सभा-मंडप अट्टहास से गूँज उठा और स्त्रियों के मुखों पर लज्जा की लाली दौड़ गई।

रसखानजी ने अपना निम्नांकित सवैया सुना कर सब के मन को हर लिया—

"शेष, महेश, दिनेश, गनेश, सुरेशहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि, अनंत, अखंड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं।।
नारद से शुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ नहि पारन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछि पै नाच नचावैं।,

रसखानजी के पश्चात् भूषण, मतिराम, रहीम आदि कवियों ने अपनी कवितायें सुनाईं। सभी की कवितायें अपने अपने ढंग से अनूठी थीं।

प्राचीन कवियों की कवितायें समाप्त हो चुकी थीं और सब परलोकवासी कवि जा भी चुके थे। अब वर्त्तमान कवियों की बारी थी। दर्शकों को ब्रजभाषा के माधुर्य ने ऐसा मोह लिया था कि उनकी इच्छा खड़ी बोली के वर्त्तमान कवियों को सुनने की नहीं हो रही थी। श्री मैथिलीशरणजी श्रोताओं के इस भाव को ताड़ गये और तब तुरन्त ही उन्होंने उठ कर कहा, भाइयो! ब्रज-भाषा की मधुरता के नशे में आप लोग झूमने लगे हैं। सचमुच यह ऐसी ही है। परन्तु कवि, खड़ी बोली में भी वैसा ही माधुर्य ला सकता है, इसका प्रमाण

आपको अभी मिल जायेगा। कृपया धैर्य से कुछ समय और बैठे रहें। यह कहकर गुप्तजी ने बच्चनजी से कविता सुनाने का आग्रह किया।

वर्त्तमान कवि—अपने शुष्क और लम्बे बालों को सहलाते हुए तनिक आक्रोश के साथ बच्चनजी उठे और दर्शकों से अपने अधिक देर खड़े न रह सकने की असमर्थता के लिये क्षमा माँगते हुए बैठ गये। बैठे-बैठे ही उन्होंने अपने सुकुमार हाथ में 'मधुशाला' की एक प्रति लेकर कई कवितायें सुनाईं। बच्चनजी के मधुर कंठ स्वर ने शीघ्र ही श्रोताओं को मुग्ध कर लिया और मंडप से 'पुनः पुनः' की ध्वनि बारम्बार निकलने लगी। दो चार कविताओं के बाद ही बच्चनजी के मुख पर स्वेद-बिन्दु झलक आये और घबड़ाये से प्रतीत होने लगे। श्रोताजन उनके सुरीले स्वर पर मोहित हो रहे थे परन्तु बच्चनजी अधिक समय तक लोगों की इच्छा पूरी न कर सके। पानी का एक घूँट पीकर अपने आसन पर रक्खे हुए तकिये के सहारे वह कुछ लेट से गये।

बच्चनजी की कविता से अथवा स्वर से लोगों के अन्दर वर्त्तमान कवियों की कविताएँ सुनने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी। अब हृदयेश, कमलेश, अखिलेश आदि कवियों को भी अवसर मिला। इन लोगों की कवितायें भी अच्छी थीं और उनके कहने के ढंग को विशेषकर अच्छा समझा गया।

हमारे 'शंठ कवि' बहुत देर से मौके की ताड़ में थे और बारंबार अपने कन्धों को उचका रहे थे। सभापतिजी की पैनी निगाह कवि-सुलभ उत्सुकता का पार कर गई और 'शंठ कवि' का नाम बोल दिया गया। अपने कोट पर लगे हुए चाँदी के पदकों को छाती के धक्के से कुछ हिलाते हुए 'शंठजी' बड़े गर्व के साथ खड़े हो गये। अब तक के कवियों की धीमी

आवाज से श्रोताओं के कान सो से गये थे, शंठजी ने उनके सब पर्दे खोल दिये। कुछ स्त्रियों ने तो पर्दों के फट जाने के भय से कानों में उँगलियाँ डाल लीं। गुप्तजी स्वयं बड़ी असुविधा अनुभव कर रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही अन्य कवियों के नाम बोलना शुरू कर दिया। 'शंठजी' की वाक्य-धारा रुकती ही न थी, वे चलते-चलते कवित्त सुनाते जा रहे थे। कालेज के कुछ नटखट छात्र, शंठजी को कभी-कभी बढ़ावा दे देते थे, इससे वे दूने उत्साह और जोर से कहने में लगे हुए थे। जैसे-तैसे शंठजी शान्त हुए और सबने मुक्ति की साँस ली।

थोड़ी देर तक और कविता-क्रम चलता रहा। इस बीच में स्थानीय बहुत से कवियों को भी खड़ा होने का अवसर मिल गया। 'दीपकजी', प्रेमीजी, मलिन्दजी, पतंगाजी, मुकुलजी आदि कई 'जीओं' की बन पड़ी। बहुत से कवि कहलाने वाले व्यक्ति तो अपना नाम गुप्तजी के मुख से सुनने में ही अपने को कृतार्थ समझ लेते थे।

उपसंहार—समय बहुत हो गया था और रात्रि के १२ बज चुके थे। अभी छोटे-मोटे कवि बहुत शेष थे। परन्तु सभापतिजी ने शेष कवियों के केवल नाम सुनाकर ही कवि-सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त कर दी। कुछ लोगों ने श्री मैथिलीशरणजी से कविता सुनाने का आग्रह किया। इस पर गुप्तजी ने कहा कि कविता सुनाये जाने की वस्तु नहीं, वह तो मनन करने की है। यह भी बतलाया कि उन्होंने कवि सम्मेलनों में कभी भाग नहीं लिया है और न वह कुछ सुना ही सकते हैं। जिस प्रकार कविता और संगीत में अन्तर है उसी प्रकार कवि और गायक में है। तदनन्तर गुप्तजी ने कविता के गुण दोष के ऊपर एक संक्षिप्त किन्तु

सारगर्भित भाषण दिया और उपस्थित लोगों को धन्यवाद देते हुए सभा समाप्त होने की घोषणा कर दी।

उस दिन मुझे राष्ट्र-कवि के दर्शन करने का तो सौभाग्य प्राप्त हुआ ही, परन्तु वैसा कवि-दरबार और कवि-सम्मेलन भी कभी नहीं देखा था। हम सब छात्र परस्पर कवियों की चर्चा करते हुए छात्रालय को लौट आये।

मनोरंजन के आधुनिक साधन

—उ० प्र० बोर्ड १९४२

मनोरंजन की आवश्यकता—मनुष्य स्वभाव से ही मनोरंजन प्रिय है। हर समय वह मन को प्रसन्न रखना चाहता है और दुख से बचता है। मन की प्रसन्नता ही सुख है, और सुख प्राणी-मात्र का मुख्य ध्येय है। सुख से बाहर वह नहीं जाना चाहता। सांसारिक परिस्थितियाँ और मनुष्य की अपूर्णतायें और आवश्यकताएँ ऐसी हैं जो उसे अनैच्छिक कार्य करने को बाध्य करती हैं। उसके लिये संभव नहीं कि वह हर समय चित्त की प्रसन्नता में ही लगा रहे। जीवन-निर्वाह के लिये, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये और भावी सुख की प्राप्ति के लिये मनुष्य को शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। इस परिश्रम में उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता, उसे अनिवार्यता ऐसा करना होता है। आधुनिक समय में जीवन की आवश्यकताएँ बढ़

गई हैं, और उन आवश्यकताओं की पूर्त्ति के साधन सीमित हो गये हैं। अतः जीवन-संघर्ष कठिन हो गया है और हमें अधिक परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम कैसा भी हो, उसमें शक्ति का ह्रास होता है, थकावट आती है और हमारी कार्य-क्षमता कम होती जाती है। जिस प्रकार कार्य-क्षमता को अधिक से अधिक स्थायी बनाये रखने के लिये, तथा नष्ट हुई शक्ति की पूर्त्ति के लिये विश्राम की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार थके हुए मस्तिष्क के लिये मनोरंजन आवश्यक है।

जो व्यक्ति दिन रात काम में लगे रहते हैं, उनके लिये तो मनोरंजन की बहुत ही आवश्यकता रहती है। यदि वे एक या दूसरे प्रकार से मन को प्रसन्न न करें, और हर समय काम की ही चिन्ता का उन्हें ध्यान रहे, तो शीघ्र ही वे अपने काम से ऊब जायँगे और कोई न कोई मानसिक रोग उन्हें घेर लेगा। अतः दिन रात के चौबीस घण्टों में दो या तीन घण्टे का समय किसी ऐसे काम में देना आवश्यक है जिसमें हम अपने दैनिक कार्यों की चिन्ता को भूल जायँ और मन को खूब प्रसन्नता की अवस्था में रख सकें।

मनोरंजन के साधन—मनोरंजन कई प्रकार से हो सकता है और यह अपनी-अपनी रुचि के ऊपर निर्भर है। किसी को शतरंज और चौपड़ अच्छी लगती है तो किसी को ताश। कोई हारमोनियम और संगीत में अपना मन लगाता है तो कोई उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने में। किसी को घुड़दौड़, हाकी और फुटबौल खेलना अच्छा लगता है तो किसी को उद्यान की सैर और नौका विहार में आनन्द आता है। प्राचीन समय में लगभग ये सभी मनोरंजन के साधन थे और इन्हीं से लोग अपनी मानसिक थकावट दूर

करते थे। परन्तु आधुनिक समय में विज्ञान ने बहुत से मनोरंजन के साधन प्रदान कर दिये हैं और अब अधिकतर इन्हीं से लोग अपना मनोरंजन करते हैं।

सिनेमा—आजकल मनोरंजन के साधनों में सिनेमा या चल-चित्र का प्रमुख स्थान है। सिनेमा से जितने लोग अपना मनोरंजन करते हैं उतना अन्य किसी से नहीं प्राचीन समय के नाटकों का स्थान आधुनिक समय में सिनेमा ने ले लिया है। इसके द्वारा, पर्दे पर चित्रों के रूप में नाटक ही दिखलाया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि नाटक में अभिनेता और अभिनेत्रियाँ रंगमंच पर आकर स्वयं अभिनय करते हैं और जनता उन्हें वास्तविक रूप में देखती है, परन्तु सिनेमा में उनके छाया-चित्र ही दिखलाई देते हैं।

फोटोग्राफी की कला आज इतनी विकसित होगई है कि वास्तविक अभिनय के सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंग उसमें आजाते हैं और पर्दे पर वे ज्यों के त्यों दिखला दिये जाते हैं। ग्रामोफोन के रिकार्ड की भाँति फिल्मों में ध्वनि को भी भर लिया जाता है और अभिनेता व अभिनेत्रियों के वार्त्तालाप, उनके हाव भाव एवं गानों को हम और भी अधिक निखरे हुए रूप में चित्र-पट पर सुनते हैं। एक से एक बढ़कर प्राकृतिक दृश्यों क हम सिनेमा में देखते हैं। ऊँचे ऊँचे पर्वत, विशाल नदियाँ, झरने, गगन चुम्बी अट्टालिकायें और बड़े बड़े नगरों के मनोहारी दृश्य बात की बात में दर्शकों के सामने से निकल जाते हैं। जो बातें निर्धन मनुष्यों के लिये अलभ्य हैं, वे सिनेमा में उन्हें थोड़े से पैसों में ही देखने को मिल जाती हैं। गायन, नृत्य, कहानी, प्राकृतिक दृश्य आदि सभी बातों की भूख सिनेमा में मिट जाती है। वास्तव में सिनेमा के अविष्कार ने मानव-जाति का बड़ा

उपकार किया है। धनी और निर्धन सभी के लिये सिनेमा प्राप्य है। कम व्यय और कम समय में यदि अधिक से अधिक मनोरंजन का कोई साधन है तो वह सिनेमा ही है। मनोरंजन के साथ ही साथ मनुष्य को सिनेमा द्वारा बहुत कुछ शिक्षा भी मिलती है और अनुभव बढ़ता है। यदि सिनेमा संसार में नैतिक सुधार होता गया तो निःसंदेह इससे बढ़कर मनोरंजन का दूसरा साधन नहीं।

रेडियो—आधुनिक समय का दूसरा मनोरंजन का साधन रेडियो है। यह सिनेमा की भाँति सर्व साधारण के लिये उपलब्ध नहीं, हाँ धनी व्यक्ति इसके द्वारा अपना मनोरंजन कर सकते हैं। भारतवर्ष के बड़े बड़े नगरों में रेडियो स्टेशन हैं जहाँ से भिन्न भिन्न कार्यक्रम जैसे गाने, वाद्य गीत, समाचार, कवितायें, हास परिहास और जानकारी के विषय एक यंत्र के द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। जिन लोगों के पास रेडियो होता है, वे घर बैठे ही इन सभी चीजों को सुन लेते हैं। यदि आपकी इच्छा किसी समय संगीत सुनने की है तो अपने रेडियो की सुई संगीत प्रसारित करने वाले स्थान पर घुमा दीजिये, और तब आपको बड़े बड़े संगीतज्ञों के स्वर सुनाई पड़ने लगेंगे। हर प्रकार के गानों की सुमधुर झनकार आपके कानों में आने लगेगी आप झूम उठेंगे। यदि संगीत से रुचि उठजाय तो देहाती कार्यक्रम प्रसारित करने वाले स्थान को अपनी सुई से पकड़ लीजिये, आप हँसते हँसते लोट पोट हो जायँगे। इसी प्रकार विभिन्न रुचियों के अनुसार आपको रेडियो प्रसन्न करता रहेगा। रेडियो से संसार भर के समाचार आते रहते हैं और २४ घन्टों में कोई भी ऐसा समय नहीं होता जब कि आप अपने रेडियो की शरण न ले सकें। मनोरंजन के अतिरिक्त रेडियो हमारे

ज्ञान को भी बढ़ाता है। इससे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी विषयों के समाचार सुनने को हमें मिलते रहते हैं। जिन लोगों को समाचार पत्र पढ़ने का पूरा अवकाश नहीं मिलता वे थोड़े ही समय में रेडियो से सभी विषयों की जानकारी कर सकते हैं। रेडियो अभी तक उच्चवर्ग के ही लोगों का मनोरंजन करता रहा था परन्तु अब धीरे धीरे यह सभी वर्गों के मनोरंजन की वस्तु बनता जा रहा है। बहुत से गाँवों में सम्मिलित रूप से लोगों ने रेडियो ले लिये हैं और उनसे अपना मनोरंजन करते हैं। कुछ सार्वजनिक स्थानों में सरकार की ओर से भी रेडियो लगाए गए हैं।

ग्रामो फोन—ग्रामो फोन भी मनोरंजन का एक अच्छा साधन है। यह रेडियो से कम मूल्य में आजाता है। इससे केवल गाने सुनने का ही आनंद मिल सकता है। जब से रेडियो का प्रचार बढ़ा है तब से ग्रामो फोन का महत्व बहुत कम होगया है। जिस समय रेडियो स्टेशन बंद रहते हैं उस समय के लिए ग्रामोफोन बड़ा उपयोगी साधन है। इसमें अपनी रुचि के गाने बिना किसी प्रतीक्षा के सुने जा सकते हैं।

पुस्तकावलोकन—उपर्युक्त साधनों के अतिरिक्त अन्य भी मनोरंजन के ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने मन को प्रसन्न कर लेते हैं। इन साधनों में पुस्तकों का अध्ययन मुख्य है। जिन व्यक्तियों को उपन्यास, कहानी, नाटक आदि पढ़ने का चाव है, वे इन विषयों को पुस्तकों से अच्छा मनोरंजन कर लेते हैं। वर्त्तमान समय में उपन्यासों की कमी नहीं। प्रति दिन नए नए उपन्यास और कहानियों की पुस्तकें निकलती रहती हैं। यदि हमारी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं जो उन पुस्तकों को खरीद सकें, तो किसी भी पुस्तकालय के

सदस्य होकर हमें ये पुस्तकें प्राप्य हो सकती हैं। महापुरुषों के जीवन चरित्रों से भी हमारा मनोरंजन हो जाता है और साथ ही उनसे शिक्षा मिलती है। उपन्यासों में तो बहुत से लोग इतने तल्लीन हो जाते हैं कि जब तक उन्हें समाप्त नहीं कर लेते तब तक दूसरा काम नहीं करते। चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ जैसे उपन्यासों के पढ़ने के लिये ही बहुत से आदमियों ने पढ़ना सीखा था। आजकल तो हिन्दी में प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र कुमार आदि कई लब्ध प्रतिष्ठित लेखकों के उच्चकोटि के उपन्यास हमारे मनोरंजनार्थ उपस्थित हैं। मनोरंजन के लिये अच्छे उपन्यासों और कहानियों को ही पढ़ना चाहिये क्योंकि इन से जीवन के विषय में शिक्षा भी मिलती है।

खेल—खेल तमाशे भी आधुनिक समय के मनोरंजन के साधन हैं। हाकी, क्रिकेट, फुटबाल और घुड़दौड़ के खेलों में सहस्रों ही स्त्री पुरुष मन की प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। इन खेलों में खिलाड़ी तो अपना मनोरंजन करते ही हैं, परन्तु दर्शकों को उनसे भी अधिक आनन्द आता है। किसी हाकी या क्रिकेट के मैच में चले जाइये और तब वहाँ देखिये दर्शकों की अवस्था। गेंद के साथ साथ लोगों के हृदय उछलते कूदते हैं। ज्यों ही किसी ने गोल किया कि सैकड़ों ही रूमाल और टोपियाँ ऊपर चढ़ते दिखाई देते हैं। जनता, स्वभावतः, खिलाड़ियों के एक या दूसरे पक्ष का समर्थन करने लगती है और अपने अपने पक्ष की विजय पर चिल्लाते चिल्लाते लोगों के गले बैठ जाते हैं।

तमाशे—मेलों, प्रदर्शनियों, सरकसों और कार्नीवाल में भी अच्छा मनोरंजन होता है। आधुनिक समय में

सर्कस तो गजब ही ढाते हैं । शेर की पीठ पर बकरी बैठ-कर उछल कूद मचाती है और हाथी एक स्टूल पर अपने चारों स्थूल पैरों को इकट्ठा करके जब गणेश जी की सी आकृति धारण कर लेता है तो लोगों के आश्चर्य और हँसी का ठिकाना नहीं रहता। सर्कस में झूले के खेल और मौत का कुँआ देखकर हम दाँतों तले उँगली दबाते हैं। विज्ञान के आविष्कारों पर तो आश्चर्य होता ही है, परन्तु मनुष्य के कार्य भी कम आश्चर्य जनक नहीं । प्राकृतिक शक्तियों पर मनुष्य ने विज्ञान द्वारा विजय प्राप्त की है परन्तु हिंसक पशुओं के स्वभाव को बदल देना उसकी बुद्धि का ही चातुर्य है ।

ललित कलाएँ—ललित कलाएँ भी मनोरंजन के अच्छे साधन प्रदान करती हैं। मूर्त्तिकला, चित्रकारी, कविता, फोटोग्राफी आदि से कुछ लोग अपना मन बहलाव करते हैं। जिसको चित्रकारी का शौक़ है वह अपने अवकाश की घड़ियाँ काग़ज़, तूलिका और रंगों के सम्पर्क में व्यतीत करता है। जिसे फोटोग्राफी की धुन है वह अपना कैमरा लेकर प्रकृति की गोद में जा बैठता है। रंग विरंगे बादलों, हिम आच्छादित पर्वतों, और हरे भरे मैदानों के फोटो लेने के अतिरिक्त उसे दूसरी बात नहीं भाती। अपने लिए हुए फोटो से प्रिय उसे कोई वस्तु नहीं । इसी प्रकार मूर्त्तिकार और कवि अपनी अपनी धुन में मस्त रहते हैं । इनके लिये अपने काम से बढ़कर दूसरा मनोविनोद का कोई साधन नहीं होता।

घर के भीतर खेले जाने वाले खेल—घर के भीतर खेले जाने वाले भी ऐसे बहुत से खेल हैं जिनसे मनुष्य

मनोरंजन करते हैं। इनमें शतरंज, चौपड़, ताश, कैरम और पिंगपौंग अधिक प्रचलित हैं। शतरंज, चौपड़ और ताश तो बहुत प्राचीन समय से चले आरहे हैं। शतरंज तो बादशाही खेल समझा जाता है। किसी ग़रीब को इसकी लत पड़ जाय तो उसका तो दिवाला ही निकल जाय।

मनोरंजन, साधारण मनुष्यों के ही लिये नहीं अपितु संसार के महापुरुषों को भी इसकी आवश्यकता होती है। लेनिन अवकाश के समय में शतरज से अपनी मानसिक थकान दूर करता था। नैपोलियन को युद्ध क्षेत्र से जब छुट्टी मिलती थी तो वह ज्यामिति के कठिन प्रश्नों को हल करके अपना मनोरंजन करता था। सुप्रसिद्ध आधुनिक विज्ञानाचार्य आइन्स्टाइन जब अपनी प्रयोगशाला के काम से बहुत ऊब जाते हैं तो वह अपनी वायलिन की शरण लेते हैं। महात्मा-गाँधी बच्चों के साथ अपना मनोरंजन करते थे।

उपसंहार--सारांश यह है कि हमारे दैनिक जीवन में मनोरंजन की बहुत आवश्यकता है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों ने बहुत से नवीन मनोरन्जन के साधनों की हमें भेंट की है और इस प्रकार सर्व साधारण के लिए भी मनोरंजन सुलभ हो गया है। यहाँ इतना कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि मनोरंजन सीमा के अन्दर ही होना चाहिए अन्यथा दूसरे आवश्यक कार्यों में इससे बाधा पड़ जाती है और तब इसका स्वाद भी फीका पड़ जाता है। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि मनोरंजन का साधन अपनी सामर्थ्य के अनुकूल हो और मन की प्रसन्नता के साथ वह स्वास्थ्य के लिए हितकर हो।

———

दवाली का त्यौहार

त्यौहारों का महत्व—प्रत्येक देश में प्रत्येक जाति अपने अपने त्यौहार मनाती है। इन त्यौहारों में जाति के लोग उत्सव मनाते हैं, खेल-कूद करते हैं, अच्छे भोजन खाते हैं और आपस में मिलते जुलते और मनोरंजन करते हैं। त्यौहारों का जन्म, मनुष्य की आमोद प्रमोद की प्रवृत्ति के कारण ही हुआ है। मनुष्य कर्मशील प्राणी है। उसे जीवन यापन के लिये कठोर परिश्रम करना पड़ता है। लगातार परिश्रम करने के कारण उसे मनोरंजन की आवश्यकता होती है। त्यौहारों में व्यक्तिगत मनोरंजन के अतिरिक्त सामूहिक मनोरंजन की भावना निहित है। जातीय-उत्सव मनाने के हेतु ही हमारे पूर्वजों ने त्यौहारों का आयोजन किया था। सभी त्यौहारों के कुछ ऐतिहासिक कारण हैं। कुछ त्यौहार किसी ऐतिहासिक महत्व-पूर्ण घटना के स्मरण हेतु बनाय गये हैं। भारतवर्ष में हिन्दुओं के त्यौहार अधिकतर धार्मिक दृष्टि से बने हैं। त्यौहारों की उत्पत्ति का कारण चाहे कुछ भी हो परन्तु एक बात तो सब में समान रूप में मिलती है और वह यह कि उनसे जीवन में सरसता आ जाती है। जातीय-जीवन में आनन्द और स्फूर्ति का संचार हो उठता है और पिछली वैमनष्यता दूर होकर आपस में प्रेम भाव का विकास होता है।

हिन्दू जाति भी सभी जातियों के समान अपने त्यौहार मनाती है। श्रावणी (रक्षा-बन्धन) दशहरा, दिवाली और होली हिन्दुओं के सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण त्यौहार हैं। वैसे तो ये सभी त्यौहार सभी हिन्दुओं के हैं और सभी इनको समान उत्साह से मनाते हैं परन्त फिर भी इन त्यौहारों में

विशेषीकरण कर दिया गया है। श्रावणी को ब्राह्मणों का मुख्य त्यौहार माना गया है। दशहरा क्षत्रियों का त्यौहार कहा गया है। दिवाली को वैश्य सबसे अधिक उत्साह से मनाते हैं। और होली शूद्रों का त्योहार बनाया गया है।

दिवाली का ऐतिहासिक महत्व—दिवाली का त्यौहार वैश्यों का माना गया है परन्तु अन्य हिन्दू भी इसे बड़े उत्साह से मनाते हैं। दिवाली के ऐतिहासिक महत्त्व के विषय में यह कहा जाता है कि दिवाली के ही दिन रामचन्द्र जी रावणवध करके और लंका को जीत कर अयोध्या लौटे थे। उनके स्वागत में अयोध्या के लोगों ने अपने अपने भवनों को सजाया था और उन पर दीपमालिकायें लगाई थीं। चूँकि दीपों की इस त्यौहार में बाहुल्यता होती है, इसलिये दिवाली को दीपावली भी कहा जाता है।

स्वच्छता—दिवाली के त्यौहार पर स्वच्छता का सबसे अधिक ध्यान रक्खा जाता है। धनी और निर्धन, पढ़े और अपढ़ सभी अपने अपने घरों की सफाई करते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसी त्यौहार पर सफाई को इतना महत्व क्यों दिया जाता है ? कारण यह है कि दिवाली का विशेष दिन कार्तिक मास की अमावस्या को पड़ता है। यह ऐसा समय होता है जब कि वर्षा पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है और नदी, नालों, खेतों आदि का पानी सूख जाता है। भरे हुए पानी से उत्पन्न कीड़े मकोड़े नष्ट हो जाते हैं और एक प्रकार से नये वर्ष का प्रारम्भ होता है। वर्षा काल में मकान टूट फूट जाते हैं और मकान गन्दे हो जाते हैं। कार्तिक मास में मकानों की मरम्मत की आवश्यकता होती

है। अतः दिवाली के त्यौहार से कुछ समय पहिले सफाई करना आवश्यक रक्खा गया है। यह किंवदती है कि गन्दे मकानों में लक्ष्मी (धन की देवी) का आगमन नहीं होता। यह बात ठीक है या नहीं और दिवाली पर लक्ष्मी आती है या नहीं, इसे तो कोई नहीं जानता और न किसी ने लक्ष्मी को आते हुए देखा ही है। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि इस विश्वास के कारण सभी लोग सफाई पर बहुत अधिक ध्यान देते हैं। घरों की लिपाई. पुताई हो जाती है तथा टूटे हुए मकानों की भी मरम्मत हो जाती है। मकानों में पुताई कराने से वर्षा ऋतु के इकट्ठे हुए कीड़े मकोड़े नष्ट हो जाते हैं और वायु शुद्ध हो जाती है। स्वच्छ मकानों में साक्षात् लक्ष्मी देवी रात्रि को आती हैं या नहीं। इसे तो कोई नहीं जानता, परन्तु स्वच्छता से धन का बहुत अधिक सम्बन्ध है यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। गन्दे मकानों में रहने से और गन्दे वातावरण मे साँस लेने से स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और जब स्वास्थ्य ही नष्ट हो गया तो मनुष्य धन कहाँ से पैदा करेगा। अतः स्वस्थता धन पैदा करने की सबसे पहिली सीढ़ी हुई। विभिन्न त्यौहारों के आयोजन एवं उनके लिये उपयुक्त समय निर्धारण करने में हमारे पूर्वजों ने बड़ी ही दूरदर्शिता से काम लिया था।

त्यौहार के दिन का कार्य क्रम—दिवाली के दिन घर और बाजार की शोभा देखने ही योग्य होती है। लिपाई, पुताई आदि का काम तो चार छः दिन पहिले ही हो जाता है, परन्तु दिवाली के दिन विशेष सजावट कर दी जाती है। मकानों के दरवाजों पर रंग करा दिए जाते हैं और अन्दर घर में बहुत से चित्र लगा दिए जाते हैं। व्यापारी लोग अपनी दूकानों को तो बहुत ही सजा देते हैं। हलवाई

बड़े बड़े थालों में मिठाइयाँ लगा कर दुकान की शोभा बढ़ाते हैं। ठठेरी बाज़ार का दृश्य तो देखने ही योग्य होता है। बढ़िया बढ़िया बर्त्तनों को क्रमबद्ध करके दूकान के अग्र भाग में रख दिया जाता है। वैसे तो बर्त्तनों की ही चमक आँखों को चकाचौंध कर देती है परन्तु रात्रि को जब उन पर प्रकाश पड़ता है तो उनकी ओर दृष्टि किसी प्रकार नहीं ठहरती। बाज़ार में एक तो वैसे ही त्यौहार का सामान लेने लोग अधिक पहुँचते हैं, फिर बहुत से दर्शक भी वहाँ पहुँच जाते हैं। भीड़ का ठिकाना नहीं रहता। एक दूसरे को धक्का मुक्की करते हुए लोग निकल पाते हैं। खिलौनों और चित्रों की दूकानों पर भी ग्राहकों का जमाव खूब रहता है। अनेकों प्रकार के खिलौने और चित्र दूकानों पर लगे होते हैं। सभी लोग बच्चों के लिए खिलौने ले जाते हैं। आतिशबाजी का सामान दिवाली पर खूब बिकता है। बच्चों की बात ही क्या बूढे भी पटाखे, फुलझड़ियाँ, आदि से अपना मनोरंजन करते हैं।

दिन में दोपहर के समय सभी घरों में पूड़ी और पकवानों की सोंधी सुगन्धि से समूचा वातावरण भर जाता है। एक से एक अधिक स्वादिष्ट पकवान बनाये जाते हैं। सभी लोग जी भर कर खाने में आनन्द लेते हैं। निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी इस दिन अपनी वर्ष भर की अतृप्त स्वाद तृष्णा की तृप्ति करते हैं।

ज्यों-ज्यों संध्या का समय निकट आता जाता है, सभी के दिलों में उत्साह बढ़ता जाता है और रात्रि की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा होने लगती है। धीरे धीरे अन्धकार फैलने लगता है और उसके साथ साथ चहल पहल बढ़ती जाती है। बच्चे, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध सभी दीपमालाओं के

आयोजन में लग जाते हैं। कोई दीये लाता है तो कोई उनमें तेल भरता है और कोई उन्हें जलाता है। बात की बात में सारा घर दीपकों से जगमगाने लगता है। अमावस्या का घोर अन्धकार विलीन हो जाता है और रात्रि, दिन में परिणत हो जाती है। इस रात्रि को घर के कोने कोने में दीपक जलाये जाते हैं। कोई भी स्थान अन्धकार में नहीं रहता। घर से बाहर निकल कर देखिए तो चारों ओर दीप-मालाओं के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु पर दृष्टि नहीं ठहराती। दीप-शिखाओं की शोभा निराली होती है। शहर के बाजारों का इस रात्रि में दृश्य तो अपूर्व होता है। दीप-मालाओं के स्थान पर विद्युतमालायें दिखाई देती हैं। सहस्रों विद्युत बल्ब अपने विभिन्न रंगों की फुल झड़ियाँ सी छोड़ते हुए दृष्टि गोचर होते हैं। सचमुच दिवाली का त्यौहार इसी समय अपने पूर्ण उत्कर्ष पर होता है। दिवाली के अनेकों कार्यों में दीप-मालिका का ही कार्य सबसे प्रमुख है तभी तो वर्ष के किसी भी दिन दिवाली शब्द के साथ ही सर्व प्रथम दीप-मालिका का दृश्य हमारे नेत्रों में चित्रित हो जाता है।

दीपक जलाने का कार्य समाप्त हो जाने पर बच्चे और वयस्क पटाखे फुलझड़ियाँ आदि आतिशबाजी के खेलों से मनोरंजन करते हैं। इस समय बच्चों की उछल-कूद भी देखने ही योग्य होती है। वह अपने खेल कूद में बड़ों को भी भाग लेते हुए देख कर पूरी गंभीरता से अपने कार्यों को करते हैं। यही एक ऐसा समय होता है जब कि उनके ऊटपटांग कामों में कोई हस्तक्षेप करता हुआ उन्हें नहीं रोकता।

इन कामों से छुट्टी पाकर सब लोग अपने घर लक्ष्मी-पूजन करते हैं। पूजन के पश्चात् अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार

सभी मिठाई, बताशे और खील-खिलौने (खाँड़ के बने) बाँटते हैं। इस काम में भी बच्चे खूब उत्साह दिखाते हैं। दिवाली की रात्रि को सभी घरों में कम से कम दो एक दीपक तो रात्रि भर जला कर रक्खा जाता है। लोगों का विश्वास है कि दिवाली की रात को लक्ष्मी-देवी सभी घरों में निरीक्षण को आती हैं परन्तु जिस घर में अन्धकार होता है उसके द्वार पर से ही लौट जाती हैं। अतः सभी लोग इस अवसर से नहीं चूकना चाहते क्योंकि लक्ष्मीजी का द्वार पर से लौटना वर्ष भर निर्धनता को बुलावा देना है।

दिवाली की रात्रि के अन्य कार्य-क्रमों के साथ एक प्रचलित कार्य-क्रम जुआ खेलना भी है। अधिकांश लोग इस रात्रि को जुआ खेलते हैं और अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करते हैं। कुछ लोग तो आर्थिक हानि-लाभ के दृष्टिकोण से ही जुआ खेलते हैं परन्तु अधिकांश जन केवल अपनी भाग्य परीक्षा के ही हेतु द्यूत-कर्म में प्रवृत्त होते हैं। लोगों में यह विश्वास है कि दिवाली के दिन जो जीतेगा, वह आदमी पूरे वर्ष अपने आर्थिक जीवन में विजयी होता रहेगा और उस पर लक्ष्मी-देवी की कृपा-दृष्टि बनी रहेगी। जो व्यक्ति इस रात्रि को जुए में हारेगा वह पूरे वर्ष घाटे में रहेगा। इसी अन्ध-विश्वास के कारण लाखों नर-नारी दिवाली को रात को जुआ खेलते हैं। वर्ष भर में यही एक ऐसा दिन है जब कि जुआ खेलना बुरा नहीं समझा जाता। आश्चर्य की बात हैं कि इस दिन जुए पर से प्रायः सरकारी नियन्त्रण भी शिथिल हो जाता है। किन्तु इस मामले में सरकार अधिक ध्यान देने लगी है। अनुचित काम धर्म की आड़ में उचित नहीं बन सकता।

गोवर्द्धन पूजा—दिवाली के दूसरे दिन प्रतिपदा को

गोवर्द्धन-पूजा होती है। कहते हैं कि इसी दिन भगवान कृष्ण ने इन्द्र की पूजा को हटाकर गौओं को चारा देने वाले गोवर्द्धन की पूजा चलाई थी। इन्द्र ने व्रज पर कुपित होकर मेघों को आज्ञा देदी थी कि वे व्रज पर अपनी पूरी सामर्थ्य से वर्षा करें और उसे बहादें। जब अति वृष्टि के कारण व्रजवासियों की दशा दयनीय हो गई और उन्हें अपना सिर बचाने को कोई स्थान नहीं दिखाई दिया तो कृष्ण ने अपनी उँगली पर गोवर्द्धन पर्वत को उठा लिया और उसके नीचे व्रजवासियों ने खड़े होकर अपनी प्राण-रक्षा की। तभी से गोवर्द्धन पर्वत की पूजा होने लगी। इस दिन भी लोग खूब उत्सव मनाते हैं और रात्रि को गोबर से बनाये हुए गोवर्द्धन की पूजा करते हैं।

भैया-दौज यमद्वितिया)—दिवाली के तीसरे दिन भैया-दौज का त्यौहार होता है। इस दिन भाई और बहिन अपने पारस्परिक प्रेम-बन्धन को दृढ़ करते हैं। बहिनें अपने भाइयों को टीका करती हैं और उन्हें मिठाई खिलाती हैं। भाई अपनी बहिनों को अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा देते हैं। इस दिन भी खूब चहल-पहल रहती है।

उपसंहार—दिवाली के त्यौहार के अन्तर्गत इस प्रकार कई त्यौहार मनाये जाते हैं और चार-पाँच दिन समूचे हिन्दू-समाज मे उत्साह और आनन्द का सागर हिलोरें मारता है। यों तो सभी जातीय त्यौहारों से जीवन में सरसता, मधुरता और आनन्द की वर्षा होती है परन्तु दिवाली इस दृष्टि से सबसे बढ़-चढ़ कर है। इस पर कई दिन तक उत्सव और त्यौहार होते रहते हैं। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, एवं वैज्ञानिक सभी दृष्टियों से दिवाली का त्यौहार महत्वपूर्ण है।

रेडियो

अजमेर बोर्ड १९४५, १९४७, १९४९

आधुनिक विज्ञान की देन—विज्ञान ने अपने चमत्कारों से आधुनिक संसार को चकित कर दिया है। बीसवीं सदी की वैज्ञानिक खोजों में रेडियो को यदि सर्वोत्तम खोज कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। हमारे प्राचीन ग्रन्थ महाभारत में आया है कि संजय घर बैठे ही धृतराष्ट्र को युद्ध की सारी घटनायें सुनाया करते थे और क्षण-क्षण पर होने वाले समाचारों से उन्हें अवगत किया करते थे। किसी को इस बात की सत्यता में विश्वाश नहीं होता था। परन्तु आज से ४० वर्ष भी पूर्व किस को पता था कि एक दिन हम सब घर बैठे ही तत्काल विश्व भर के समाचार सुन लिया करेंगे? आप रेडियो का एक छोटा सा यंत्र अपने घर में, अपनी मोटर में यहाँ तक कि अपनी जेब में रख लीजिए और जी चाहे वहाँ के समाचार, भाषण, गाने तथा अन्य बातें सुनते रहिए। कैसा आश्चर्यजनक आविष्कार हुआ है रेडियो का इस बीसवीं सदी में!

रेडियो का आविष्कार—सन् १९२? में इटली के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक मारकोनी ने रेडियो का आविष्कार किया था। यह एक ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा बिना तार के ही समाचार सुने जा सकते हैं। विस्तृत रूप से इस का सिद्धान्त समझना तो सरल नहीं है, पर हाँ मोटे रूप से इसे इस प्रकार बतलाया जा सकता है: जैसे ही हम बोलते हैं अथवा कोई शब्द करते हैं, वैसे ही उसके आघात से वायु में तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार जब कि ठेला फेकने से पानी में लहरें पैदा हो जाती हैं। कोई भी ध्वनि

एक स्थान से दूसरे स्थान तक किसी न किसी माध्यम द्वारा पहुँचती है और यहाँ ध्वनि के लिए ईथर का ही माध्यम है। ध्वनि की तरंगे सारे विश्व में व्याप्त हो जाती हैं। बाड कार्सिटग स्टेशन पर माइक्रोफोन धीमी से धीमी ध्वनि को भी ग्रहण करके ट्रांसमिटर की सहायता से जिसके लिए विद्युत शक्ति की अपेक्षा होती है उसे विस्तृत आकाश में फेंक देता है। जहाँ रेडियो का यंत्र लगा होता है वहाँ रेडियो का एक तार ऊँचे बाँस से बाँध दिया जाता और एक पृथ्वी के अन्दर गाड़ दिया जाता है। रेडियो में काम करने वाली बिजली का सम्बन्ध इस प्रकार आकाश में व्याप्त बिजली की तरङ्गों से होजाता है। रेडियो का तार ब्राडकास्ट किए जाने वाले समाचारों को आकाश से तुरन्त ही ग्रहण कर लेता है और उन्हें सभी रेडियो वाले अपने अपने घरों में आनंद से सुनते हैं।

रेडियो का विस्तार—संसार के सभी उन्नत शील देशों ने अपने ब्राडकार्सिटग स्टेशन या रेडियो स्टेशन स्थापित कर लिये हैं। इन स्टेशनों से प्रति दिन ही निश्चित समय पर समाचार, गाने, वार्त्तालाप आदि ब्राडकास्ट किये जाते हैं। रेडियो वालों को जहाँ का प्रोग्राम सुनना होता है, उसी स्थान पर रेडियो की सुई निश्चित समय पर लगा देते हैं और तब वे सब बातों को ऐसे सुनते हैं, मानो कोई कमरे में ही बैठा पर्दे की ओट से बोल रहा हो। हमारे देश भारतवर्ष में देहली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, हैदराबाद, मद्रास, श्रीगर आदि प्रसिद्ध नगरों में रेडियो स्टेशन बने हुए हैं। अखिल भारतवर्षीय रेडियो देहली में स्थापित है।

रेडियो से लाभ—दुर्भाग्य का विषय है कि भारतवर्ष के लोगों की आर्थिक दशा अभी ऐसी नहीं कि रेडियो का

अधिकांश जनता उपयोग कर सके। फिर भी थोड़े ही लोग ऐसे होंगे जिन्होंने एक बार भी रेडियो पर समाचार आदि न सुने हों। जहाँ-कहीं रेडियो होता है वही आस पास के लोन पहुँच जाते हैं और इस प्रकार विना व्यय किये ही वे उसका लाभ उठा लेतें हैं। जो प्रायः रेडियो सुनते रहते हैं वे जानते रहते हैं कि कैसे-कैसे प्रोग्राम प्रतिदिन आते रहते हैं। कभी विश्भर के राजनैतिक समाचार सुनाये जा रहे हैं तो कभी संगीत की स्वर लहरी से कमरा गूँजने लगता है। कभी देहाती लोगों की हँसी-मजाक चल रही है तो कभी किसी विद्वान का ओजस्वी भाषण सुनाई पड़ने लगता है। कभी स्वास्थ्य और कृषि के ऊपर उपयोगी बातें सुनतें हैं तो कभी किसी कविता की पंक्तियाँ मधुर शब्दों में सुनाई पड़ कर हमारे हृदतंत्री के तारों को झकझोर डालती हैं। चित्त खिन्न हो रहा हो और कहीं बाहर जाने की इच्छा मन में न हो, कोई प्रिय सम्बन्धी पास में भी न हो तो चुप चाप पलंग पर लेट जाइए और अपने रेडियो का बटन दबा दीजिए। क्षण भर में आपकी उदासी दूर हो जायगी। एक से एक बढ़ कर गवैयों को, कवियों को, अभिनेत्रियों को और बिद्वानों को आप अपने सम्पर्क में ले आयेंगे।

उपयोगिता—वर्तमान समय में रेडियो की उपयोगित बहुत बढ़ गई है और यही कारण है कि सभी देशों की सरकारें इसका अधिकाधिक प्रचार कर रही हैं। शासन व्यवस्था में सरकार को रेडियो से बहुत सुविधा हो गई है। आज कल शासन करना किसी भी देश की सरकार के लिये टेढ़ी खीर बना हुआ है। स्थान-स्थान पर नई नई राजनैतिक पार्टियाँ बन गई हैं और वे निरंतर जनता को वर्तमान सरकार के विरुद्ध भड़काया करती हैं। रेडियो की सहायता

से सरकार प्रतिदिन ही अपनी नीति से जनता को अवगत करती रहती है और देश के कोने-कोने के समाचार तथा संसार भर के समाचार लोगों को सुनाती रहती है। यही नहीं, अपितु वह बड़े विद्वानों और जन प्रिय महापुरुषों के व्याख्यानों द्वारा जनता को पथ-भ्रष्ट होने एवं लोगों के बहकावे में आने से बचाती रहती है। युद्ध के समय में तो रेडियो की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है। युद्ध-काल में जनता आतंकित हो जाती है और किसी भी झूठी अफवाह से वह प्रभावित हो जाती है। ऐसे समय रेडियो द्वारा ही सरकार की आवाज जनता के कानों तक पहुँचाती है और शांति व्यवस्था बनाये रखती है। युद्ध के समय में प्रचार का काम रेडियो ही करता है।

समाज-सुधार——रेडियो द्वारा सबसे प्रशंसनीय कार्य समाज-सुधार और शिक्षा का होता है। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के सम्बन्ध में बड़े-बड़े व्याख्यान दाताओं के भाषण रेडियो पर होते हैं। उनसे जनता तक वास्तविक और सच्ची बातें पहुँचती हैं। उपदेशों का लोगों पर प्रभाव पड़ता है। और इस प्रकार बहुत से मिथ्या-संस्कार, कुरीतियाँ, धार्मिक पक्षपात के भाव आदि दूर होते हैं। अनपढ़ और ग्रामीण लोगों के लिये देहाती प्रोग्राम रेडियो द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। इन प्रोग्रामों में कृषि, स्वास्थ्य, ग्राम पंचायतों आदि के विषय में उपयोगी भाषण अथवा बात-चीत आती है। इनसे ग्रामीण जनता बहुत-कुछ हितकर बातें जान जाती है और उनके उपयोग से लाभ उठाती है। एक तो हमारे देश में समाचार पत्रों का वैसे ही अभाव है, फिर जो थोड़े बहुत अच्छे समाचार-पत्र हैं वे ग्रामीण जनता तक नहीं पहुँच पाते। रेडियो से सभी समाचार और देश-विदेश की घटनाएँ

गाँवों के कोने-कोने तक सरलता से पहुँचाई जा सकती हैं। शिक्षा का कार्य भी रेडियो द्वारा संपादित होता है और बहुत कुछ किया जा सकता है। अब तक विद्यार्थी या तो अपनी पाठ्य-पुस्तकों से ही विभिन्न विषयों का अध्ययन करते थे या अपने ही स्कूल अथवा कालेज के अध्यापकों से सुन सकते थे। परन्तु रेडियो की सहायता से अब संसार भर के विद्वानों के शिक्षा विषयक भाषण सुने जा सकते हैं। एक विषय पर विभिन्न विद्वानों के भाषण सुनने से विद्यार्थियों को अत्यधिक लाभ हो सकता है। खेद का विषय है कि लोक-शिक्षण के कार्य में रेडियो का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया जा रहा है। आशा है कि शीघ्र ही इसका अधिक से अधिक प्रयोग शिक्षा-प्रसारण में होने लगेगा।

मनोरंजन—मनोरंजन का भी रेडियो उत्तम साधन है। चित्त को प्रसन्न करने के लिये, थकान मिटाने के लिये रेडियो से बढ़कर सस्ता और अच्छा अन्य साधन नहीं। संसार भर के प्रसिद्ध संगीतिज्ञों और गायकों के गाने रेडियो पर सुने जा सकते हैं। जिन अभिनेत्रियों की स्वर लहरी को सुनने के लिये हम सिनेमा में पैसे खर्च करते है, उन्हें हम रेडियो पर नित्य प्रति ही गाते हुए सुनते हैं सगीत की इच्छा न हो तो कविता अथवा नाटक आने वाले प्रोग्राम के स्थान पर रेडियो की सुई घुमा दीजिये और उसका रसास्वादन करने लगिये। कभी देहाती लोगों का हँसी-मजाक सुनते हुए लोट-पोट हो जाइये और कभी बालकों की विनोद भरी तोतली वाणी सुनकर वात्सल्य रस में डुबकियाँ लीजिये। एक से एक बढ़कर मन को प्रसन्न करने वाली बातें हम रेडियो से सुन सकते हैं और इस प्रकार अपने परिश्रान्त शरीर और मस्तिष्क को प्रफुल्ल कर सकते हैं। एक सबसे अच्छी

बात रेडियो के विषय में यह है कि इसके किसी भी मनो-रंजक प्रोग्राम में दूषित प्रभाव डालने वाली एवं नवयुवकों को कुमार्ग पर ले जाने वाली कोई बात शायद ही होती है।

व्यापार-वृद्धि—व्यापार में भी रेडियो उपयोगी सिद्ध हुआ है। संसार भर की व्यापारिक वस्तुओं के मूल्य रेडियो से जाने जा सकते हैं। इससे यह लाभ होता है कि वस्तुओं के मूल्य मे अधिक अन्तर व्यापारी लोग नहीं कर पाते। रेडियो के आविष्कार से पहिले, वहुत दिनों में व्यापारिक समाचार विदेशों से आते थे और इससे मूल्यों में वहुत अन्तर बना रहता था। अब यह कठिनाई नहीं रही है। व्यापारिक विकास में रेडियो से भविष्य में वहुत-कुछ सहायता मिलने की सम्भावना है।

रेडियो का भविष्य—अपने जन्म-काल से अब तक थोड़े से ही समय में रेडियो ने वहुत उन्नति की है। यदि इसी क्रम से इसमें सुधार होता गया तो शीघ्र ही निकट भविष्य में इसका पूरा पूरा लाभ होने लगेगा। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार को चाहिये कि रेडियो का मूल्य घटाकर इतना कर दे कि जिससे सर्व साधारण भी इसे क्रय कर सकें। यदि ऐसा अभी नहीं किया जा सकता तो कम से कम एक रेडियो सेट प्रत्येक गाँव-सभा को विना मूल्य के दे दिया जाय जिससे सभी गाँव कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठा सकें। दूसरे लोक-शिक्षण के कार्य में रेडियो का प्रयोग अधिक से अधिक होना चाहिये। कोई आश्चर्य नहीं कि गाँव-गाँव में रेडियो लग जाने से रात्रि-पाठशालाओं में 'प्रौढ़ शिक्षा का कार्य समुचित रूप से होने लगे।

उपसंहार—विज्ञान के गर्भ में अभी बहुत सी आश्चर्य

जनक बातें छिपी हैं। रेडियो से हम केवल सुन ही सकते हैं, घटनाओं को देख नहीं सकते। अब एक ऐसे यंत्र का आविष्कार हो गया है जिसके द्वारा हम सुनने के साथ बोलने वाले को देख भी सकेंगे। फिर तो संसार भर के नाटकीय दृश्य हमारे नेत्रों के सम्मुख नाचा करेंगे। इस यंत्र को टैलीविजन का आविष्कार कहते हैं। शीघ्र ही सर्व साधारण के लिये यह यंत्र भी सुलभ हो जायेगा।

सिनेमा

अजमेर बोर्ड १९४०, १९४६, १९४८

सिनेमा का प्रचार—पिछले २० वर्षों में जितना अधिक प्रचार सिनेमा का हुआ है उतना किसी भी अन्य वैज्ञानिक आविष्कार का नहीं। धनी, निर्धन, शिक्षित और अशिक्षित, स्त्री और पुरुष, वृद्ध और बालक सभी के जीवन को चल-चित्रों ने प्रभावित किया है। अभी देहातों में तो इसकी पहुँच अधिक नहीं हुई है यद्यपि सैकड़ों घूमने वाले सिनेमा वहाँ भी आये दिन पहुँचते रहते हैं, तथापि शहरों की जनता तो सिनेमाओं के लिये मरी मिटती है। शहरों में आइये तो सड़क पर जाने वाला कुली, किसी फिल्मी गाने की एक दो पंक्ति गुनगुनाता हुआ निकल जायगा। इक्के या ताँगे में बैठिये तो इक्के वाला या ताँगे वाला किसी फिल्म स्टार के कंठ की असफल नक़ल करता हुआ घोड़े को दौड़ाता हुआ ले जायगा। जहाँ दो चार बेकार आदमी बैठे गपशप लड़ा रहे होंगे, वहाँ सिनेमा की बातें ही सुनाई पड़ेंगी। विद्यार्थी

धन का अपव्यय—एक तो भारतवर्ष की अधिकांश जनता वैसे ही निधन है फिर सिनेमा का व्यय और भी बढ़ गया है। शायद ही कोई ऐसा शहरी परिवार होगा जो प्रति महीने अपनी आय का कुछ-न-कुछ भाग सिनेमा में व्यय न करता हो। सिनेमा ही मनोरंजन का एक ऐसा साधन है जिसने निर्धन लोगों को धनियों की अपेक्षा अधिक प्रभावित किया है। यह सच है कि मानव-जीवन में मनोरंजन का भी मुख्य स्थान है और बिना मनोरंजन के काम नहीं चल सकता। परन्तु साथ ही यह विचार करने की नितान्त आवश्यकता है कि मनोरंजन ऐसा होना चाहिये जो मन को प्रसन्न करने के साथ ही, स्वास्थ्य के लिये हितकर हो और अपनी सामर्थ्य के अनुकूल हो। सिनेमा से पिछली दोनों बातों में किसी की पूर्त्ति नहीं होती। उसमें धन का अत्यधिक अपव्यय होता है।

स्वास्थ्य का विनाश—स्वास्थ्य की दृष्टि से तो सिनेमा देखने का यही नहीं कि अच्छा परिणाम नहीं निकलता, बल्कि इसके विपरीत यह स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है। अधिकांश भारतीय-सिनेमा-घरों में स्वास्थ्य की बातों का कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता। एक तो वैसे ही उनकी स्थिति शहर के मध्य भाग में इसलिये रक्खी जाती है कि अधिक से अधिक जनता आ सके, दूसरे उनमें हवा के आने-जाने की उचित व्यवस्था भी नहीं होती। छोटे से कमरे में अधिक से अधिक व्यक्तियों के बैठने के लिये स्थान बनाये जाते हैं। बीड़ी और सिगरेट की दुर्गन्ध से सारा कमरा भर जाता है। थूकने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं होता। गन्दे कपड़े पहिने हुए मनुष्य एक दूसरे से सट कर तीन घण्टे तक बैठे रहते हैं। इससे नाना प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं और

विशेषकर बहुत सी छूत की बीमारियाँ तो सिनेमा से ही लोग लाते हैं। बैठने के स्थान पर्दे से, उचित दूरी पर नहीं रक्खे जाते इससे आँखों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। सिनेमा घर के भीतर ही खोमचे वाले पहुँच जाते हैं और उन्हीं से अधिकतर लोग वस्तुएँ लेकर वहीं बैठे बैठे खाने लगते हैं। एक तो खोमचे वालों की खाने की चीजें वैसे ही गन्दी और दूषित होती हैं फिर उस दूषित वातावरण से वे और भी अधिक विषैली और कीटाणु-युक्त हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि सिनेमा-घरों का समूचा वातावरण अस्वास्थ्यकर होता है और सिनेमा देखने से धन के अपव्यय के साथ स्वास्थ्य का भी नाश होता है।

चारित्रिक-पतन—वर्त्तमान सिनेमाओं का नवयुवकों के चारित्रिक-पतन में भी प्रमुख हाथ है। दूसरे लोगों को तो जाने ही दीजिए, छोटे-छोटे विद्यार्थियों को बहुत से व्यसन सिनेमाओं से ही लगते हैं। दो-चार खेलों को छोड़ कर सभी खेलों में नायक और नायिकाओं के बहुत ही भद्दे और अश्लील प्रदर्शन सिनेमाओं में दिखलाये जाते हैं। प्रेम, संयोग और वियोग के वीभत्स दृश्य प्रायः सभी खेलों में न्यूनाधिक रूप में होते हैं। नायक और नायिकाएं अपने वार्त्तालाप में ऐसे हाव, भाव और कृत्य प्रदर्शित करते हैं जिन्हें कोई भी संभ्रान्त व्यक्ति अपने परिवार की स्त्रियों के साथ बैठकर देखना पसन्द नहीं करेगा। परन्तु दुख तो इस बात का है कि यह सब-कुछ होते हुए भी प्रतिदिन ही सैकड़ों परिवार ऐसे चित्रों को लज्जा पूर्वक देखते हैं। किसी भी चित्र को ले लीजिए, उसमें सिवाय प्रेम-गाथा के दूसरी कहानी ही न होगी। कुछ धार्मिक चित्र भी तैयार होते हैं परन्तु प्रथम तो उनकी संख्या नहीं के बराबर है, दूसरे उनमें

भी कुछ-न-कुछ दृश्य आपत्ति-जनक आ ही जाते हैं। इस प्रकार, अश्लील चित्रों के देखने से विद्यार्थियों के संस्कारों पर बहुत ही दूषित प्रभाव पड़ता है और छोटी अवस्था से ही उनमें बुरे विचार घर कर जाते हैं। अधिकांश विद्यार्थियों की पुस्तकों में अभिनेत्रियों के फोटो रक्खे रहते हैं। परीक्षा में विद्यार्थियों के असफल होने के कारणों में सिनेमा अब मुख्य कारण बन गया है। जिस प्रकार विद्यार्थियों पर सिनेमा का बुरा प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार लड़कियाँ भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह पाती हैं। लड़के और लड़कियाँ जैसे दृश्य सिनेमा में देखते हैं, जैसे वार्त्तालाप वे सुनते हैं और जैसे आदर्श उनके सामने सिनेमा द्वारा रक्खे जाते हैं, उन्हीं का अनुकरण उनके द्वारा अपने जीवन में किया जाता है।

सिनेमा में सुधार की आवश्यकता—फिल्म कम्पनियों ने जितनी उन्नति कला और फोटोग्राफी में की है, यदि उतनी सिनेमा के अन्य पहलुओं में की होती तो निसंदेह सिनेमा के द्वारा बहुत-कुछ सामाजिक भलाई हो सकती थी। सिनेमा-जगत में रूस उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है और वहाँ सिनेमा से शिक्षा का बहुत-कुछ कार्य लिया जाता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो सुधार-सम्बन्धी कार्य जितनी सरलता और शीघ्रता से सिनेमा द्वारा संपादित किये जा सकते हैं, उतने अन्य किसी साधन से नहीं। शिक्षा के कार्य में तो इससे असाधारण सफलता की आशा है और जहाँ ऐसा किया गया है वहाँ आशा से अधिक ही सफलता मिली है। शिक्षा के विषय जो महीनों में विद्यार्थी अपनी कक्षाओं से पढ़कर सीख पाते हैं, सिनेमा द्वारा बहुत शीघ्र सिखलाये जा सकते हैं। यही बात समाज-सुधार के विषय में है। जिन

समांजिक बुराइयों को दूर करने के लिये भिन्न-भिन्न संस्थायें दिन-रात प्रयत्न कर रही हैं और स्थान-स्थान पर व्याख्यान दिये जाते हैं, यदि सिनेमा के द्वारा उन बुराइयों के व्यवहारिक पहलू पर प्रकाश डाला जाय तो बहुत शीघ्र सफलता मिलेगी। कारण यह है कि किसी बात को सुनकर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसे देखकर होता है और यही कारण है कि सदैव से नाट्य-कला की ओर मनुष्यों की रुचि रही है।

हमारे देश में सिनेमा का विकास तभी संभव हो सकता है जबकि राज्य की ओर से इस कार्य में प्रोत्साहन मिले। फ़िल्म निर्माताओं से यह आशा करना कि वे लोगों की रुचि की अवहेलना करके चित्रों में, सुधारवादी दृष्टि-कोण को अपनायेगें और जनता के हित को भी ध्यान में रक्खेंगे, व्यर्थ है। जब तक कि राज्य, गन्दे और अश्लील फिल्मों पर नियंत्रण नहीं करेगा तब तक यह कार्य रुक नहीं सकता। इसी प्रकार, इस बात की आवश्यकता है कि चित्रों का निर्माण इस ढंग से कराया जाय जिससे कि उनमें मनोरंजन की प्रचुर सामग्री होते हुए भी, जीवन के उपयोगी अंगो पर भी प्रकाश पड़े। सरकार को करोड़ों रुपयों की आय सिनेमा कर के रूप में प्रति वर्ष होती है। यदि उस आय का कुछ भाग, जन-सेवा के कार्य में सिनेमाओं पर व्यय कर दिया जाया करे तो बहुत-कुछ सामाजिक सुधार हो सकता है। कोई कारण नहीं कि जब राज्य की ओर से प्रति वर्ष लाखों रुपये ग्रामोन्नति, कृषि-सुधार, स्वास्थ्य-संबन्धी एवं अछूतोद्धार आदि के प्रचार में व्यय किये जाते हैं, तो इन्हीं उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये सिनेमा के ऊपर व्यय न किये जायँ। हर्ष का विषय है कि अब कुछ समय से राज्य का

ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और प्रत्येक चल-चित्र के प्रारम्भ में कुछ समय, शिक्षा-सम्बन्धी घटनाओं के दृश्यों को दिया जाता है। परन्तु वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह बहुत थोड़ा है। यदि प्रारम्भ में कुछ ध्यान सिनेमाओं की उन्नति की ओर दिया जाय तो जहाँ इससे अब देश का बहुत सा धन व्यर्थ नष्ट हो रहा है और अनेकों बुराइयाँ उत्पन्न हो रही हैं, वहाँ सिनेमा द्वारा जनता के मनोरंजन के साथ ही बहुत-कुछ शिक्षा-सम्बन्धी और समाज-सुधार का कार्य भी हो सकता है।



देश-सेवा के मार्ग और देश-प्रेम

जन्म-भूमि की महिमा——ऐसा कौन पाषाण-हृदय व्यक्ति होगा जो अपने देश का नाम सुनकर गद्‌गद्‌ न हो जाय? अपनी पूज्य जन्म-भूमि के आगे, अपने देश के सम्मुख उस रंक इन्द्र का स्वर्ग किस गणना में है? निसंदेह "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने भी अपनी जन्म भूमि के सामने स्वर्ग को तुच्छ समझा था। राम एक स्थान पर कहते हैं:

यद्यपि सब बैकुंठ बखाना।
वेद-पुरान-विहित जग जाना॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

भगवान कृष्ण भी अपनी जन्म-भूमि के लिये रो रो कर कहते हैं कि

"ऊधो, मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हँस सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुन्जन की छाँहीं।,,

ऐसी जन्म-भूमि के लिये, अपने देश के लिये कौन व्यक्ति अपना सर्वस्व अर्पण करना न चाहेगा ? जिसकी रज में लोट कर हम खेले हैं, जहाँ की गायों का दूध पीकर हम बड़े हुए हैं, जहाँ की शस्य श्यामला भूमि का अन्न खाकर हम पोषित हुए हैं, जहाँ की कलरवमय सरिताओं में कूद-कूद कर हमने क्रीड़ायें की हैं, जहाँ की शीतल मंद सुगंध भरी वायु में हमने साँसे ली है, वहाँ की प्रिय याद में क्या हम दो बूँद आँसू भी न चढ़ायें ? कवि भी अपनी मातृ-भूमि को देखकर आनन्द में मग्न हो जाता है और कहता है:

"हम खेले कूदे हर्ष युत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृ-भूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों गोद में,, ?

—मैथिलीशरण

देश प्रेमी ही देश-सेवी हो सकता है—जिसकी आत्मा में देश-प्रेम की सरस धारा प्रवाहित हो रही होगी, वही देश-सेवा का मार्ग अपना सकता है और वही देश की सच्ची सेवा कर सकता है। विश्व प्रेमी भी वही हो सकता है जो स्वदेश प्रेमी हो क्योंकि स्वदेश प्रेम विश्व-प्रेम में बाधक होने के स्थान में सहायक ही होता है। स्वामी रामतीर्थ जी विश्व-प्रेम के रंग में रंग चुके थे, वे भी अपने देश भारतवर्ष के प्रेम में कहते हैं, "मैं सदेह भारत हूँ। सारा भारतवर्ष मेरा शरीर है। कन्याकुमारी मेरा पैर और हिमालय मेरा सिर है। मेरे बालों की जटाओं से गंगा बह रही है। विन्ध्याचल मेरा लंगोट है। कारा मंडल मेरा दाँया और मलाबार मेरा

बाँया पैर है। पूर्व और पश्चिम मेरी दोनों भुजायें हैं। मेरी आत्मा सारे भारत की आत्मा है।"

देश को स्वतन्त्र करना, सबसे बड़ी सेवा—सबसे बड़े देश प्रेमी और देश-सेवी वे हैं जो अपने देश की स्वतंत्रता के लिये अपने प्राणों की वलि हँसते हँसते चढ़ा देते हैं। किसी देश-सेवी के लिये यह कैसे सम्भव है कि उसकी मातृ-भूमि दासता की श्रृंखला में जकड़ी रहे और वह हाथ पर हाथ धरे चुप चाप देश-सेवा का दम्भ भरता रहे। सच्चा देश-सेवी तो मातृ-भूमि को मुक्त करने के लिये आग में कूद पड़ेगा, पर्वत पर चढ़ जायगा। भयंकर गोलाबारी के बीच वह अपनी छाती को खोल कर बढ़ता चला जायगा। कोई भय, कोई बाधा उसे अपने मार्ग से विचलित न कर सकेगी। वह तो तब तक साँस नहीं लेगा जब तक कि उसकी मातृ-भूमि स्वतन्त्र न हो जायगी। न मालूम स्वतन्त्रता संग्राम में कितने वीरों ने अपनी आत्माओं को बलि वेदी पर चढ़ा दिया परन्तु क्या वे वीर मर गये ? नहीं आज भी उनकी आत्मा हम में निवास कर रही है और हमें उन्हीं की भाँति आगे को बढ़ने आदेश दे रही है। स्वतन्त्रता संग्राम के वीर, मर कर भी अमर हैं और जीवित हैं। किसी कवि ने इस प्रकार के मरने के लिये देखिये क्या कहा है,

'फटे हुए माता के अंचल को बढ़कर सीने वाले।
तुझे वधाई है, ओ, पागल! मर कर भी जीने वाले।'

ऐसे उन सभी लालों को वधाई है जिन्होंने फाँसी की रस्सी को चूम कर गले लगाया है। वे सभी रत्न माता के ताज में अनंत काल तक जगमगाते रहेंगे। उन वीरों की कामना तो सदैव यही रहेगी कि बार बार वे अपनी मातृ-भूमि की ही कोख से जन्म लें और बार बार उसी की सेवा में अपने

प्राणों की वलि चढ़ाया करें। एक सच्चा देश-सेवी तो इसके अतिरिक्त और क्या कह सकता है? कि

"दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फत :
मेरी मिट्टी से भी खुश बुए वफा आयेगी"।

जिस देश की मिट्टी से ऐसे देश-प्रेमी की सुगन्धि आ रही हो वह किस तीर्थ-स्थान से कम है? अमर शहीदों के इन तरण तारण तीर्थों की महिमा कौन गा सकता है? धन्य है वह पथ, जिस पर होकर देश के मतवाले लाल मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने जाते हैं। ऐसे पथ में फेंके जाने के लिये देखिये एक फूल क्या कामना करता है—

"चाह नहीं, मैं सुर-वाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के सिर सर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक॥"

हाँ तो, हमारी सबसे वड़ी देश सेवा और देश भक्ति यह है कि यदि देश परतंत्रता के कष्ट में पीड़ित हो तो सर्व प्रथम किसी भी मूल्य पर उसे इस कष्ट से मुक्त करें क्योंकि परतंत्रता ही सबसे बड़ा अभिशाप है।

देश सेवा के विभिन्न मार्ग—स्वतंत्र देश में भी कर्मशील व्यक्तियों के लिये देश-सेवा के अनेकों मार्ग हैं। देश की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक उन्नति करना ही देश की सच्ची सेवा है। यदि देश दासता के बन्धन से तो मुक्त हो गया परन्तु वहाँ के लोगों की समृद्धि न हुई, सुख के साधनों में वृद्धि न हुई तो उस स्वतंत्रता का क्या मूल्य? अतः प्रत्येक देश-सेवी का यह महान् कर्त्तव्य है कि वह हर प्रकार से देश की उन्नति करे क्योंकि देश की उन्नति में ही वहाँ की समाज की और प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति सन्निहित है।

राजनीति द्वारा देश सेवा--राजनीति में भाग लेना भी देश सेवा का एक उत्तम मार्ग है। देश के राजनीतिज्ञों पर देश का बहुत कुछ भार रहता है। देश की आन्तरिक और वाह्य नीति को निर्धारण करने वाले वे ही लोग हैं। वर्त्तमान समय में तो राजनीतिज्ञों का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ गया है। संसार में सर्वत्र ही क्रान्ति के चिह्न दिखलाई दे रहे हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़प जाना चाहता है। प्रत्येक देश के ऊपर युद्ध के वादल मँडरा रहे हैं और निर्वल राष्ट्रों की स्वतंत्रता खतरे में पड़ी हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ उग्ररूप धारण करती जा रही हैं। ऐसे संकटपूर्ण समय में चतुर, ईमानदार और साहसी राजनीतिज्ञों से बढ़कर देश की सेवा कौन कर सकता है? प्रत्येक, राजनीति में भाग लेने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग करके और संकुचित राष्ट्रीयता की सीमा से निकलकर सामूहिक उन्नति की भावना से प्रेरित होकर कार्य करे। सभी देश समान हैं और सभी देशों के लोग अपने ही भाई हैं। हमें उनका भी ध्यान रखना है। देश प्रेम का अर्थ यह कदापि नहीं कि अपने देश की स्वार्थ-सिद्धि में दूसरे देश का अहित किया जाय। सभी के हित में अपना हित है और सभी की उन्नति में अपनी उन्नति है। अतः राजनीतिज्ञों को चाहिये कि इस समय में व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर उदारता से काम लें और देश के अधिकारियों को एवं जनता को सही मार्ग दिखलावें। यही उनकी सर्वोच्च देश-सेवा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्या संकट काल में और क्या क्रान्ति के समय में, राजनीति में कार्य करने वाले व्यक्तियों के पास देश-सेवा के बहुत से साधन हैं।

सामाजिक-सेवा—राजनीति के अतिरिक्त अन्य भी वहुत से क्षेत्र देश सेवा के हैं। जो लोग सामाजिक कार्यों के लिए अपने जीवन को अर्पित कर देते हैं या कर रहे हैं, वे भी देश के सच्चे सेवक हैं। अपने देश भारतवर्ष को ही ले लीजिये। समाज में अनेकों दोष फैले हुए हैं। यहाँ की जनता में वहुत से अंध विश्वास, कुरीतियाँ, धर्मान्धता और रूढ़िगत भावनायें व्याप्त हैं। एक जाति अथवा धर्म के लोग दूसरे जाति के लोगों से घृणा करते हैं और उन्हें अपना शत्रु समझते हैं। आये दिन ही देश में साम्प्रदायिक झगड़ों की अग्नि भड़क उठती है और वात की वात में धार्मिकता के नाम पर स्त्रियों के साथ अन्याय होता है। विधवायें आजन्म वैधव्य के दुख को भोगने के लिये विवश की जाती हैं और उसके परिणाम स्वरूप वहुत से गर्भपात, आत्महत्यायें एवं वेश्या वृत्ति के अपनाये जाने की घटनायें होती रहती हैं। झूठे धार्मिक विश्वासों के ही कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अछूत समझता है और अपने को ऊँचा समझता है। देवी-देवताओं पर पशुओं की वलि चढ़ाना, देश में लाखों की संख्या में साधुओं, पण्डों, पुजारियों, सिद्धों आदि वेकार रहने वाले व्यक्तियों की उपस्थिति आदि कुप्रथाएँ भी धार्मिक संस्कारों के कारण ही हैं। देश के अन्दर से इन सारी वुराइयों को दूर करने का वीड़ा उठा लेना और परम्परागत रूढ़ियों का मूलोच्छेदन करना भी देश की सवसे वड़ी सेवा है। ये सब सामाजिक वुराइयाँ हैं जिनके वर्त्तमान रहने पर हमारा देश कभी भी उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। महात्मा वुद्ध, कवीर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि विभूतियों ने समाज-सुधारकों के रूप में ही हमारे देश की वहुत वड़ी सेवायें की हैं। इन

महापुरुषों का नाम भारतीय इतिहास में सदैव ही स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। आधुनिक समय के सबसे बड़े देश-सेवी विश्ववन्द्य महात्मा गांधी ने समाज-सुधारक के रूप में भारतवर्ष की जितनी सेवा की है, उतनी राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं। वर्त्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति के सामने सामाजिक सुधार करके देश की सेवा करने का स्वर्ण अवसर है। भारत में अछूतोद्धार करना, बाल-विवाहों को रोकना, विधवा विवाह की प्रथा को मान्यता देना और शिक्षा का प्रचार करना आदि अनेकों कार्य देश सेवा के प्रधान मार्ग हैं।

साहित्य द्वारा देश-सेवा—साहित्य भी देश-सेवा का मुख्य साधन है। बड़े-बड़े लेखकों और कवियों ने अपने साहित्य के द्वारा देश में जाग्रति की लहर फूँक दी है। जिस बात को राजनीतिज्ञ अथवा प्रचारक वर्षों प्रयत्न करके भी जनता के हृदय तक नहीं पहुँचा सकता, उसे किसी कवि की एक पंक्ति ही सर्वत्र फैला देती है। कवि की वाणी में वह शक्ति छिपी होती है जो मुर्दों में भी जान डाल देती है और जीवितों में स्फूर्त्ति का संचार कर देती है। राष्ट्रभाषा की उन्नति पर ही देश की उन्नति निर्भर करती है। किसी देश के साहित्य पर ही वहाँ की सभ्यता निर्भर है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिये जो भाव-सामग्री निकालकर समाज को सौंपता है उसी के संचित भंडार का नाम साहित्य है। अतः किसी जाति अथवा देश के साहित्य को हम उसकी सामाजिक शक्ति या सभ्यता का निर्देशक कह सकते हैं। किसी देश के साहित्य को देख कर यह बतलाया जा सकता है कि उसकी सामाजिक अवस्था कैसी है, वह सभ्यता में कितना आगे बढ़ चुका है। निष्कर्ष यह निकला कि साहित्य द्वारा भी

हम अपने देश की सेवा में हाथ बँटा सकते हैं और उसकी उन्नति में सहायक हो सकते हैं। साहित्यकार, चाहे लेखक हो, चाहे कवि, उपन्यासकार हो चाहे कहानी लेखक, किसी भी क्षेत्र में यदि सच्चे साहित्य का सृजन करेगा तो निसंदेह वह स्वयं देश की सेवा करते हुए, अनेकों देश सेवी उत्पन्न कर देगा। फ्रांस की राज्य क्रांति करने वाला वहाँ का प्रसिद्ध साहित्यकार रूसो था। टाल्स्टाय, तुर्गनेव और मैक्सिम गौर्की ने अपनी पुस्तकों से ही रूस की निष्प्राण जनता में क्रान्ति का बीजारोपण कर दिया था। कवियों की ओजस्वी वाणी बड़े-बड़े कायरों को वीर बना देती है। गोस्वामी तुलसीदास का नाम कौन भारतवासी नहीं जानता ? उनके लिखे 'राम-चरित-मानस' ने लाखों नर-नारियों का उद्धार किया है। प्रत्येक विषय में उनके वाक्य उद्धृत किये जाते हैं। न जाने इस ग्रन्थ ने कितनों को डूबते से बचाया, कितनों को कुमार्ग पर जाने से रोका, कितनों के निराश जीवन को आशामय बनाया और कितनों को पाप से बचा कर उन्हें पुण्यपथ पर आरूढ़ कराया। इस महाकवि की समता के देश सेवी विरले ही होंगे। सचमुच, साहित्य के मार्ग को अपनाकर भी हम देश की महान् सेवा कर सकते हैं।

अन्य मार्ग—उक्त मार्गों के अतिरिक्त और भी बहुत से मार्ग देश-सेवा के हैं। देश सेवी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह सब काम छोड़ कर और गार्हस्थ धर्म का त्याग करके ही देश की सेवा कर सके। चित्रकार, कलाकार, गायक, वकील, डाक्टर, अध्यापक आदि सभी अपने कार्यों को करते हुए भी देश की सेवा कर सकते हैं। अपने कार्य को ही उत्तम रूप से और ईमानदारी से करना भी देश सेवा है। अपने पड़ौसी की, रोगियों की, अनाथों की सेवा भी एक

प्रकार से देश सेवा ही है। व्यक्तियों से समाज और समाज से देश बनता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव-सेवा ही देश-सेवा है। अतः हम सबका यह कर्त्तव्य है कि अपने निजी और निम्न स्वार्थों को त्यागकर, सांसारिक कार्यों को करते हुए, सच्चे अर्थों में एक या दूसरे प्रकार से अपने देश की सेवा करते रहें। इसी में विश्व-कल्याण की भावना निहित है।

विज्ञान के चमत्कार

अजमेर बोर्ड १९४६
उ० प्र० बोर्ड १९४१

प्रस्तावना — आज समूचे संसार में वैज्ञानिक आविष्कारों की धूम मची हुई है। गरीब की झोंपड़ी से लेकर राज्य-प्रासाद तक विज्ञान की पहुँच हो गई है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का ही बोल बाला है। छोटी सी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी तक विज्ञान के आविष्कारों का ही परिणाम है। आज साधारण और अपढ़ व्यक्ति भी विज्ञान की भाषा में बोलता है। विज्ञान ने एक प्रकार से मानव-जीवन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। शिक्षा, चिकित्सा, याता-यात, व्यापार, युद्ध, शान्ति आमोद-प्रमोद आदि सभी विषयों में वैज्ञानिक आविष्कारों की प्रधानता है। जहाँ अभी विज्ञान की पहुँच नहीं हुई है वहाँ इसे पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस युग को यदि वैज्ञानिक युग कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।

यातायात सम्बन्धी वैज्ञानिक आविष्कार—सबसे प्रथम हम दूरी सम्बन्धी कठिनाई को मिटा देने में वैज्ञानिक आविष्कारों की उपयोगिता पर विचार करते हैं। रेलों और मोटरों के आविष्कार से पहले लोग, इक्के, ताँगों बैलगाड़ियों घोड़ों, ऊँटों आदि पर यात्रा करते थे। जिनके पास ये सवारियाँ नहीं थीं या जो इन सवारियों पर होने वाले व्यय को सहन नहीं कर सकते थे वे पैदल ही यात्रा करते थे। इन यात्राओं में बहुत अधिक समय लगता था और मार्ग में अनेकों कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं। चोरों और ठगों का हर समय भय बना रहता था। परन्तु जब से रेल और मोटरो का चलना आरम्भ हुआ है तब से समय की बचत के साथ, मनुष्य अन्य सभी असुविधाओं से बच गया है। महीनों का रास्ता घन्टों में कट जाता है। रेल और मोटरों का सभी शहरों के बीच जाल सा बिछा दिया गया है। आवागमन बहुत ही सुलभ हो गया है। धनिकों के लिये तो आवागमन की बहुत ही सुविधा हो गई है। वायुयानों के प्रचलन से घन्टों की दूरी मिनटों में तय होती है। दूरी का अन्तर मिटा देने वाले वैज्ञानिक अविष्कारों में वायुयान, आधुनिकतम वैज्ञानिक आविष्कार है यात्रा के अतिरिक्त इन सवारियों से, व्यापार और सम्वाद-वहन के कार्य में भी असाधारण सहायता मिली है। व्यापारिक वस्तुएँ थोड़े ही समय में कहीं से कहीं भेज दी जाती हैं। यदि कहीं दुर्भिक्ष पड़ जाता है तो शीघ्र दूसरे स्थानों से अन्न वहाँ पहुँच जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सूत्रपात तो इन्हीं वैज्ञानिक आविष्कारों के फल-स्वरूप हुआ था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विज्ञान ने दूरी का प्रश्न मिटा सा दिया है।

संवाद-वहन सम्बन्धी आविष्कार—इसी प्रकार संवाद-

वहन के कार्य में विज्ञान ने चमत्कारिक सफलता प्राप्त की है। टेलीफोन और टेलीग्राम से क्षणों में समाचार और सम्वाद एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जा सकते हैं। अपने कमरे में बैठकर हम अमेरिका और यूरोप आदि किसी भी देश में स्थित अपने मित्र से बात-चीत कर सकते हैं। चिट्ठी-पत्री के आने जाने में कई-कई दिन लग जाते हैं परन्तु तार से हम कुछ ही घन्टों में सम्वाद अपने सम्बन्धियों तक पहुँचा देते हैं। जब से बेतार के तार का आविष्कार हुआ है तब से तो यह कार्य अत्यन्त ही सरल हो गया है। बेतार के द्वारा तुरन्त ही समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाता है। १८६००० मील प्रति सैकिण्ड की गति से समाचार बेतार के तार द्वारा भेजे जाते हैं अभी इसका उपयोग साधारण जनता के लिये तो नहीं हुआ है परन्तु निकट भविष्य में ऐसा अवश्य ही होने लगेगा।

शिक्षा में आविष्कारों से सहायता—शिक्षा के कार्य में भी विज्ञान ने बहुत कुछ सहायता प्रदान की है। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, जन्तु-विज्ञान वनस्पति शास्त्र, खगोल विज्ञान आदि सभी विषयों में वैज्ञानिक आविष्कारों के ही कारण मनुष्य ने असाधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। ये विषय अब किसी भी विद्यार्थी को कक्षा में बैठकर पढ़ाये जा सकते हैं। जो ज्ञान पहिले समय में वर्षों में प्राप्त होता था, वह अब दिनों में प्राप्त हो जाता है। दूरबीन, तथा खुर्दबीन के आविष्कारों ने भी मानव-ज्ञान को असाधारण रूप से सहायता की है। इतिहास, दर्शन आदि के विषय भी वैज्ञानिक खोजों से बहुत कुछ प्रभावित हुए हैं। दर्शन-शास्त्र में भौतिक-वाद के सिद्धान्त का जन्म तो केवल वैज्ञानिक आविष्कारों के ही परिणाम स्वरूप हुआ था। जो प्रकृति पहले समय में

मनुष्य को अपने शत्रु के रूप में दिखलाई देती थी, आज वही मित्र रूप में प्रतीत होती है। प्रकृति से भयभीत होने के स्थान पर, मनुष्य ने आज उसे अपनी परिचारिका बना रक्खी है। प्राकृतिक शक्तियों पर विज्ञान की विजय ने मनुष्य के धार्मिक संस्कारों को शिथिल कर दिया है यहाँ तक कि ईश्वर का विश्वास भी लोगों में कम होता जा रहा है वैज्ञानिक शिक्षा का ही प्रभाव है कि मनुष्य भौतिकवाद की ओर प्रवृत्त हो रहा है।

चिकित्सा और वैज्ञानिक आविष्कार—चिकित्सा के क्षेत्र में तो विज्ञान ने आमूल परिवर्त्तन ला दिया है शल्य-चिकित्सा में (चीर-फाड़ में) वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से अभूत पूर्व सफलता प्राप्त हुई है। जहाँ पहले साधारण चीर फाड़ के कामों में कठिनाई होती थी, वहाँ अब बड़े बड़े आपरेशन बात की बात में हो जाते हैं सूक्ष्मनिरीक्षण यंत्र की सहायता से बहुत से रोगों का निदान उनके कीटाणुओं के परीक्षण से सहज ही हो जाता है। चिकित्सा शास्त्र में ऐक्सरे का आविष्कार अब तक के सभी आविष्कारों में सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस प्रकाश-किरण की प्रवेश-शक्ति चमड़े और काठ तक में पार हो जाती है जबकि साधारण प्रकाश के मार्ग को एक हल्का सा कागज ही रोक लेता है। मनुष्य के शरीर की भीतरी बनावट ऐक्सरे से स्पष्ट दिखाई देने लगती है। क्षय रोग का पता ऐक्सरे से तुरन्त ही लग जाता है। कुछ देशों में डाक्टर इतने योग्य हो गये हैं कि मनुष्य का कोई अंग खराब हो जाने पर उसके स्थान पर वैसा ही कृत्रिम अंग लगा देते हैं। समाचार पत्रों में यह भी पढ़ा गया है कि अमरीका में कृत्रिम गर्भाधान द्वारा बच्चे उत्पन्न कर लिये गये हैं और वे खूब हृष्ट-पुष्ट हैं तथा शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। काँच की नलिका में भी बच्चे पैदा करने के प्रयोग

किये जा रहे हैं यदि इस कार्य में भी सफलता प्राप्त हो सके तो स्त्रियों को बच्चे पैदा करने के भार से छुट्टी मिल जायगी। भी कुछ हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान से चिकित्सा कार्य में असाधारण रूप से लाभ पहुँचा है। यदि विज्ञान की प्रगति इसी प्रकार होती रही तो असंभव नहीं कि मनुष्य मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करले।

विद्युत शक्ति का आविष्कार—विद्युत (बिजली) के आविष्कार ने भी हमारे जीवन को जितना प्रभावित किया है, इसे तो सभी जानते हैं। माईकल फैरेडे ने सबसे प्रथम इस आविष्कार को किया था। जब फैरेडे ने बिजली के दो तारों को आपस में मिला कर चिनगारी उत्पन्न करके लोगों को दिखलाई तो उस समय लोगों ने कौतूहल के अतिरिक्त इस आविष्कार का कोई महत्त्व नहीं समझा था। परन्तु आज हम देखते हैं कि प्रकाश करने वाले बिजली के बल्ब से लेकर पंखे, सिनेमा, टेलीफोन, टैलीग्राम, रेडियो, टैलीविजन आदि आदि अनेकों आधुनिक आविष्कारों तक, सभी विद्युत पर ही निर्भर करते हैं। बड़े-बड़े कारखानों और उद्योग-धन्धों का विकास विद्युत-शक्ति के कारण ही हो सका है। बड़े बड़े शहरों में गर्मी के दिनों में यदि थोड़ी देर के लिये ही बिजली की लाइन में कुछ खराबी आ जाती है तो पंखों के बन्द हो जाने से सभी जगह त्राहि-त्राहि मच जाती है। रात्रि का शहरी जीवन तो एक प्रकार से विद्युत के ही ऊपर निर्भर रहता है। कौन कह सकता था कि प्रारम्भ में एक कौतूहल वर्द्धक खेल समझा जाने वाला यह विद्युत का आविष्कार एक दिन मानव-जीवन को इस प्रकार जकड़ लेगा?

वैज्ञानिक आविष्कार और मनोरंजन के साधन—दैनिक उपयोगिता की वस्तुओं के अतिरिक्त, वैज्ञानिक

आविष्कारों ने मनुष्य को मनोरंजन के भी बहुत से साधन प्रदान किये हैं। इन साधनों में सिनेमा और रेडियो मुख्य हैं। प्रत्येक शहर में कई कई सिनेमा घर होगये हैं और उनमें प्रति दिन ही सहस्रों स्त्री पुरुप अपना मनोरंजन करते हैं। सिनेमा घर में बैठ कर कुछ ही घन्टों में मनुष्य संसार भर की सैर कर लेता है। जो स्थान और प्राकृतिक दृश्य सर्व साधारण के लिये उपलब्ध नहीं होते, वे चित्र-पट पर दिखला दिये जाते हैं। अच्छे अच्छे कलाकारों के गाने और नृत्य सभी, सिनेमा से थोड़े से ही समय में सुनने और देखने को मिल जाते हैं। यदि सिनेमा के आविष्कार का उचित रूप से उपयोग किया जाय तो मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन होने के साथ ही, इससे शिक्षा और सुधार का भी बहुत कुछ काम लिया जा सकता है। रेडियो भी मनोरंजन का अच्छा साधन है। कोई भी व्यक्ति अपने कमरे में बैठ कर इससे संसार भर के गाने तथा मनोविनोद के वार्त्तालाप सुन सकता है। वर्त्तमान समय में रेडियो में बहुत से सुधार किये जारहे हैं। हास-परिहास, कविता, गायन, नाटक आदि सभी मनोरंजन की वस्तुओं के कार्य-क्रम रेडियो में आते हैं और लाखों ही व्यक्ति इनसे अपना मनोरंजन करते हैं। बीसवीं सदी का सबसे आश्चर्यजनक वैज्ञानिक आविष्कार टैलीविजन है। अभी तक तो लोग रेडियों द्वारा दूर का शब्द ही सुन सकते हैं किन्तु टेलीविज़न द्वारा अब हम वार्त्तालाप करने वालों के चित्रों को घर बैठे ही देख सकेंगे। इंगलैण्ड या अमेरिका में नाटक खेला जा रहा है, और हम भारतवर्ष में अपने घर में इस यंत्र की सहायता से उस नाटक को यथार्थ रूप में देख रहे हैं। कैसी विचित्र बात है। यही नहीं, किसी

भी दृश्य को हम अपने कमरे में बैठे हुए देख सकेंगे। प्रैसीडैण्ट ट्रूमैन और स्टालिन के भाषण हम यहाँ बैठे उसी प्रकार सुनेंगे जैसे अमेरिका और रूस वाले उनके सम्मुख बैठ कर सुनते हैं। अभी इस आविष्कार का अधिक प्रचार नहीं हुआ है परन्तु शीघ्र ही यह सर्व साधारण के लिये सुलभ हो जायगा। वास्तव में विज्ञान का यह सबसे अधिक चमत्कारिक आविष्कार है।

कहाँ तक लिखा जाय, विज्ञान ने एक से एक बढ़ कर अद्भुत कार्य किये हैं। हमारा सारा जीवन इन आविष्कारों पर निर्भर होता जा रहा है।

वैज्ञानिक आविष्कारों से हानियाँ—जहां वैज्ञानिक आविष्कारों के सदुपयोग से मनुष्य ने अपने सुख के साधनों में असाधारण रूप से वृद्धि करली है, वहाँ इनके दुरुपयोग से हानि भी हुई है। युद्ध के ऐसे ऐसे अस्त्र बन गये हैं जो बात की बात में लाखों आदमियों को भस्मी भूत कर देते हैं। हजारों मकान और निर्माण-कार्य मिनटों में खँडहर हो जाते हैं। पिछले युद्ध में बम्बों से लाखों की संख्या में जनता मारी गई थी। टैंक, डायनेमाइट, राकेट बम्ब, परमाणु बम्ब आदि अनेकों ऐसे वैज्ञानिक आविष्कार होगये हैं जिनसे मानवता के लिये खतरा उत्पन्न होगया है। इन आविष्कारों के भय से ही आज युद्ध समूचे संसार के लिये एक समस्या बनी हुई है। यदि अब तीसरा युद्ध छिड़ जाता है, तो मनुष्य जाति का भविष्य अन्धकार पूर्ण हो जायगा।

वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग—यह सच है कि वैज्ञानिक आविष्कारों से हानि भी हुई है परन्तु यह तो उनके सदुपयोग और दुरुपयोग का प्रश्न है। रेल की सवारी बहुत लाभ प्रद सिद्ध हुई है परन्तु यदि लोग जानबूझ कर रेल से कट

कर मरने लगें तो इसमें रेल का अथवा रेल के आविष्कारक का क्या दोष । वायुयान को हम अपनी यात्रा के काम में भी ला सकते हैं और उससे बम्बवर्षा करके लाखों व्यक्तियों की जान भी ले सकते हैं। परमाणु-शक्ति से परमाणुबम्ब भी बनाये जा सकते हैं और हजारों की संख्या में कल कारखाने भी चलाये जा सकते हैं। किसी भी वैज्ञानिक आविष्कार को हम संसार के सुख का साधन भी बना सकते हैं और उसी से संहार का काम ले सकते हैं। यह तो इन आविष्कारों के प्रयोग करने वालों के ऊपर निर्भर है। अतः यह कहना कि वैज्ञानिक आविष्कारों से युद्ध की भयानकता बहुत बढ़ गई है, बड़ी भूल की बात है। सभी देश यदि अपनी अपनी महत्वाकांक्षा, साम्राज्यलिप्सा, ईर्ष्या, द्वेष आदि की भावनाओं का परित्याग करदें तो युद्ध सदैव के लिये बन्द हो जाय और वैज्ञानिक आविष्कारों से जन-संहार का काम भी बन्द होजायगा।

अधिकांश लोगों की धारणा है कि वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोग से काम जल्दी हो जाता है और आदमियों के स्थान पर मशीनें ही काम कर देती हैं अतः बहुत से लोग बेकार होगये हैं और बेकारी की समस्या दिन व दिन बढ़ती जारही है। बेकारी का अर्थ यह लगाया जाता है कि आदमियों को अपनी जीविका कमाने के लिये काम न मिलना यदि किसी प्रकार मनुष्यों को साधारण परिश्रम से ही अथवा बैठे ही बैठे अपनी जीविका मिल जाया करे और वे दिन भर बैठे रहें तो कोई यह नहीं कह सकता कि बेकारी बढ़ गई है। मनुष्य के लिये भोजन, वस्त्र, मकान, आमोद प्रमोद की वस्तुयें चाहिये, और ये सभी चीजें वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से बहुत शीघ्र और बहुत बड़ी

संख्या में तैयार की जा सकती हैं। फिर इन वस्तुओं को सर्व साधारण में बाँटना या न बाँटना कल कारखाने के मालिकों के हाथ में है अथवा राज्य के हाथ में है। विज्ञान चाहता है कि वहु मूल्य मानव-जीवन को रोटी और कपड़े की चिन्ता में ही नष्ट न किया जाय। ये वस्तुएँ तो बहुत आसानी से जुटाई जा सकती हैं। मान लीजिये कि उत्पादन के कार्य में विज्ञान का आश्रय न लिया जाय और लोग सभी वस्तुएं हाथ से पैदा करने लगें तो बेकारी की समस्या तो हल हो जायगी परन्तु सुबह से शाम तक लोग खाने बनाने के काम में ही लगे रहें तो यह भी क्या अच्छी बात हुई। यह तो पशुओं की दिन चर्या है। हाथ से काम करके जिन वस्तुओं को मनुष्य १२ घन्टे में उत्पन्न करे, उन्हें विज्ञान यदि आधे ही घन्टे में पूरा करदे तो इसमें बुराई क्या? विज्ञान के कारण, मनुष्य बेकार होगये हैं, उन्हें अपनी जीविका नहीं मिलती, यह दोष तो सामाजिक व्यवस्था का है। आज एक व्यक्ति तो करोड़पति है और दूसरे को भर पेट भोजन नहीं मिलता। एक ओर तो कहीं करोड़ो मन अन्न मन्दी फैलने के भय से समुद्र में डुबा दिया जाता है, और दूसरी ओर कहीं अन्न के अभाव में लोग भूखे मर रहे हैं, इसमें विज्ञान का क्या दोष? यदि सम्पति पर से थोड़े से व्यक्तियों का अधिकार मिटा दिया जाय और उस पर समान रूप से सब का अधिकार होजाय तो बेकारी की समस्या उत्पन्न ही न हो। वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से थोड़े से ही समय में जीवन-निर्वाह की सभी आवश्यक वस्तुएं उत्पन्न की जा सकती हैं। शेष समय को लोग अपने मनोरंजन के कामों में, शिक्षा में, आत्मोन्नति में, तथा अन्य सुख के कामों में व्यतीत कर सकते हैं। मनुष्य

अपनी सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में सुधार करके वैज्ञानिक आविष्कारों की सहाथता से अपने जीवन को बहुत सुखी बना सकता है।

सारांश—सारांश यह है कि वैज्ञानिक आविष्कारों के सदुपयोग और दुरुपयोग पर ही लाभ और हानि निर्भर हैं। हम विज्ञान की सहायता से अपने जीवन को बहुत सुखी भी बना सकते हैं और दुखी भी। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने स्वार्थ-भाव को त्याग करके सभी मनुष्यों को समान समझें। सभी प्रकार के भेद भावों को मिटाकर विश्व मैत्री के सिद्धान्त को अपनावें ऐसा करने पर, विज्ञान, हमें इसी जीवन में स्वर्ग का सा आनन्द प्रदान कर सकता है।

गो-रक्षा

गाय की महिमा—भारतीय संस्कृति और सभ्यता के उत्थान एवं विकास का गो रक्षण और गो पालन से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है और किस प्रकार जीवन के सभी स्तरों में गो माता का सर्व श्रेष्ठ स्थान माना गया है, इसका यदि प्रमाण चाहिये तो श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण, इतिहास और आधुनिक साहित्य के पन्नों को उलटिये और अध्ययन कीजिये। भगवान् कृष्ण ने भी अपना नाम 'गोपाल' रक्खा था। बाल्यावस्था में वन-वन घूम कर गायें चराना ही उनका एक मात्र कार्य था। कवि ने भी कृष्ण का एक मात्र कर्त्तव्य

व्रज-भूमि में गायों का चराना ही समझा है। श्री अयोध्या-सिंह उपाध्याय अपने व्रज-भूमि के वर्णन में लिखते हैं, "जान पड़ता है हमें आज भी कन्हैया यहाँ मैया मैया टेरते हैं, गैया को चराते हैं।" हमारे प्राचीन ग्रन्थों में गो-सेवा का महत्व सभी महत्वों से अधिक माना है। वेद में आई हुई किसी ऋचा का अर्थ है, "तीर्थ स्थान, ब्राह्मण-भोजन, महादान, भगवत्सेवा, समस्त व्रतोपवास, तप, पृथ्वी पर्यटन और सत्य भाषण से जो जो पुण्य होता है, वह सब पुण्य केवल गो-सेवा से तुरन्त प्राप्त होता है।" आधुनिक युग के विद्वानों ने भी गाय का बहुत अधिक महत्व बताया है। अमेरिका के एक प्रसिद्ध पत्र-संपादक, देखिये क्या लिखते हैं, "गाय, हमारे दुग्ध-भवन की देवी है, वह भूखों को खिलाती है, नंगों को पहनाती है, और रोगियों को अच्छा करती है। उसकी ज्योति चिरंतन है।"

धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी गाय का महत्व कम नहीं है। 'तीन एकड़ भूमि और एक गाय' सर्वदा से भारत का स्वर्ण-विधान रहा है। शरीर तथा मस्तिष्क दोनों का अत्युत्तम रूप से पोषण करने वाले आहार के कारण रूप में गाय सार्व भौमिक राष्ट्रीय-आर्थिक-व्यवस्था तथा शिक्षा-प्रणाली दोनों का केन्द्र बन गई थी।

गाय का दूध—गाय के दूध की महिमा को तो आधुनिक डाक्टर भी एक मत होकर स्वीकार करते हैं। माता के दूध के पश्चात् गाय का दूध ही सर्व श्रेष्ठ माना गया है। सभी प्रकार के रोगों में गाय का दूध दिया जाता है। शारीरिक और मस्तिष्क दोनों ही दृष्टि से गाय का दूध सर्वोत्तम होता है। पाश्चात्य देशों में गाय का दूध ही पिया जाता है। इस दूध के अन्दर सभी पोषक तत्व विद्यमान

रहते हैं। गाय के दुग्ध सेवन से शरीर पुष्ट होता है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है और सदैव इसका प्रयोग करने वाला व्यक्ति दीर्घजीवी होता है। हमारे शास्त्रों में गाय के दूध को अमृत तुल्य माना गया है। दूध के अतिरिक्त गाय का घी और दही एवं छाछ आदि पदार्थ भी अत्यन्त गुणकारी होते हैं। बहुत से रोग तो केवल गाय के दूध एवं उससे बने हुए पदार्थों के सेवन मात्र से ही चले जाते हैं। दूध के कारण ही गाय को माता कहा जाता है।

गो-सेवा से व्यायाम—गो-सेवा के द्वारा दूध मिलता ही है, साथ ही उससे व्यायाम भी हो जाता है। प्राचीन गुरुकुलों तथा ऋषि-कुलों में ब्रह्मचारियों को गुरु की सेवा तथा यज्ञ समिधा एकत्रित करने के अतिरिक्त, आश्रम की गायों की सेवा भी करना पड़ती थी। प्रत्येक आश्रम की अपनी गायें होती थीं, और उनकी सेवा का भार वहाँ के विद्यार्थियों पर होता था। गो-सेवा में फुटबाल, हाकी तथा अन्य कई व्यायामों से अधिक परिश्रम पड़ता है, फलतः अधिक स्वास्थ्य लाभ होता है।

अन्य लाभ—गो-मूत्र और गोबर वैज्ञानिक दृष्टि से भी पवित्र और स्वच्छता प्रदान करने वाला है। गाय के गोबर के समान अन्य लाभदायक कोई खाद नहीं। गो-मूत्र से विभिन्न औषधियाँ तैयार की जाती हैं।

भारतीय लोगों को तो गाय दूध देने वाली ही नहीं, अपितु वह उन्हें अन्न भी देती है। खेती की दृष्टि से खाद देना और खेत जोतना, ये दो अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हैं। कोई भी वैज्ञानिक यंत्र इन दोनों कार्यों को एक साथ नहीं कर सकता है। ट्रैक्टर से खेत जोते जा सकते हैं परन्तु उससे खाद प्राप्त नहीं किया जा सकता। गाय; हमें खेत जोतने के लिये

बैल और खाद के लिये गोबर प्रदान करती है। भारतीय किसान के लिये तो बैल ही मानो खेती के प्राण हैं। इसके बिना किसान असहाय रहता है। बैलों से ही वह जुताई करता है, उन्हीं से पानी देता है और उन्हीं की सहायता से वह अपने खलिहान को गाहता है। बैलों से उसे खाद भी मिलता है। वैज्ञानिक विधि से तैयार किये गये खाद, और बैल के गोबर की तुलना किसी प्रकार नहीं कर सकते। गोबर में, शरीर की आँतों की क्रिया के कारण, अत्यधिक परिमाण में नाइट्रोजन तैयार होता है। बैल उत्कृष्ट खाद तैयार करता हुआ, हरी वनस्पतियों में खाद की दृष्टि से निरर्थक कार्बो हाइड्रेट्स को शक्ति में परिवर्तित कर खेती का काम मुफ्त में कर देता है। बैलों में यह बहुत ही विचित्र गुण है। अर्थ-शास्त्र की किसी भी दृष्टि से, कृषि में बैल का स्थान कोई भी यंत्र ग्रहण नहीं कर सकता। बाहर से ट्रैक्टरों के मँगाने में देश का करोड़ों रुपया विदेशों को चला जाता है। कुछ कृषि विशेषज्ञों का यह भी मत है कि भारतवर्ष की बहुत सी भूमि ट्रैक्टरों से जोतने के योग्य नहीं। यांत्रिक खाद की अपेक्षा बैल के गोबर के खाद से उत्पन्न हुआ अन्न कहीं अधिक पौष्टिक और सुस्वादु होता है।

गाय की उपेक्षा—खेद का विषय है कि आज भारतीय जनता गाय के महत्व को भूल गई है। न तो हम गायों को पालते ही हैं, और न उनकी रक्षा ही करते हैं। सहस्रों और लाखों गाय वध करदी जाती हैं। यही कारण है कि जहाँ भारतवर्ष में एक समय में दूध और घी की नदियाँ बहती थीं, वहाँ अब रोगियों को भी गो, दुग्ध उपलब्ध नहीं हो रहा। लोगों का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन नष्ट होता जा रहा है और अनेक रोग बढ़ते जा रहे हैं। नगरों एवं गाँवों में गाये

कूड़ा-करकट खाती फिरती हैं। ऐसी निर्बल और अशक्त गायों से किस प्रकार हमें, उत्तम दूध अधिक परिमाण में प्राप्त हो सकता है? संसार के अन्य देशों में दूध की खपत औसत प्रति व्यक्ति सेर डेढ़ सेर मानी गई है। किन्तु हमारे देश भारतवर्ष में प्रति व्यक्ति डेढ़ छटॉक का औसत पड़ता है। दूध न मिलने के कारण ही हमें निर्बलता, और अनेक रोगों का शिकार बनना पड़ रहा है।

गो-रक्षा——यदि हिन्दू जाति अपनी प्राचीन आर्य-संस्कृति की रक्षा करना चाहती है तो उसे गो-रक्षा करनी पड़ेगी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् पेरिस में खाद्य-सम्बन्धी अनुसंधान के लिये एक वृहत् सम्मेलन हुआ था। जिसमें सर्वसम्मति से निश्चय हुआ था कि 'यदि पर्याप्त मात्रा में गो-दुग्ध मिल जाय तो अन्य पौष्टिक-द्रव्यों की कोई आवश्यकता नहीं रहती,। अतः हमारा यह प्रथम कर्त्तव्य है कि हम लोग संगठित रूप से गो-पालन के लिये देश-व्यापी आन्दोलन करें।

आज हमारा देश स्वतंत्र हो गया है और हर्ष का विषय है कि सरकार ने कानून द्वारा गो-वध भी बहुत से स्थानों में बन्द कर दिया गया है। अपनी जन-प्रिय सरकार की संरक्षणता में भारतीयों को गो-पालन के लिये इससे उत्तम अवसर फिर कब मिल सकता है? इस समय हमारे देश में गाँव गाँव में पंचायतों का भी संगठन हो गया है। प्रत्येक पंचायत का कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपने क्षेत्र में गो-पालन की व्यवस्था करे गायों के लिये उत्तम चरागाहों की व्यवस्था करना, गोचर भूमि छोड़े जाने और बूढ़ी बेकाम गायों के लिये गो-सेवा सदन स्थापित करवाने की अत्यन्त आवश्यकता है। सरकार ने ये सारे अधिकार ग्राम पंचायतों को सौंप दिये हैं। यदि पंचायतें चाहें तो गायों के पालने की समुचित व्यवस्था हो

सकती है।

सन्तति-सुधार—गो-पालन के सम्बन्ध में यह बात अधिक रूप से ध्यान देने की है कि गाय से होने वाले सभी लाभ नस्ल-सुधार पर निर्भर हैं। जब तक अच्छी नस्ल की गायें उत्पन्न नहीं की जायँगी तब तक गो-पालन, आर्थिक-दृष्टि से लाभदायक नहीं हो सकता। विदेशों में एक एक गाय २० या २५ सेर तक दूध देती है। कोई कारण नहीं कि प्रयत्न करने पर भारतवर्ष में ऐसी गायें उत्पन्न न करली जायँ। उत्तम नस्ल की गायें पैदा करने के लिये अच्छे साँड़ों की आवश्यकता है। उत्तम खाद्य-व्यवस्था और उत्तम साँड़ों से कुछ ही समय में उत्तम गायें हमारे पास हो जायँगी।

इस विषय में केवल भाषणों तथा सभाओं से ही काम नही चल सकता। गो-रक्षा हमें अपने घरों से ही प्रारम्भ करनी चाहिये। जिस प्रकार संपन्न लोग अपने यहाँ मोटर और अन्य वैभव की सामग्री रखते हैं, उसी प्रकार यदि गौएँ भी रक्खें, गो-शालाओं में योगदान दें, डेयरी फार्म चलायें, तो इस दिशा में बहुत कुछ कार्य हो सकता है। सरकार के साथ हमारे भी कर्त्तव्य हैं, और उनका पालन हमको योग्यता पूर्वक करना चाहिये।

उपसंहार—इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान और जनता का हृष्ट-पुष्ट होकर भारत के उज्ज्वल भविष्य का पुनर्निर्माण करना गो-वंश की समृद्धि पर ही निर्भर है।

"गैया माता तुमको सुमिरों कीरति जग में बड़ी तुम्हारि,
करौ पालना तुम लरिकनु की, पुरिखनु वैतरनी देहु तारि।
तुम्हरे दूध दही की महिमा, जानें देव पितर सब कोइ,
तुम बिनु दूसर है कोउ, जिहिका गोबर लगै पवित्तर होइ॥

ग्राम-पंचायत-राज्य

प्राचीन भारत की पंचायतें—प्राचीन काल में भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव और नगर में एक प्रभावशाली पंचायत होती थी। स्थानीय शासन का भार इसी पंचायत के ऊपर रहता था और यही अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व राजा के सामने करती थी। पंचायत, स्थानीय रक्षा के लिये अपनी पुलिस रखती, भूमि-कर उघा कर राज-कोष में भेजती और गाँव तथा नगर की सफाई का प्रबन्ध करती थी। अपने क्षेत्र से धार्मिक स्थानों, जलाशयों, तथा पाठशालाओं की देखभाल और छोटे-छोटे झगड़ों का निपटारा करना पंचायत का ही काम था। इन पंचायतों पर लोगों को बहुत विश्वास था। पाँच पंचों का निर्णय ईश्वर का निर्णय समझा जाता था और आज तक 'पंच-परमेश्वर' की कहावत चली जाती है। हिन्दू-काल में तो ये पंचायतें थीं ही, मुसलमानों के शासन काल में भी ये एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में रहीं। परन्तु अँगरेजों के राज्य-काल में पंचायतों की आय तथा अधिकारों को प्रान्तीय-सरकारों ने ले लिया। पंचायती पुलिस के स्थान पर प्रान्तीय पुलिस निर्धारित हो गई और सरकारी न्यायालयों की स्थापना हो गई। तब से ग्राम-पंचायतों का क्रमशः ह्रास होता गया। अब भी कहीं-कहीं प्राचीन व्यवस्था के चिह्नमात्र के रूप में पंचायते देखने को मिलती हैं परन्तु उनकी अधिकार-सीमा अत्यन्त संकुचित है।

अपने शासन के अन्तिम वर्षों में बृटिश सरकार ने ग्राम-पंचायतों के महत्व को समझा और उन्हें पुनः नवीन रूप से स्थापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु इन पंचायतों को अत्यन्त ही सीमित अधिकार दिये गये और परिणाम

यह हुआ कि वे प्रभावशाली संस्था के रूप में परिवर्त्तित न हो सकीं।

आधुनिक समय में पञ्चायतों की स्थापना—भारतवर्ष के स्वतंत्र होने के पश्चात् यह स्वाभाविक ही था कि हमारी जन-प्रिय सरकार का ध्यान ग्राम-पंचायत जैसी महत्वपूर्ण संस्था की ओर आकर्षित होता। पूज्य महात्मा गांधी का ध्यान तो सदैव से ही गाँवों की ओर था। वह कहते थे कि जब तक गाँवों की समस्या हल नहीं होती, वहाँ से अशिक्षा, निर्धनता और बेकारी नहीं हटाई जाती तब तक भारतवर्ष की उन्नति के स्वप्न देखना दुराशा मात्र है। ६० प्रतिशत से अधिक जनता भारतीय गाँवों में निवास करती है। जब तक इस जनता को स्वावलम्बी और समृद्धिशाली नहीं बनाया जायगा, तब तक राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं। आज भारतवर्ष के गाँवों की दशा कैसी शोचनीय है, यह बात किसी से छिपी नहीं। वहाँ अविद्या, ग़रीबी और गन्दगी का राज्य है। दिन रात परिश्रम करते रहने पर भी एक ग्राम निवासी का जीवन पशुओं के जीवन से श्रेष्ठ नहीं। अपनी क्रमशः बढ़ने वाली निर्धनता के कारण ग्रामीण लोगों में सर्वत्र ही निराशा की लहर दौड़ गई है। स्फूर्त्ति, उत्साह और साहस वहाँ ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। इस दयनीय जीवन क्रम का साक्षात्कार हो जाने पर ही गाँधीजी ने अपना सबसे अधिक ध्यान ग्रामों की उन्नति करने के प्रयत्न में लगाया और उन्हीं की इच्छा पूर्त्ति के निमित्त भारत की नव-निर्मित्त सरकार ने ग्राम-पंचायत-राज्य की स्थापना की।

ग्राम-पञ्चायत-राज्य का उद्देश्य—ग्राम-पंचायत-राज्य का उद्देश्य गावों को स्वावलम्बी, सुखी, समृद्ध, शिक्षित और न्याय-प्रिय बनाना है तथा वहां फिर से राम-राज्य की स्थापना

करना है। संयुक्त-प्रान्त का पंचायत-राज्य एक्ट इस दिशा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण क़दम है। अन्य प्रान्तों में भी इसी का अनुकरण किया जा रहा है। यहाँ संयुक्त-प्रान्तीय राज्य क़ानून की मुख्य बातें दी जाती हैं।

पंचायतों के चुनाव सम्बन्धी नियम—इन क़ानूनों के अनुसार सारी सत्ता विकेन्द्रित होकर स्वचालित ग्राम-सभा में निहित हो गई है। जिस गाँव की जन-संख्या एक सहस्र है, वहाँ एक ग्राम-सभा की स्थापना कर दी गई है। थोड़ी जन-संख्या वाले कई गाँव मिलाकर एक क्षेत्र बना दिया गया है और उसमें एक ग्राम-सभा स्थापित हो गई है। प्रत्येक गाँव सभा में वे सब प्रौढ़ व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जो उस क्षेत्र के स्थायी निवासी हों परन्तु उसका सदस्य ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हो सकता जो पागल हो अथवा कोढ़ी हो। दिवालिया, राजकीय कर्मचारी, नैतिक अपराध में दंडित, अथवा चुनाव सम्बन्धी अपराध में दंडित व्यक्ति भी गाँव सभा का सदस्य नहीं हो सकता। २१ वर्ष से ऊपर के सभी स्त्री और पुरुष गाँव सभा में लिये जा सकते हैं यदि उनमें उपर्युक्त कोई दोष न हो।

प्रत्येक गाँव-सभा की वर्ष में दो बैठक अनिवार्य हैं, एक खरीफ की बैठक और दूसरी रबी की बैठक। आवश्यकता पड़ने पर सभापति स्वयं अथवा दो तिहाई सदस्यों की लिखित माँग पर भी बैठक बुला सकता है।

गाँव-सभा की खरीफ की बैठक में सभा का बजट तैयार करके विचारार्थ उपस्थित किया जायगा तथा रबी की बैठक में वर्ष की आय-व्यय का हिसाब रक्खा जायगा।

गाँव-सभा के सदस्यों में से एक सभापति और दूसरा उप-सभापति होगा जिनका चुनाव सदस्यों के बहुमत से होगा

और ये तीन वर्ष तक अपने पद पर कार्य कर सकेंगे। इस अवधि के पश्चात् सभापति और उप-सभापति का चुनाव पुनः होगा।

गाँव-सभा अपने सदस्यों में से कम से कम ३० व्यक्तियों की एक गाँव-पंचायत चुनेगी जो सभा की कार्य-कारिणी का काम करेगी। गाँव-सभा का सभापति और उप-सभापति क्रमशः गाँव-पंचायत के सभापति और उप-सभापति होंगे।

ग्राम-पंचायतों के कार्य—गाँव पंचायत के निम्नलिखित कार्य होंगे:—

सड़कों को बनवाना, उनकी मरम्मत करवाना तथा उन पर रोशनी का प्रबन्ध करना।

गाँव की सफाई का प्रबन्ध करना और छूत की बीमारियों को फैलने से रोकना।

चिकित्सा का प्रबन्ध करना।

जन्म और मृत्यु का व्यौरा रखना।

मेलों और हाटों का प्रबन्ध करना।

गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा का पबन्ध।

चरागाहों के लिए भूमि को छोड़ना, कुँओं तथा जलाशयों को सार्वजनिक उपयोग के लिये बनवाना।

खेतीबारी, व्यापार और उद्योग-धन्धों को विकसित करना।

खाद इकट्ठा करना तथा घूरों के लिये गाँव से बाहर स्थान नियुक्त करना। पशुओं की नस्ल सुधारना और उन्हें अधिक से अधिक उपयोगी बनाना। गाँव की रक्षा के हेतु, स्वयं-सेवक दल का संगठन करना।

गाँव में मनोरंजन के साधनों और पुस्तकालय तथा वाचनालय का प्रबन्ध करना।

गाँव की भलाई के लिये अन्य सभी ऐसे कार्यों का करना जो गाँव-पंचायत की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत हों।

माल और फौजदारी के छोटे-मोटे झगड़ों के निपटारों के लिये पंचायती-अदालत की व्यवस्था।

गाँव पंचायत के कर—उपर्युक्त कार्यों के लिये गाँव सभा अपने सदस्यों से कर वसूल कर सकती है। यह कर किसानों से एक आना प्रति रुपया के हिसाब से लगान पर लगाया जायगा और जमींदारों से अधिक से अधिक दो पैसा प्रति रुपया मालगुजारी पर होगा। एक कर व्यापारों और उद्योग-धन्धों पर भी नियत दर के हिसाब से भी लगाया जा सकता है।

करों द्वारा एकत्रित की हुई धन-राशि गाँव-कोष में जमा की जावेगी और गाँव-सभा द्वारा बजट की स्वीकृति हो जाने गाँव-पंचायत द्वारा ऊपर बताये गये कार्यों में व्यय की जावेगी।

पंचायती अदालत— प्रान्तीय सरकार ने जिलों को विभिन्न क्षेत्रों में बाँट दिया है और प्रत्येक क्षेत्र में एक पंचायती अदालत स्थापित कर दी गई है। गाँव सभा के पाँच सदस्य, पंचायती अदालत में पंचों की हैसियत से कार्य करेंगे। किसी क्षेत्र की सभी गाँव-सभाओं के चुने हुए पंचों का एक 'पंच मंडल' होता है। पंच-मंडल के सभी पंच मिलकर एक सरपंच चुनते हैं। किसी मुकदमे की सुनवाई के लिये सरपंच अन्य पंचों में से पाँच पचों की एक बेंच नियुक्त कर देता है जिसका कार्य उस मुकदमे पर अपना निर्णय देना होता है। पंचायती अदालतों को माल, दीवानी और फौजदारी के मुकदमों के लेने का अधिकार दे दिया गया है परन्तु कुछ दी गई धाराओं के अन्तर्गत ही मुकदमे पंचायती-अदालत में

सुने जा सकते हैं। धीरे-धीरे जब पंचायती अदालतों का कार्य सुचारु रूप से होने लगेगा तब उन्हें और भी अधिकार दे दिये जायँगे।

ग्राम-पंचायत-राज्य का भविष्य—हमारी सरकार का गाँव-पंचायतों की स्थापना का कार्य अत्यन्त ही सराहनीय है और इससे शासन में एक नवीन पद्धति का सूत्रपात हुआ है। हमारे देश की जनता सच्चे प्रजातंत्र का उपभोग इन गाँव-पंचायतों के द्वारा ही कर सकती है। यह सच है कि अभी अधिकांश ग्रामीण जनता पंचायत-राज्य एक्ट का पूरा-पूरा सदुपयोग नहीं कर सकती है और उसका कारण गाँवों में फैली हुई अशिक्षा एवं निर्धनता है, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि समय के साथ-साथ ग्रामीण लोग अपने उत्तरदायित्व को समझने लगेंगे और अपनी भलाई आप ही करने में समर्थ हो सकेंगे। प्रारम्भ में, सभी नवीन योजनाओं के कार्यान्वित करने में बाधायें आती हैं। वर्षों से दासता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण ग्रामीण लोगों का निराशा-वादी दृष्टिकोण हो गया है। आत्म-सहाय और स्वावलम्बन की भावनाओं का उनमें से लोप-सा हो गया है अतः उन्हें प्राप्त अधिकारों में विश्वास क्रमशः धीरे-धीरे ही होगा। अपनी जन-तंत्रीय सरकार के संरक्षण में रहकर ग्रामनिवासी शीघ्र ही पंचायत-राज्य-योजना से लाभ उठाने में समर्थ हो जायँगे।

उपसंहार—यदि ग्रामीण जनता ने इस योजना से लाभ उठाया जैसी कि आशा है तो गाँवों की दशा में एक क्रान्ति-कारी परिवर्त्तन आने के चिह्न स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वह दिन दूर नहीं जब कि हमारे गाँव अपने पूर्व गौरव को पुनः प्राप्त करेंगे। गाँवों से अविद्या का अन्धकार दूर हो

जायगा, निर्धनता और साम्प्रदायिक भेदभाव मिट जायँगे। पारस्परिक सहयोग की भावना और राष्ट्र-सेवा के भाव लोगों में उदय होने लगेंगे और तभी भारतवर्ष अन्य देशों के समकक्ष अपने भाल को उठा सकेगा। पंचायत-राज्य-योजना के समुचित सदुपयोग से ही हम सच्चे राम-राज्य का चित्र कल्पित स्वप्न देख सकते हैं, देख ही नहीं अपितु उस स्वप्न को घटना का रूप दे सकते हैं। प्रत्येक ग्राम-निवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी भलाई के लिये, देश के लिये एवं स्वतन्त्रता-संग्राम में मर मिटने वाले महापुरुषों की मृत आत्माओं की शान्ति के लिये, गाँव-पंचायतों के महत्त्व को अधिक से अधिक उपलब्ध करे और उन्हें सफल बनाने का भरसक प्रयत्न करे।

भारत की नारी

प्रस्तावना—"नारी-जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी,
अंचल में है दूध और आँखों में पानी।"

कवि ने ऊपर की दो ही पंक्तियों में भारत की नारी का कैसा मार्मिक और हृदय-स्पर्शी चित्र अंकित कर दिया है। एक यंत्र की भाँति अपनी संतान का पालन पोषण करने और जीवन भर दुख उठाने के अतिरिक्त भारतीय-नारी के जीवन में और क्या धरा है? सदियों से पुरुषों के अत्याचार सहते सहते नारी जाति का हृदय भाव-शून्य हो गया है। उनकी आत्मा मृत प्राय हो चुकी है। यदि आज बीसवीं सदी में अन्य देशों की स्त्रियों के साथ भारत की स्त्रियाँ कन्धे से कन्धा मिला कर नहीं चल सकतीं, अपनी अधोगति की

ओर उनका ध्यान नहीं जाता, और अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये उनमें उत्साह नहीं, पैदा होता तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

प्राचीन भारत में नारी का स्थान—एक विद्वान ने कहा है कि किसी देश अथवा जाति के उन्नत होने का सबसे पहिला प्रमाण यह है कि उसमें स्त्रियों का स्थान ऊँचा होगा। कोई देश अन्य बातों में चाहे जितना ही उन्नत क्यों न हो, परन्तु यदि उसमें स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त न हो, उनका सम्मान न हो और वे अशिक्षित हों, तो वह देश कदापि सभ्य और समृद्ध नहीं कहा जा सकता। प्राचीन काल में भारतवर्ष उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था। यहाँ की सभ्यता संसार के लिये आदर्श थी। यहीं से बहुत सी विद्यायें विदेशी लोग अपने अपने देशों को ले गये थे। उस समय भारतवर्ष में सभी लोग सुखी थे और आनंद-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। उन्नति की उस अवस्था में यहाँ नारी-जाति को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। समाज में स्त्रियों को समानता के अधिकार मिले हुए थे। वे अपने पतियों के साथ बड़े बड़े समारोहों में भाग लेती थीं। यज्ञ में पुरुषों के बराबर ही स्त्रियों को आसन मिलता था और वे साथ ही वेद-मंत्रों का उच्चारण करती थीं। पुरुषों के समान ही उन्हें राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक शिक्षायें दी जाती थीं। युद्धों में भी स्त्रियों के पराक्रम दिखलाने के अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। कुन्ती, अहल्या, सती सावित्री और सीता तथा महारानी लक्ष्मीबाई आदि अनेकों आदर्श नारियों को कौन भारतवासी नहीं जानता ?

वर्त्तमान समय में नारी का स्थान—परन्तु आज वही भारत की नारी कहाँ से कहाँ पहुँच गई है। जैसे-जैसे देश

में नारियों का स्थान गिरता गया वैसे ही वैसे देश अधपतन की ओर बढ़ता गया और संसार के सबसे पिछड़े राष्ट्रों में समझा जाने लगा। आज हमारे देश में स्त्रियों को पुरुषों से सभी बातों में घटिया समझा जाता है। समाजिक, राजनैतिक, शिक्षा आदि किसी विषय में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर स्थान प्राप्त नहीं है या यों भी कह सकते हैं कि वे इस योग्य नहीं रह गई हैं कि पुरुषों की बराबरी कर सकें। मनुष्य ने अपने स्वार्थ-साधन के उद्देश्य से ऐसी सामाजिक रीतियों को प्रचलित कर दिया है जिनसे स्त्रियाँ ऊपर उठ ही नहीं सकतीं। वे पूर्ण रूप से 'पुरुषों से अधीन बन चुकी हैं और एक पराधीन व्यक्ति से उन्नति की आशा करना निराधार है।

बाल्यावस्था से ही उपेक्षा—भारत की नारी की हीनावस्था के विषय में सबसे पहिले तो हम उनके जन्म को ही लेते हैं। जन्म से ही लड़कियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। न्याय के भय से जन्म लेते ही लड़कियों को मार डालना अब तो बन्द सा हो गया है अन्यथा कुछ समय पूर्व बहुत से माता पिता लड़कियों को जन्म लेते ही अथवा छोटी अवस्था में ही मार डालते थे। अब यह बात तो नहीं रही परन्तु लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की ओर प्यारवालों की सामान्य उपेक्षा सर्वत्र ही देखी जाती है। खाने-पीने और रहन-सहन में लड़कियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कियों को शिक्षा दिलाने की आवश्यकता तो विरले ही अनुभव करते हैं अन्यथा अधिकांश लड़कियाँ अशिक्षित ही रह जाती हैं। गाँवों में तो लड़कियों को पढ़ाना एक हास्यास्पद बात समझी जाती है। क्या हुआ जो हजार में दो चार लड़कियाँ साधारण पढ़ी लिखी निकल आईं।

फिर जैसे ही जैसे वे बड़ी होने लगती हैं, माँ बाप को उनके विवाह की शीघ्रता करनी पड़ती है।

वैवाहिक जीवन—जब तक कि लड़कियाँ शादी योग्य नहीं हो पाती तभी उनकी शादी कर दी जाती है। अब कुछ समय से बाल-विवाह की रस्म तो बन्द होती जा रही है परन्तु फिर भी उचित अवस्था से पहिले ही अधिकांश लड़कियों की शादी करदी जाती है। विवाह, लड़की के माँ बाप तथा अन्य सम्बन्धी इसलिये नहीं करते कि लड़की को योग्य वर और घर मिल जाये अपितु इसलिये करते हैं कि लड़की से हमारा पीछा छूट जाये। गाँवों में लड़की के विवाह को लड़की का काला मुँह करना कहा जाता है। वर की योग्यता पर तो ध्यान सिवाय कुछ शिक्षित और धनी व्यक्तियों को छोड़कर कोई देता ही नहीं। प्रायः यह देखा जाता है कि किस प्रकार कम से कम व्यय में विवाह हो सकता है। दहेज की प्रथा के कारण बाल-विवाह, बहु-विवाह और अनमेल विवाह आदि कुरीतियाँ चल गई हैं। इन कुरीतियों के परिणाम स्वरूप हिन्दू-समाज में विधवाओं की संख्या दिन व दिन बढ़ती जाती है। छोटी अवस्था में ही संतान उत्पन्न होने के कारण स्त्रियों और बालकों की मृत्यु-संख्या भी बढ़ गई हैं। पारिवारिक कष्टों से पीड़ित होने के कारण स्त्रियों की आत्म-हत्या के समाचार प्रतिदिन ही समाचार-पत्रों में छपते रहते हैं।

विधवाओं की दशा—भारत की नारी को विधवा होने की अवस्था में पुनर्विवाह करने का भी अधिकार नहीं। यद्यपि कानून की दृष्टि से वे ऐसा कर सकती हैं परन्तु समाज के भय से उन्हें यह करने का साहस नहीं होता। यदि किसी ने अपना दूसरा विवाह कर लिया तो समाज उन्हें

घृणा की दृष्टि से देखता है और अक्सर वे जाति से बाहर कर दी जाती हैं। पुरुष अब भी एक स्त्री के रहते कई-कई विवाह कर लेते हैं और स्त्री के मरने पर तो मानो दूसरा विवाह करने का उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होता है जो एक या दूसरे कारणों से अपनी स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह न करता हो अन्यथा सभी कर लेते हैं। पुरुष समाज की ओर से ऐसा होते हुए भी, स्त्रियों से आजीवन वैधव्य के दुख उठाने की आशा करना और उन्हें बाध्य करना कैसा अन्याय और दुष्कर्म है? यदि गणना की जाय तो देश में लाखों स्त्रियाँ ऐसी निकलेंगी जो बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई थीं। यहाँ तक कि उन्हें पति के दर्शन तक नहीं हुये थे परन्तु फिर भी उनके घरवालों ने यही नहीं कि उनके पुनर्विवाह का कोई प्रयत्न किया हो बल्कि इसके विपरीति उन्हें बल-पूर्वक दूसरा विवाह करने से रोका। इसका परिणाम यह हुआ कि उन विधवाओं में से बहुतों ने आत्म-हत्या करली, बहुतों ने वेश्यावृत्ति स्वीकार करली और बहुत सी भीख माँगने तथा दुराचार करने पर उतर आईं। कुछ विधवायें ऐसी भी होती हैं जो धार्मिक संस्कारों के कारण इनमें से कोई कार्य नहीं करतीं और जीवन पर्यन्त वैधव्य के दुखों को भोगती रहती हैं परन्तु फिर भी समाज उन्हें अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। हिन्दुओं में किसी विधवा स्त्री का प्रातःकाल मुँह देखना भी बुरा समझा जाता है। मांगलिक अवसरों पर उनकी उप-स्थिति अशुभ मानी जाती है। किसी विधवा स्त्री का घर से बाहर जाते समय सामने पड़ जाना अप-शकुन गिना जाता है। विधवा-नारी की हीनता का इससे अधिक और क्या वीभत्स चित्र खींचा जाय? हाय री हिन्दू जाति! तेरे ही

द्वारा स्त्रियों की यह अवस्था और तेरे ही द्वारा उस अवस्था के प्रति इतनी घोर उपेक्षा ! पशु भी अपनी ग़लती के लिये लज्जित होते देखे गये हैं फिर मनुष्य से ऐसे व्यवहार के उदाहरण, भारतवर्ष से बाहर कदाचित् ही कहीं मिलें।

पर्दे की प्रथा—पुरुषों ने अपने स्वार्थ के ही कारण स्त्रियों को पर्दे में रहने को विवश किया है। एक समय था जब कि कुछ चरित्र-हीन मुसलमान बादशाहों की दृष्टि से बचाने के लिये हिन्दुओं में स्त्रियों को पर्दा के अन्दर रहने की आवश्यकता अनुभव की गई और वैसा करना परिस्थतियों को देखते हुए उचित ही था। परन्तु अब उस प्रथा को जारी रखना किसी प्रकार भी उचित नहीं। कहने को तो यह कहा जाता है कि यदि स्त्रियों को पर्दा में न रक्खा जायगा तो वे दुराचारिणी हो जायँगी और पुरुषों के द्वारा बहकाली जाया करेंगी परन्तु वास्तव में बात यह है कि पुरुष यह नहीं चाहते कि वे घर से बाहर निकल कर स्वतन्त्र बनें क्योंकि स्वतन्त्र होने पर पुरुषों के स्वार्थों पर कुठाराघात होगा और वे अपने अधिकारों के लिये लड़ेंगे। यह बात किसी भी भाँति मान्य नहीं कि पर्दे से स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा होती है। बल्कि इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि स्त्रियों को जितना अधिक पर्दे के भीतर रक्खा जायगा, उन पर जितनी ही अधिक निगरानी रक्खी जायगी, वे उतनी ही अधिक उच्छृङ्खल बनेंगी। मनुष्य का स्वभाव है कि जो कुछ भी वह करना चाहता है अपनी इच्छा से करता है। फिर स्त्रियाँ तो अपनी हठधर्मी के लिये प्रसिद्ध हैं। जिस कार्य से उन्हें बलात् रोका जायगा वे उतना ही उसे करेंगी। अतः पर्दे के अन्दर स्त्रियों को इस आशा से बन्द रखना कि उनके चरित्र की रक्षा होगी, दुराशा मात्र है। इसके अतिरिक्त पर्दे से

स्त्रियों के स्वास्थ्य को भी बहुत हानि पहुँचती है। अस्पतालों की रिपोर्ट से पता लगता है कि क्षय का रोग पुरुषों की अपेक्षा उन स्त्रियों को अधिक होता है जो पर्दे के अन्दर रहती हैं। मुसलमानों में पर्दे की प्रथा और भी अधिक है अतः मुसलमान स्त्रियाँ क्षय-रोग से अधिक पीड़ित पाई जाती हैं।

घर में स्त्री की उपेक्षा—प्रथा स्वरूप पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर किये गये अत्याचारों के अतिरिक्त वैयक्तिक रूप से भी उन पर कम अत्याचार नहीं होते। घर में एक दासी से अधिक स्त्री को अधिकार नहीं होता। घर के काम काज, सन्तान के पालन-पोषण और पति की काम-वासना की तृप्ति के सिवाय स्त्री का कोई महत्व नहीं होता। इन कामों के करते रहने पर भी उन्हें पति और घरवालों की गालियाँ तथा मार-पीट तक सहनी पड़ती है। पति की सम्पति मे स्त्री का कोई अधिकार नहीं है। यदि पति रुष्ट होकर स्त्री का परित्याग करदे तो उसका कहीं ठिकाना नहीं। यद्यपि राज्य की ओर से स्त्री के भरण पोषण का उत्तरदायित्व पति के ऊपर है परन्तु अपने इस अधिकार को प्रयोग में लाने वाली बिरली स्त्रियाँ ही होती हैं। प्रारम्भ से ही स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ऐसी बनादी जाती है जिससे पति से अलग होकर उनका मानो सारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। नारी के ऊपर होने वाले अन्यायों और अत्याचारों का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? जो कुछ भी इस विषय में लिखा जायगा वही थोड़ा होगा।

उपसंहार—यदि हिन्दू समाज चाहता है कि उसके समाज की उन्नति हो, जाति की उन्नति हो, देश समृद्धिशाली हो और भारतवर्ष अपने प्राचीन-गौरव को प्राप्त कर सके,

तो अनिवार्यतः उसे नारी के सच्चे स्वरूप को पहिचानना होगा। वर्त्तमान नारी की दासता की बेड़ियों को काटकर, उसे पुरुष के समकक्ष बैठाना होगा। कोई कारण नहीं कि स्वतन्त्र होने पर और समानता का अधिकार प्राप्त कर लेने पर भारत की नारी संसार की किसी भी उन्नति-शील पुरुष जाति की बराबरी न कर सके। जहाँ कहीं और जब कभी स्त्रियों को अवसर दिया गया है, वहीं उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है और पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं रही हैं। वैसे तो यह है कि सदैव के लिये किसी भी जाति को दासत्व में नहीं रक्खा जा सकता है और वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब कि भारत की नारी भी अन्य देशों की नारियों के सदृश्य स्वतः ही उठ खड़ी होंगी और पुरुषों से अपने अधिकारों को प्राप्त कर लेंगी परन्तु भलमनसाहत और उत्तमता इसी में है कि पुरुष-समाज उस स्थिति के आने से पूर्व ही उन्हें अपना स्थान सौंप दे।

विद्यार्थी जीवन

प्रस्तावना—हमारे पूर्वजों ने मनुष्य के जीवन के चार भाग किये थे। ये चारों भाग ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम कहलाते थे ब्रह्मचर्य आश्रम ही विद्यार्थी जीवन कहलाता था। इस जीवन में प्रत्येक व्यक्ति के लिये २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए, विद्याध्यन करना आवश्यक था। इसके पश्चात् उसे विवाह करने की

अनुमति दी जाती थी और तब वह ४५ वर्ष तक ग्रहस्थ धर्म का पालन करता था। ४५ वर्ष की आयु हो जाने पर वह अपने वयस्क लड़कों पर गृहस्थी का भार सौंप देता था और धर्म में अपना मन लगाता था। ६० वर्ष की आयु होने पर वह पूर्ण सन्यास ले लेता था और घरबार त्याग कर वन में तपस्या के लिये चला जाता था। इस प्रकार जो व्यक्ति अपना जीवन-यापन करते थे वे १०० वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त करते हुए बड़े सुख के साथ इस संसार को छोड़ते थे।

जब से हमने पूर्वजों के बनाये हुए जीवन के उक्त चार भागों पर चलना छोड़ दिया है, तभी से हमारा जीवन दुख मय बन गया है और आयु भी बहुत अल्प हो गई है। यदि आज हम अन्य तीन आश्रमों का पालन नहीं कर सकते, तो कम से कम ब्रह्मचर्यआश्रम के नियमों का तो अवश्य ही पालन करना चाहिये क्योंकि आगामी जीवन का भवन इसी के ऊपर निर्भर है।

विद्यार्थी जीवन ही समूचे जीवन का आधार है—विद्यार्थी जीवन ही हमारे संमूचे जीवन की आधार शिला है। इसी जीवन के सदुपयोग अथवा दुरुपयोग पर शेष जीवन की सफलता अथवा असफलता निर्भर है। जब नींव ही कमजोर है, तो मकान कब तक टिका रह सकता है? भविष्य को उज्ज्वल बनाने का विद्यार्थी जीवन स्वर्ण-काल है।

विद्यार्थी जीवन के आनन्द—विद्यार्थी-जीवन में मनुष्य संसारिक चिन्ताओं से मुक्त रहता है। भोजन, वस्त्र और गृहस्थी का भार उस पर नहीं रहता। इस समय मन सभी विकारों से मुक्त रहता है, शरीर में स्फूर्ति और बल रहता है। हृदय में उमंग, चाल में अकड़, वाणी में शक्ति और मस्तिष्क में प्रखरता रहती है। मनुष्य अपनी सभी शक्तियों के

विचार से अपनी विद्यार्थी अवस्था में ही परिपूर्ण होता है। यदि इन शक्तियों का इसी समय उपयोग कर लिया तो आगामी जीवन एक प्रकार से सुरक्षित और सुखप्रद बन जाता है।

प्राय: देखा गया है कि विद्यार्थी-जीवन में विद्यार्थी इस जीवन के सुख और महत्व को अनुभव नहीं करते। वह विद्याध्यन को भार रूप समझते हैं और शीघ्र ही उससे छुटकारा पाकर विवाह आदि ग्रहस्थी के कार्यों को लालायित रहते हैं परन्तु विद्यार्थी जीवन को छोड़ चुकने के बाद, जब उनके ऊपर गृहस्थी का बोझ आता है, और संसारिक समस्यायें उनके दायें बायें खड़ी हो जाती हैं, तब वे अपने विद्यार्थी-समय को स्मरण करते हैं। उन्हें उन दिनों की स्वच्छन्दता और अल्हड़ता की बातें याद आती हैं जब कि उन पर न तो किसी का अंकुश था और न किसी की चिन्ता। जहाँ चाहते थे जाते थे और जो चाहते खेलते थे। माँ-बाप प्रति महीने स्कूल की फीस, खाने का खर्चा और मनोरंजन के लिये रुपये भेज देते थे। कैसा निर्द्वन्द था वह जीवन और कैसे सुन्दर थे वे दिन। बाद के जीवन में ही मनुष्य विद्यार्थी जीवन के अमूल्य समय को नष्ट कर देने की अपनी भूल पर पश्चाताप करता है। वह समझने लगता है कि यदि विद्यार्थी जीवन में उसने विद्या, ज्ञान, स्वास्थ्य, चरित्र निर्माण आदि बातें प्राप्त करली होतीं तो बाद का यह जीवन कितना सुखी होता।

विद्यार्थी जीवन में चरित्र निर्माण की आ श्यकता— विद्यार्थी जीवन में हृदय स्फटिक के समान निर्मल होता है। यह ऐसी अवस्था होती है जब कि मन और मस्तिष्क को कैसे भी साँचे में ढाला जा सकता है। इस समय के संस्कार

और भाव स्थाई रूप से जीवन में साथ देते हैं। यदि वाल्यावस्था में दुर्भाग्यवश मन में बुरे विचारों ने घर कर लिया और बुरी आदतें पड़ गईं तो जीवन भर कितना ही प्रयत्न करने पर उनसे मुक्ति नहीं पाई जा सकती। और यदि इस अवस्था में मन के ऊपर अच्छे भावों का प्रभाव पड़ता गया तो भविष्य में बुरी संगत मिलने पर भी मनुष्य कुमार्ग में नहीं पडेगा। वाल्यावस्था में ही मनुष्य का जैसा स्वभाव बन जाता है, वैसा ही जीवन भर में बना रहता है। लाख प्रयत्न करने पर भी स्वभाव पूर्णरूप से नहीं वदलता। स्वभाव की शक्ति प्रबल होती है अतः विद्यार्थी-जीवन का समय बड़ा ही मूल्यवान है। उसके सदुपयोग और दुरुपयोग पर ही आगामी जीवन का भविष्य निर्भर है।

विद्यार्थी जीवन का महत्व—विद्यार्थी जीवन की महत्ता को सभी ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। प्राचीनकाल में तो विद्यार्थियों को सर्वत्र सम्मान मिलता था। जहाँ वे जाते थे, वहीं उनकी पूजा होती थी। राजा महाराजा तक उनके सम्मान में उठ खड़े होते थे और उन्हें सिर झुकाते थे। वर्त्तमान काल में भी विद्यार्थियों को सभी जगह सुविधा दी जाती है। धनाढ्य लोग और सरकार उन्हें छात्र-वृत्ति देते हैं और योग्य विद्यार्थियों को सब प्रकार की सुविधायें देकर विदेश भेजा जाता है जहाँ वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें।

वर्त्तमान समय में विद्यार्थियों की दशा—खेद का विषय है कि भारतवर्ष के विद्यार्थी अपने इस समय के महत्व को अनुभव नहीं करते। प्रथम तो निर्धनता के कारण यहाँ वहुत से विद्यार्थी अधिक समय तक विद्या-लाभ कर ही नहीं सकते और दूसरे, धनी लोग जो अपने लड़कों को उच्च शिक्षा दिला भी सकते हैं, उनके लड़कों में प्रारम्भ ही से बुरे विचार घर

कर लेते हैं। धनी माँ-बाप के लड़के विद्यार्थी काल में खूब सैर सपाटे और सिनेमा नाच, देखते हैं। इस प्रकार न तो वे शिक्षा ही प्राप्त कर पाते हैं और न चरित्र निर्माण ही। विद्यार्थियों का जीवन सरल, पवित्र और कष्टपूर्ण होने के स्थान पर विलासी हो जाता है। इस विषय में हमारे देश के विद्यार्थियों को इंगलैण्ड, अमेरिका के विद्यार्थियों का अनुकरण करना चाहिये। इङ्गलैण्ड में धनी से धनी व्यक्ति के लड़के को भी विद्यार्थी जीवन में साधारण से साधारण काम की शिक्षा दी जाती है और उन्हें इन कामों के करने में कोई संकोच नहीं होता। इङ्गलैण्ड की गद्दी के उत्ताराधिकारी तक को स्कूल और कालेजों में सभी प्रकार के शारीरिक परिश्रम करने पड़ते हैं।

कुछ महापुरुषों के विद्यार्थी जीवन—संसार के इतिहास को उठाकर देख लीजिये। जितने महापुरुष, वैज्ञानिक, साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, हुए हैं, उनका विद्यार्थी जीवन बड़ा ही संकटमय और परिश्रमी रहा है। माइकेल फैराडे किताबों की दूकानों पर जिल्द बाँधा करता था और उससे जो पैसे मिलते थे उन्हें वह अपनी पुस्तकों पर व्यय करता था। विज्ञानाचार्य एडीसन रेल में समाचार पत्र बेच कर अपने वैज्ञानिक-प्रयोग करता रहता था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सड़क पर लगी हुई लालटैनों के प्रकाश में अपना पाठ याद करते थे। अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन ने कहा था, "गरीबी में मेरा जन्म हुआ था। अभाव में मैं पला था। दस वर्ष की उम्र में मैंने अपना घर छोड़ दिया और ग्यारह वर्ष तक उम्मेदवारी में काम करता रहा। साल में केवल एक महीने की शिक्षा मिलती थी। मैं सवेरे बहुत तड़के उठता और शाम तक बहुत कठिन श्रम किया करता था।" एक बार

एक पुरुष से किसी ने प्रश्न किया कि आपने कहाँ शिक्षा पाई है? उसने उत्तर दिया कि "महाशय! मैंने वैसे तो कई स्कूलों में शिक्षा पाई है परन्तु आज जिस स्थिति में मैं हूँ उसकी शिक्षा तो मैंने विपत्ति के ही स्कूल में प्राप्त की है।" किसी कवि ने ठीक ही कहा है:—

'जितने कष्ट कंटकों में है जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही यत्र, तत्र, सर्वत्र मिला'।

विद्यार्थियों को यह भली भाँति स्मरण रखना चाहिये कि उनका यही समय सर्वोत्तम है। इस समय में वे अपनी जीवन धारा को जिधर मोड़ना चाहेंगे, उधर ही मुड़ जायगी और एक बार उसका प्रवाह स्थिर हो जाने पर संसार की कोई शक्ति उसे बदल नहीं सकेगी।

विद्यार्थी जीवन में अध्ययन की आवश्यकता—विद्यार्थी को चाहिये कि सबसे पहिले वह अपनी शिक्षा पर ध्यान दे। यही समय होता है जब कि वह अपने ज्ञान को विस्तृत कर सकता है और बहुत-सी पुस्तकों को पढ़ सकता है। अपने पाठ्य विषय को प्रमुख रखते हुए, उसे अन्य उत्तम ग्रन्थों का भी अध्ययन करना चाहिये। पाठ्य-पुस्तकें तो उसे परीक्षा में उत्तीर्ण करायेंगी, और अन्य श्रेष्ठ ग्रन्थ दूसरे दृष्टिकोण को विस्तृत करेंगे। उसके ज्ञान भंडार में वृद्धि होगी। शिक्षा का तात्पर्य केवल स्कूल की पुस्तकें रट लेना ही नहीं है। सभी विषयों पर उच्च लेखकों से चरित्र निर्माण की शिक्षा मिलती है जो जीवन की सब से मूल्यवान वस्तु है।

चरित्र निर्माण की आवश्यकता—शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थी को अपने चरित्र पर भी ध्यान देना चाहिये क्योंकि चरित्र निर्माण और विकास के लिये यही समय सबसे

उपयुक्त है। आत्म निर्भरता, स्वावलंबन, साहस, उदारता, शिष्टाचार आदि गुणों का विकास विद्यार्थी जीवन में ही हो सकता है। अपने माता-पिता से सहायता लेते हुए भी उन्हें आत्म निर्भर बनने का प्रयत्न विद्यार्थी जीवन में ही करना चाहिये। बहुत से विद्यार्थी ट्यूशन करके ही पढ़ते रहते हैं और माता-पिता से एक पैसा भी अपनी शिक्षा पर व्यय नहीं कराते। जब कुछ विद्यार्थी ऐसा कर सकते हैं, तो दूसरे भी उसी प्रकार आत्मनिर्भर बन सकते । जो विद्यार्थी इस समय में अपने पैरों पर खड़ा होना सीख जायँगे, उन्हें जीवन में कभी भी किसी के सामने हाथ पसारने का अशुभ दिन न देखना पड़ेगा। अतः विद्यार्थियों को स्कूल और कालेज की शिक्षा प्राप्त करते हुए ही जीवन की शिक्षा भी इसी समय लेनी चाहिये।

स्वास्थ्य सुधार की आवश्यकता—विद्यार्थियों को शिक्षा और चरित्र-निर्माण के साथ, अपने स्वास्थ्य पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। स्वास्थ्य का जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। कहावत है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास हो सकता है। स्वास्थ्य के बिगड़ जाने पर मनुष्य कहीं का नहीं रहता। विद्वानों ने स्वास्थ्य की तुलना धन से की है। विद्यार्थी जीवन, स्वास्थ्य-सुधार और पुष्ट शरीर बनाने के लिये सबसे अच्छा समय है। इस अवस्था में शरीर जैसा बन जाता है, न्यूनाधिक रूप में वह वैसा ही आगे रहता है। अतः विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा के साथ ही खूब व्यायाम करने की आवश्यकता है जिससे उनका स्वास्थ्य भविष्य में कभी इनका साथ न छोड़े।

विद्यार्थियों को अपना कर्त्तव्य भली भाँति समझ लेना चाहिये और उस पर दृढ़ता पूर्वक जमे रहना चाहिये। आज

देश के नेता पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि पढ़े लिखे नवयुवकों पर ही भारतवर्ष का भविष्य निर्भर है। वर्तमान विद्यार्थी ही आगे चलकर शासक बनेंगे, वकील बनेंगे और नागरिक बनेंगे, अतः देश का उत्तरदायित्व सब प्रकार से उन्हीं के ऊपर होगा।



शतरंज का खेल

प्रस्तावना—शतरंज भी क्या खेल है ? जिस किसी व्यक्ति ने इसका आविष्कार किया होगा, उसके दिमाग का क्या ठिकाना। अवश्य ही वह, बड़े-बड़े गणितज्ञों, वैज्ञानिकों, राजनैतिज्ञों, युद्ध विशारदों अथवा कैसे भी विशेषज्ञों के समकक्ष बैठने के योग्य है। यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि वह इन सबसे बढ़-चढ़ कर माने जाने के योग्य है। यों तो सभी खेलों के आविष्कारक बड़े ही आदमी होंगे परन्तु शतरंज जैसे खेल को निकालने वाला यदि महानतम आदमी कहा जाय तो कोई बात नहीं। न मालूम उसने एक ऐसा खेल किस प्रकार सोच निकाला जिससे मन कभी भरता ही नहीं। इस खेल में जीतने वाले की तो बात ही क्या, हारने वाला भी नहीं अघाता। ज्यों-ज्यों वह हारता जायगा, त्यों ही त्यों उसका उत्साह बढ़ता जायगा। दो सच्चे शतरंज के खिलाड़ियों को जमा दीजिये और फिर देखिये उनकी सहन-शीलता, धीरता, गम्भीरता, उदारता, आत्मनिर्भरता आदि आदि सभी मानवोचित गुणों की प्रक्रिया। सुबह से शाम तक एक ही आसन पर तब तक डटे रहेंगे जब तक कि कोई

तीसरा व्यक्ति उन्हें डाँट फटकार कर अलग नहीं करेगा। भूख और प्यास लगना तो दूर रहा, उन्हें यह आभास तक न हो पायेगा कि इन बातों की उन्हें क्षण भर के लिये भी आवश्यकता हुई थी। हारने वाला खिलाड़ी जीतने वाले के सभी नखरे यहाँ तक कि गालियाँ तक सब सुनता रहेगा और आश्चर्य तो यह कि उसे इन सब बातों पर क्रोध आने के स्थान पर खुशी ही अधिक होगी। विरोधी खिलाड़ी गालियाँ देता जाय परन्तु खेलता रहे, यही हारते हुए खिलाड़ी के लिये सब कुछ है। दूसरों की भूलों को क्षमा करने का नाम उदारता है परन्तु यहाँ क्षमा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। झिड़किया, गालियाँ सुनने में आनन्द आता है और उन्हें सुनाने वाला विरोधी खिलाड़ी उत्तरोत्तर प्रिय लगता जाता है। यह कौन-सा मानवोचित गुण है, अभी तक भाषा-विज्ञान इसके लिये उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ रहा है। कष्टों को सहन कर सकने की क्षमता को सहन-शीलता का गुण कहा जाता है। सहन-शील व्यक्ति वह होता है जो दूसरों के वाक्य-बाणों को अथवा कष्टों को अनुभव तो करे परन्तु अपनी अनुभूति को प्रकट न होने दे। परन्तु शतरंज का खिलाड़ी किसी भी बाह्य-पीड़ा को अनुभव ही नहीं करता फिर उसे सहम और गुप्त रखने के प्रपंच की आ यकता ही प्रतीत नहीं होती। खिलाड़ी ऐसी विशेषता को भी किसी गुण के नाम से पुकारा जाय, यह बात भी अभी तक भाषां विशेषज्ञों के लिये जटिल बनी हुई है। लोग कहते हैं कि उच्च गुण सभी व्यक्तियों में नहीं होते। किसी में कोई गुण होता है तो किसी में कोई। परन्तु शतरंज का खेल तो इस सत्य की असत्यता को प्रकट कर देता है। बड़े से बड़ा गुण शतरंज खेलते समय खिलाड़ियों में प्रकट हो जाता है और उसका

पूरा निर्वाह उनमें देखा जाता है। फिर यह बात किस प्रकार मानली जाय कि गुण तो मनुष्य की स्वभावगत विशेषता है। शतरंज का खेल तो यही सिद्ध करता है कि सभी गुण सभी मनुष्यों में समान रूप से विद्यमान हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि किसी को किसी क्षेत्र में उन्हें प्रकट करने का अवसर मिला हुआ है और किसी को किसी दूसरे में तथा किसी व्यक्ति को कोई उपयुक्त क्षेत्र मिला ही नहीं है। क्षेत्र के अभाव से गुण के अभाव की कल्पना कर लेना नितान्त भूल है।

शतरंज और अन्य खेल—शतरंज के खेल को खेल कहा जाय अथवा नशा कहा जाय, यह बात भी अभी तक संदिग्ध है। एक बात निसंदेह असंदिग्ध है और वह यह, कि यदि यह खेल है तो सबसे अच्छा खेल है और यदि यह नशा है तो सबसे अच्छा नशा है। दूसरे खेलों को ही लीजिये। चाहे घर के अंदर के खेल हों चाहे बाहर के, सभी में अधिक खिलाड़ियों की आवश्यकता होती है। प्रचलित खेलों में ताश, चौपड़, कैरम, हाकी, फुटबाल, वालीबाल, क्रिकेट, कबड्डी आदि आते हैं। इन सभी में कई खिलाड़ियों की आवश्यकता होती है। यदि पूरे खिलाड़ी न मिले तो मन मार कर बैठे रहिये। शतरंज में केवल दो खिलाड़ियों का ही संसार होता है, उन्हें तीसरे की अपेक्षा नहीं होती। अन्य खेलों में यह बात भी होती है कि दूसरे खिलाड़ियों की खुशामद करनी पड़ती है, उन्हें खेल पर बुलाने के लिये उचित समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और जिस समय वे काम में लगे होते हैं, उस समय उनसे खेल का निमंत्रण देने का भी साहस नहीं होता। परन्तु शतरंज का खिलाड़ी इन सारी अड़चनों को नहीं जानता। जहाँ वह

दूसरे खिलाड़ी के पास पहुँचा नहीं, कि वह भी सब काम-काज छोड़ कर मैदान में आ उतरता है। एक खिलाड़ी का दूसरे खिलाड़ी के घर पर पहुँच जाना मानो एक बाहर से आये हुए सिंह की दहाड़ है जिसे विपक्षी स्थानीय सिंह अपने राज्य में सुन कर चुप बैठा ही नहीं रह सकता। उसे तो दूसरे का चैलेन्ज किसी भी मूल्य पर स्वीकार करने के लिये वाध्य होना ही पड़ता है। दूसरे खेलों के लिये कई एक साधनों की आवश्यकता होती है परन्तु शतरंज में बिसाँत और लकड़ी के मौहरे यही सब कुछ है। बहुत हुआ तो खिलाड़ियों ने ज़मीन पर एक चटाई बिछाली, नहीं तो वैसे ही जम गये और जम जाने पर उनकी सारी दुनियाँ लकड़ी के घोड़े, ऊँटों, पैदल, हाथियों और बादशाह तथा वजीरों में ही केन्द्रित हो जाती है। युद्ध क्षेत्र में उतनी तल्लीनता नैपोलियन और सिकन्दर को भी नहीं होती होगी जितनी की लकड़ी की पल्टन के संचालन में एक डेढ़ बालिश्त की कपड़े की बिसाँत पर दो शतरंज के खिलाड़ियों को होती है। इसी सैन्य-संचालन के आधार पर इसका नाम चतुरंग या शतरंज पड़ा है। घर में आटा चावल है या नहीं, बच्चे स्कूल गये हैं या नहीं बाजार से शाक-भाजी आयी है या नहीं घर में रोग शैया पर पड़े पुत्र के लिये दवा है या नहीं आदि बातों से खिलाड़ियों को कोई प्रयोजन नहीं। घर पर कुछ भी होता रहे और बाहर आग लग रही हो चाहे राज-विप्लव हो परन्तु खिलाड़ी इन सब बातों से ऊपर होजाते हैं। संसार का माया-मोह पीछे छूट जाता है और वे सच्चे ब्रह्मानंद में लवलीन हो जाते हैं। वाजिदअलीशाह का लखनऊ शत्रुओं द्वारा लगाई गई आग से धाँय धाँय जल रहा था परन्तु 'दो शतरंज के खिलाड़ी' अपनी शह और

मॉत के चक्कर में पड़े हुए थे।

शतरंज का खेल एक नशा है—शतरंज का खेल यदि नशा है तो भी यह सभी नशों में अच्छा है इसमें कोई सन्देह नहीं। दूसरे नशों में नशीली वस्तु चाहिये और उनके खरीदने को नित्य प्रति ही पैसे चाहिये। भाँग, गाँजा, चरस, कोकीन, तम्बाकू, शराब आदि सभी मादक वस्तुएँ काफी मँहगी मिलती हैं और उनके ऊपर व्यय करने में बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्ति निर्धन होगये, उनका घर बार चौपट होगया। परन्तु शतरंज में एक बार डेढ़ रुपया खर्च करके बिसाँत और लड़की के मोहरे खरीद लीजिये और जीवन भर उसके नशों की मस्ती में झूमिये। यह ऐसा नशा है जिसका आनंद कभी फीका पड़ता हो नहीं। नित्यप्रति नवीन उत्साह से खिलाड़ी इस नशे में लीन होजाते हैं और उसकी खुमारी प्रतिक्षण बढ़ती ही जाती है। फिर दूसरे नशों के सेवन से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और नशा करने वाले अन्त में अनेकों रोगों के शिकार हो जाते हैं। शतरंज का नशा ऐसा कोई हानिकारक प्रभाव स्वास्थ्य पर नहीं डालता। इसमें लगातार घण्टों एक ही आसन से बैठना अवश्य पड़ता है और इससे कुछ लोग कल्पना कर सकते हैं कि स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता होगा। परन्तु यह बात अनुभवसिद्ध है कि कोई काम जब असाधारण तल्लीनता के साथ किया जाता है तो उस काम का परिश्रम शरीर पर कोई दूषित प्रभाव नहीं डालता। अरुचि के साथ किया गया थोड़ा सा भी परिश्रम मन और शरीर को थका देता है परन्तु रुचि पूर्वक किया गया बहुत-सा श्रम भी थकावट नहीं लाता। अतः लोगों की उक्त धारणा है कि शतरंज में लगातार बैठने से स्वास्थ्य नष्ट होता है, निर्मूल एवं भ्रांत है। अन्त में हम इसी परिणाम पर पहुँचते

हैं कि शतरंज का खेल यदि खेल है तो सबसे अच्छा खेल है और यदि नशा है तो सबसे अच्छा नशा है।

शतरंज एक शाही खेल—शतरंज का खेल कब और कैसे आविष्कृत हुआ तथा इसके जन्म-दाता कौन से महापुरुष थे आदि बातों के विषय में कुछ पता नहीं। यह कहावत अवश्य चली आती है कि यह शाही खेल है और बादशाह इसे खेला करते थे। चलो, जो कुछ भी पता है उससे इसकी महत्ता बढ़ती ही है। शतरंज को शाही खेल का श्रेय प्राप्त होना कोई साधारण बात नहीं। पहिले समय में तो सचमुच के बादशाह इस खेल को खेलने थे, परन्तु अब भी इसके खिलाड़ी रुपये पैसे की दृष्टि से चाहे कंगाल भले ही हों, परन्तु मन के वह निसंदेह बादशाह ही होते हैं। शतरंज बिछ जाने पर तो खिलाड़ी के आगे चाहे संसार भर का बादशाह ही क्यों न आकर खड़ा हो जाय, वह उसकी ओर फूटी आँख से भी नहीं देखना चाहेगा। वह तो सभी बादशाहों को अपने लकड़ी के बादशाह के सामने तुच्छ समझता है और उसी की रक्षा में अपना सब कुछ अर्पण करने को प्रस्तुत रहता है। खिलाड़ी समझता है कि "बादशाह दुनियाँ के मेरे मौहरे शतरंज के" इससे अधिक वह किसी को कुछ नहीं समझता। कवि केवल यह कामना करके ही रह जाता है कि—

"दे मस्त फकीरी वह मुझको शाहों की भी परवाह न हो,
मैं भी न किसी का शाह बनूँ, मेरा भी कोई शाह न हो।'

किन्तु शतरंज का खिलाड़ी अपने खेल में इस फकीरी को सहज ही प्राप्त कर लेता है

शतरंज खेलने वाले महान व्यक्ति—प्राचीन काल में तो शतरंज को बादशाह खेला ही करते थे, इसे तो सभी

स्वीकार करते हैं, परन्तु आधुनिक समय के महापुरुषों ने भी इसे अपना प्रिय खेल बनाया है, इस बात का इतिहास साक्षी है। फ्रांस के महापुरुष नैपौलियन महान् का शतरंज प्रिय खेल था। जब कभी वह अपनी राजनैतिक समस्याओं से थक जाता था तो या तो ज्यामिति की समस्यायें हल करता था, अथवा शतरंज खेलता था। इगलैण्ड से सेन्टहेलेना आजीवन कारावास भोगने के निमित्त जहाज में जाते हुए वह शतरंज खेलता रहा था। जिस व्यक्ति ने युद्ध क्षेत्र में लाखों व्यक्तियों का संहार कर दिया था और जिसके सामने हर समय घोड़े, सैनिक एवं युद्ध सामग्री ही रहती थी उसका मनोरंजन निर्वासन काल में शतरंज के अलावा दूसरा खेल कर भी कैसे सकता था ? साम्यवाद का जन्मदाता, अर्थशास्त्र का महान् पंडित, 'दास कैपीटल' असाधारण पुस्तक का लेखक और साम्यवादियों का पूज्य देवता कार्लमार्क्स भी शतरंज के अतिरिक्त दूसरा खेल नहीं खेलता था। जिस व्यक्ति का एक एक क्षण बहुमूल्य था और जिसने अपनी पुस्तक को लिखने में अपने जीवन के चालीस वर्ष सुबह से शाम तक बृटिश म्यूजियम के पुस्तकालय में व्यतीत कर दिये थे, वह भी शतरंज के लिये समय निकाल लेता था और जब एक बार उस पर जम जाता था तो पुस्तकों की बातें, मजदूरों की बातें और फ्रांस की क्रांति की बातें सब पीछे की दुनिया में रह जाती थीं। उसकी दासी खाना लिये रात-रात भर बैठी प्रतीक्षा करती रहती थी परन्तु मार्क्स शतरंज से उठ ही नहीं पाता था। रूस में साम्यवाद का जन्मदाता और वर्त्तमान रूप के एक मात्र तानाशाह स्टालिन का गुरू लेनिन भी शतरंज का शौकीन था। जिस प्रकार वह अपने राजनैतिक जीवन में विपक्षियों को हराने में प्रसन्नता अनुभव करता था उसी

प्रकार उसे शतरंज में कई-कई खिलाड़ियों को एक साथ मात देने में आनन्द आता था। सभी इतिहास प्रेमियों को पता है कि लेनिन कितने राजनैतिक कार्यों में हर समय व्यस्त रहता था यहाँ तक कि उसे कई-कई दिन तक कपड़े बदलने का अवकाश नहीं मिलता था परन्तु शतरंज की अवहेलना वह नहीं कर सकता था। लेनिन जैसे शुष्क, नीरस, भाव-शून्य एवं कार्यव्यस्त व्यक्ति के विचारों पर जब शतरंज अधिकार कर लेती थी तो साधारण व्यक्ति इसकी मस्ती से मतवाले हो जायँ, इसमें आश्चर्य ही क्या ?

उपसंहार—वर्त्तमान महापुरुष और राजनीतिज्ञ शतरंज खेलते हैं या नहीं, इसकी विशेष जानकारी नहीं। परन्तु यह बात तो स्पष्ट है कि जो राजनीतिज्ञ शतरंज नहीं खेलते यदि उन्हें एक बार इसका चसका लग जायगा तो फिर उसे छोड़ नहीं सकते। राजनीति के क्षेत्र में जो घात प्रति घात और दाँव पेच वे नहीं सीख पाते, उन्हें शतरंज से सहज ही सीख जायँगे। शतरंज के खिलाड़ी राजनीतिज्ञ से कोई शतरंजवाला राजनीतिज्ञ भले ही टक्कर ले सके, दूसरे की तो हिम्मत ही क्या जो उसके सामने टिक जाय।

शतरंज की प्रशंसा में पृष्ठ पर पृष्ठ भरते चले जाइये, परन्तु उसके गुणों का पार न मिलेगा। जिस प्रकार उसके खेलने वाला कभी नहीं अघाता, उसी प्रकार प्रशंसा करने वाला कभी रुक नहीं सकता। अतः हम भी इसके वर्णन को अधूरा ही छोड़ते हैं।

———

गौतम बुद्ध

जन्म— गौतम बुद्ध, कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के पुत्र थे। इनकी माता मायादेवी, वर्त्तमान नेपाल राज्य के लुम्बिनी नामक स्थान पर भगवान् बुद्ध को पुत्र रूप में प्राप्त कर, एक सप्ताह के भीतर ही इस संसार को छोड़ गईं। नव जात सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का पालन पोषण उनकी विमाता गौतमी देवी ने किया। ज्योतिषियों ने राजा शुद्धोदन से भविष्य वाणी की थी कि राजकुमार सिद्धार्थ या तो गृह त्याग करके परम वीतराग कोई विख्यात महात्मा होंगे, अथवा चक्रवर्ती सम्राट होंगे। सिद्धार्थ का उन्नत भाल, विशालवक्ष,आजानु लम्बित बाहुएँ, दीर्घ कर्ण, उनके महापुरुष होने के लक्षणों को प्रकट करते थे। राजकुमार ने शीघ्र ही सारी विद्यायें सीखलीं, और युद्ध विद्या में भी अपूर्व निपुणता प्राप्त करली।

बाल्यावस्था—महाराज शुद्धोदन अहर्निश इसी चिन्ता में व्यग्र रहते थे कि कहीं राजकुमार की रुचि वैराग्य की ओर न हो जाय। उन्होंने महल में, नाना प्रकार के आमोद-प्रमोदों के साधनों की व्यवस्था करदी थी। नाच, रंग, आनन्द, उल्लास, विलास और भोग का ही वातावरण उनके चहुँ ओर बना रहता था। परम सुन्दरी यशोधरा से, सिद्धार्थ का पाणिग्रहण संस्कार भी कर दिया गया था। कुछ समय में यशोधरा की कुक्षि से एक पुत्र रत्न का भी जन्म हुआ, जिसका नाम पश्चात् में राहुल पड़ा।

हर समय आमोद-प्रमोद में रहते हुए भी सिद्धार्थ का चित्त अन्यत्र ही रहता था। स्वभाव से वह एकान्त प्रिय और

चिन्तन शील थे। एकान्त में बैठे-बैठे वह घन्टों विचार में तल्लीन रहा करते थे। कोई अज्ञात शक्ति उनके हृदय में एक अस्पष्ट इंगित करती जान पड़ती थी। सिद्धार्थ, अधिकाधिक विचार मग्न रहने लगे। उन्होंने मनोरंजन के हेतु अपने पिता से नगर-भ्रमण की आज्ञा चाही। राजा ने पहिले से ही ऐसी व्यवस्था करदी थी कि उनके भ्रमण-पथ में कोई अप्रिय दृश्य राजकुमार को दिखलाई न पड़े। संयोग-वश प्रथम बार ही नगर-भ्रमण में ही राजकुमार की दृष्टि एक बूढ़े व्यक्ति पर जा पड़ी जिसके गाल बैठ गये थे, कमर झुक गई थी और केश श्वेत हो गये थे। बूढ़ा लकड़ी के सहारे अपने क्षीण शरीर को लेकर चल रहा था। सिद्धार्थ इस दृश्य को देख कर स्तम्भित हो गये। उन्होंने सोचा क्या एक दिन मुझे भी ऐसी ही अवस्था में पहुँचाना होगा? क्या, नव विकसित पुष्प की भाँति मेरी प्रिय पत्नी भी इसी दशा को प्राप्त होगी? घर आकर, कवि के शब्दों में राजकुमार सिद्धार्थ इस प्रकार अपने अन्तः करण से पूछने लगे:—

"देखी मैंने आज जरा,
हो जावेगी क्या ऐसी ही, मेरी यशोधरा?
हाय! मिलेगा मिट्टी में यह वर्ण सुवर्ण खरा,
धिक है मेरे जीवित मेरा चेतन जाय चरा।"

राजकुमार दूसरी बार नगर-भ्रमण को निकले। इस बार उन्होंने एक रोगी व्यक्ति को असहाय अवस्था में देखा। रोगी व्यक्ति, अपनी यातना से कराह रहा था। इस दृश्य ने भी सिद्धार्थ को बहुत प्रभावित किया! तीसरी बार की नगर-यात्रा में उन्होंने एक शव को देखा जिसे कुछ लोग अपने कन्धों पर उठाये ले जा रहे थे। राजकुमार सिद्धार्थ ने शव ले जाने वालों से पूछा कि यह क्या है? उन्होंने उत्तर

दिया कि यह एक व्यक्ति का निर्जीव शरीर है जिसे जलाने के लिये वे ले जा रहे हैं। राजकुमार को यह भी ज्ञात हो गया कि एक दिन सभी को इसी प्रकार जाना पड़ता है। घर आकर सिद्धार्थ बहुत ही उदास हो गये। यही सोचने लगे कि एक दिन सभी व्यक्ति वृद्ध होते हैं, सभी रोगी होते हैं और सभी मरते हैं। यह भोग विलास का जीवन थोडे समय के लिये ही है और अन्त में मनुष्य को दुख उठाना ही पड़ता है। क्या मनुष्य दुख से मुक्ति नहीं पा सकता ? क्या वह सदैव के लिये सुखी नहीं हो सकता ? संसार से कष्ट, प्रतारण और दुख का आवरण किस प्रकार हटाया जा सकता है ? आदि प्रश्नों में राजकुमार का सुकुमार हृदय प्रतिक्षण उलझा रहने लगा। उन्होंने गृह-त्याग करके, अपने प्रश्नों का उत्तर पाने और किसी परिणाम तक पहुँचने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

वैराग्य—एक रात्रि को जब कि उनकी पत्नी यशोधरा अपने नव जात शिशु को लिये, निद्रादेवी की गोद में पड़ी थी, सिद्धार्थ उसके निकट पहुँचे। उन्होंने पत्नी और पुत्र को एक बार धीरे से स्पर्श किया और भवन से बाहर हो गये। अपने घोड़े छन्दक पर आरूढ़ होकर उन्होंने अपने एक सेवक को साथ लिया और अनोमा नदी के तट पर पहुँचे। यहाँ आकर उन्होंने अपने सभी आभूषण, उतार दिये। सेवक को वस्त्र, अश्व और आभूषण देकर, उसे नगर को लौटा दिया और स्वयं अकेले ही पैदल-यात्रा पर निकल पड़े।

राजकुमार ने अनेक प्रसिद्ध महात्माओं के आश्रम में निवास किया और उनका सत्संग किया। परन्तु कहीं भी उनकी जिज्ञासा तृप्त नहीं हुई। अन्त में उन्होंने शरीर को कष्ट देकर कठोर तपस्या करने का निश्चय किया। तपस्या

करते-करते, उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया और शक्ति क्षीण हो गई। तब अपने शरीर को कष्ट देना व्यर्थ समझ कर, सुजाता का पायस ग्रहण करके उन्होंने बोधिवृक्ष के तले आसन लगाया। इसी वृक्ष के नीचे उन्हें बोध हुआ और ज्ञान-ज्योति ने उनके हृदय को प्रकाशित किया तभी से वह 'बुद्ध' हुए।

ज्ञान होने पर भगवान् गौतम बुद्ध काशी के निकट सारनाथ आगये और यहीं पर प्रथम बार चतुर्वर्गीय भिक्षुओं को अपना उपदेश दिया। आगे चलकर उन्होंने अनेक तपस्वियों, विद्वानों और राजाओं को दीक्षा दी। दीक्षित भिक्षुओं के लिये गौतम बुद्ध ने बिहारों की स्थापना की। भिक्षुओं के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध ने स्त्रियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया। स्त्रियों के लिये प्रथम विहारों की व्यवस्था करदी गई।

घूमते घामते, गौतम बुद्ध कपिलवस्तु भी पहुँचे। उनकी पत्नी यशोधरा ने भी उनसे दीक्षा ग्रहण की। पुत्र राहुल भी सद्धर्म में दीक्षित हुआ। राजकुल के प्रायः सभी स्त्री पुरुषों और महाराज शुद्धोदन ने भी कहा :—

बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।
बुद्धं शरणं गच्छामि॥

बौद्ध-धर्म—भगवान् बुद्ध ने जिस तत्वज्ञान का उपदेश दिया, वह चार आर्य सत्य के नाम से जाना जाता है। ये चारों सत्य इस प्रकार हैं। १—सब कुछ क्षणिक और दुःख रूप है। २—संसार के क्षणिक पदार्थों की तृष्णा ही दुःखों का कारण है। ३—उपादान सहित तृष्णा का नाश होने से दुःखों का नाश होता है। ४—हृदय से अहंभाव, रागद्वेष और

वासना की सर्वथा निवृत्ति होने पर निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

भगवान् बुद्ध ने साधना के आठ अङ्ग बतलाये हैं। वे आर्य अष्टांग मार्ग कहे जाते हैं। सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविक, सम्यक व्यायाम (उद्योग), सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि ही अष्टांग मार्ग है।

बौद्ध-धर्म का प्रचार - भगवान बुद्ध ने अनेक स्थानों में भ्रमण करके अपने धर्म का प्रचार किया। अनेक राजा, महाराजा उनके धर्म में आकर मिल गये। बुद्ध ने ४५ वर्ष तक धर्म प्रचार करके, ८० वर्ष की अवस्था में ईसवी सन् से ५३५ वर्ष पूर्व, गोरखपुर के निकट कुशीनगर में निर्वाण प्राप्त किया और इस संसार को छोड़ दिया। उनके शरीर की भस्म के लिये अनेक स्थानों से माँगें आने लगीं। सभी उसका स्मारक बनवाना चाहते थे। भस्म आठ भागों में बाँटदी गई। देश के भिन्न भिन्न आठ स्थानों में भस्म की स्थापना होकर उस पर स्मारक बने।

भगवान गौतमबुद्ध ने जिस जीव-दया और अहिंसा धर्म का प्रचार किया था, उनके अनुयायी बहुत से भिक्षुओं और राजाओं ने उसका विस्तृत प्रचार किया। राजकुमार और सुकुमार राज-कुमारियाँ राज-वैभव त्याग कर बौद्ध धर्म में सम्मिलित हो गये। उन्होंने दूर-दूर देशों में जाकर बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। सिंहल, जावा, सुमात्रा, चीन तथा जापान तक बौद्ध-भिक्षु गये। ब्रह्मदेश, श्याम आदि देशों में भी भिक्षु लोग प्रचार करने गये। उक्त सभी देशों ने बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों को आदरपूर्वक सुना और उन्हें अपनालिया। आज भी चीन, जापान ब्रह्मदेश और लंका में बौद्ध-धर्म माना जा रहा है।

उपसंहार—इतिहास अब भी साक्षी है कि ईसामसीह ने अहिंसा की शिक्षा भारतवर्ष में आकर बौद्ध-महाविद्यालय से ही प्राप्त की थी। बुद्ध-धर्म के कारण, भारत में तथा भारत से बाहर भी भारतीय धर्म-भाव, साहित्य एवं संस्कृति का बहुत कुछ विस्तार हुआ। मूर्त्तियों और ग्रन्थों के रूप में भारतीय संस्कृति सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री अब भी भारतवर्ष के बाहर इन देशों में है।

———

अपने विद्यालय के एक आदर्श अध्यापक का चित्रण

उ० प्र० १९४५, १९४७

अध्यापक का महत्व—किसी भी देश की उन्नति, वहाँ के शिक्षित व्यक्तियों के ऊपर निर्भर करती है। जिस देश में सुशिक्षित लोगों की संख्या जितनी ही अधिक होगी, उसकी उन्नति का मार्ग उतना ही अधिक प्रशस्त होगा। शिक्षितों का अर्थ केवल पढ़े लिखे और उच्च परीक्षाओं के प्रमाण-पत्र पाये हुए लोगों से ही नहीं है। पढ़ने-लिखने की योग्यता के साथ जीवनोपयोगी गुणों को विकसित करना भी शिक्षा का मुख्य अंग है और विद्यार्थियों में इन गुणों को समाविष्ट कराना अध्यापकों का ही कार्य है। देश के लोगों को सुशिक्षित नागरिक बनाने का एक-मात्र उत्तरदायित्व वहाँ के अध्यापकों का ही है। एक आदर्श अध्यापक पर विद्यार्थियों का भविष्य बहुत कुछ निर्भर करता है। इसलिये हमारे धर्म में गुरु की

महिमा सबसे अधिक मानी गई है, यहाँ तक कि ईश्वर से भी अधिक श्रेय गुरु को ही दिया गया है।

"गुरु, गोविंद दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय
बलिहारी बा गुरु की जिन गोविंद दियो बताय" (कबीर)

विद्यालय के आदर्श अध्यापक—हमारे विद्यालय के ऐसे ही एक आदर्श गुरु (अध्यापक) शर्मा जी हैं। शर्मा जी में वे सभी गुण वर्त्तमान हैं जिनके, विद्यार्थियों में विकसित होने की आवश्यकता रहती है। शर्मा जी के व्यक्तित्व की छाप, उनके विद्यार्थियों पर न्यूनाधिक रूप में पड़े बिना नहीं रहती और जो विद्यार्थी उनके सम्पर्क में एक बार आगये हैं, वे उन्हें कभी भूल नहीं सके हैं।

विद्वता — विद्यार्थियों पर सब से अधिक प्रभाव अध्यापक की विद्वत्ता और उसकी अध्यापन-कुशलता का पड़ता है। जिस अध्यापक में यह गुण होता है, उसके अन्य गुणों का प्रभाव भी विद्यार्थियों पर पड़ता है। शर्मा जी विद्वान तो हैं ही, साथ ही अपनी विद्वत्ता को विद्यार्थियों तक पहुँचाने में वे बड़े सिद्ध-हस्त हैं। कठिन से कठिन विषय को वे सुगम बना कर उसमें रोचकता ला देते हैं। गणित जैसे शुष्क विषय को विद्यार्थी, शर्मा जी की कक्षा में बड़े मनोरंजन के साथ पढ़ते हैं। शर्मा जी का समझाने का ढंग ऐसा है कि मंद-बुद्धि वाले विद्यार्थी भी उनकी बतलाई गई बातों को तुरन्त हृदयंगम कर लेते हैं और उन्हें फिर कभी नहीं भूलते। जिस समय शर्मा जी इतिहास पढ़ाते होते हैं उस समय उनकी ओजस्विनी वाणी और भाव-मुद्रा देखने ही योग्य होती है। वे कभी भी इतिहास को पुस्तकों की सहायता से नहीं पढ़ाते अपितु कहानी की भाँति विद्यार्थियों को सुनाते हैं। इतिहास की शुष्क घटनाओं को भी वे अपनी वाक्-पटुता से रोचक बना

देते हैं। जिन विषयों को छात्र एक बार शर्मा जी से पढ़ लेते हैं, उन्हें फिर वे कभी नहीं पूछते। यही कारण है कि शर्मा जी विद्यार्थियों में बड़े प्रिय बने हुए हैं और उनकी प्रत्येक बात उनके लिये अनुकरणीय हो गई है।

अध्ययन-प्रेमी—शर्मा जी को स्वयं भी अध्ययन करने का व्यसन है। जब कभी विद्यार्थी उनके घर जाते हैं, तभी उन्हें पुस्तकों के अवलोकन में व्यस्त देखते हैं। राजनीति, धर्म, दर्शन, इतिहास आदि सभी गंभीर विषयों की ओर उनकी रुचि है और इन विषयों पर वे समय-समय पर समाचार-पत्रों में लेख भी लिखते रहते हैं। शर्मा जी का अपना एक अच्छा पुस्तकालय है जिससे वे विद्यार्थियों को भी पुस्तकें देते रहते हैं। दूसरे अध्यापकों में भी शर्मा जी की विद्वत्ता की धाक जमी हुई है। नगर के सार्वजनिक कार्यों में भी वे भाग लेते रहते हैं और प्रायः सभाओं में उन्हें भाषण देने के लिये आमंत्रित किया जाता है। शर्मा जी की ओजस्वनी वक्तृता का जनता पर भी प्रभाव पड़ता है। अपने गंभीर ज्ञान और विद्वत्ता का समावेश, शर्मा जी, व्यावहारिक बातों में इतनी कुशलता से कर सकते हैं, इसका पता उनके सार्वजनिक भाषणों को सुनकर ही चलता है।

शर्मा जी जितने विद्वान और अनेक विषयों के पंडित हैं, उतने ही नम्र हैं। इतने विद्वान व्यक्ति का इस प्रकार नम्र और अहंकार-विहीन होना एक आश्चर्य की बात है। वे विनय की तो मानो साक्षात् मूर्त्ति ही हैं। घमंड नाम की वस्तु तो उन्हें छू तक नहीं गई है। किसी ने भी आज तक उन्हें अपनी प्रशंसा करते हुए नहीं सुना। अपनी तुच्छता और ज्ञान की न्यूनता की बातें तो वे अक्सर किया करते हैं। 'विनय विद्या का भूषण है' वाली उक्ति को शर्मा जी अपने

जीवन में पूर्णत: चरितार्थ करते हैं। विद्यार्थियों से बातें करते समय वे कभी नहीं ऊबते, उन्हें कभी झुँझलाहट नहीं आती। विद्यालय में, मार्ग में, घर पर किसी भी समय विद्यार्थी शर्मा जी से बातें करने लगते हैं और वे उनकी बातों का उत्तर बड़ी शांति और धैर्य से देते हैं। जब तक शर्मा जी अपने छात्रों की शंकाओं का पूर्ण समाधान नहीं कर देते तब तक उन्हें चैन नहीं मिलता।

विद्यार्थियों के साथ व्यवहार—शर्मा जी बड़े हँसमुख और विनोद प्रिय हैं। वार्त्तालाप में उनके अधरों से हास्य की स्मित-रेखा कभी भी विलुप्त होते नहीं देखी। उनकी मंद मुस्कराहट, उनके स्वभाव का मुख्य अंग बन गई है। शर्माजी को क्रोध तो कभी आता ही नहीं और यदि आता भी होगा तो वे उसे कभी प्रकट नहीं होने देते। किसी विद्यार्थी से जब वे बहुत असंतुष्ट हो जाते हैं तो वे क्षण भर को ही चुप होकर फिर अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आ जाते हैं। भूल पर दंड देने के सिद्धान्त पर शर्मा जी को तनिक भी विश्वास नहीं। उनका कथन है कि दण्ड से तो अपराधी की मनोवृत्ति में कोई परिवर्त्तन नहीं होता प्रत्युत वह और भी अधिक अपराध-प्रिय बन जाता है। अत: शर्मा जी कभी भी अपने विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड नहीं देते। अपराधी विद्यार्थी के साथ वे ऐसी दुख-पूर्ण मुद्रा में बातें करते हैं कि विद्यार्थी स्वयं ही अपने कृत्य पर लज्जित हो जाता है और क्षमा-याचना करने लगता है। शर्मा जी तब बड़े ही स्नेह से उस छात्र की पीठ पर हाथ रख देते हैं और उसकी प्रशंसा करने लगते हैं। अपराधी-विद्यार्थी गद्‌गद् हो जाता है और फिर कभी भी वह अपराध करने का साहस नहीं करता। शर्मा जी अपनी विनोद-प्रियता के लिये भी सारे विद्यालय में

विख्यात हैं। पढ़ाते पढ़ाते ही वे ऐसी अनूठी उक्तियाँ झाड़ देते हैं जिनसे समूची कक्षा में हँसी का अट्टहास होने लगता है। शर्मा जी व्यंग करने में भी पटु हैं। उनके व्यंग, मीठी भाषा में बड़े ही तीक्ष्ण होते हैं परन्तु उनकी तीक्ष्णता ऐसी होती है जो हृदय के मैल को साफ कर देती है, घाव थोड़ा सा भी नहीं करती।

खेल-प्रियता—शर्मा जी का स्वास्थ्य भी बहुत उत्तम है। उनकी मुखाकृति से उनके स्वास्थ्य की आभा प्रस्फुटित होती है और दर्शक प्रथम दृष्टि में ही उनसे प्रभावित हो जाता है। शर्मा जी के अच्छे स्वास्थ्य का कारण, उनकी व्यायाम-प्रियता है। वे नियमित रूप से अपने घर पर तो व्यायाम करते ही हैं, साथ ही प्रतिदिन विद्यार्थियों के साथ स्कूल की क्रीड़ा- भूमि में हाकी, फुटबाल, क्रिकेट अथवा वालीबौल कोई न कोई खेल अवश्य खेलते हैं। खेलते समय वें अपनी कार्य-विधि से विद्यार्थियों को यह तनिक भी अनुभव नहीं होने देते कि वे अध्यापक हैं। अपने दाँव के लिये शर्मा जी साधारण छात्रों की ही भाँति झगड़ने लगते हैं और उस समय उनकी भाव-भंगिमा देखने ही योग्य होती है। शर्मा जी की खेल-प्रियता के कारण ही उन्हें स्कूल के खेल-कूद की प्रबन्धता प्राप्त हो गई है।

सहृदयता—शर्मा जी बड़े दयालु हैं और निर्धन एवं असहायों के प्रति उनके हृदय में करुणा का श्रोत उमड़ पड़ता है। जब कभी वे देखते हैं कि किसी छात्र पर पुस्तके नहीं हैं और उसका कारण उस छात्र की शोचनीय आर्थिक अवस्था है तो तुरन्त ही अपने पास से रुपये देकर वे पुस्तकों का प्रबन्ध कर देते हैं। प्रति वर्ष दो तीन छात्रों को शर्मा जी छात्र-वृत्ति अपने वेतन से ही प्रदान करते रहते हैं। छात्रों के

अतिरिक्त अन्य निर्धन और निर्बल लोगों की सहायता, शर्मा जी यथा-शक्ति करते रहते हैं।

सदाचारी—सबसे अधिक, सदाचार और उच्च विचारों शर्मा जी ज़ोर देते हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में वे सदाचार के नियमों का पूर्णरूप से पालन करते हैं। चारित्रिक गुणों के विकास को ही वे शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समझते हैं। झूठ, विश्वासघात, कृतघ्नता, अशिष्टता एवं अपव्ययता आदि दुर्गुणों को वे बहुत ही बुरा समझते हैं। परोपकार- सहन शीलता, विश्वसता, सत्य परायणता एवं विनम्रता आदि उच्च गुणों का शर्मा जी के चरित्र में पूरा समावेश हुआ है। वे जितने ही नम्र और दयालु हैं, अत्याचारी के प्रति उतने ही कठोर हो जाते हैं। अपनी भूल को वे तुरन्त ही स्वीकार कर लेते हैं और उस पर अत्यन्त खेद प्रकट करने लगते हैं परन्तु जिस बात को वे ठीक और उचित समझते हैं उसके पालन में बड़ी दृढ़ता से काम लेते हैं। विद्यालय में जब कभी उच्च अधिकारी निरीक्षणार्थ आते हैं तो उस अवसर पर शर्मा जी बड़े ही निर्भीक और प्रसन्न-चित्त दिखलाई देते हैं जब कि अन्य अध्यापक सतर्क और भयभीत हो जाते हैं।

उपसंहार—संक्षेप में कहा जा सकता है कि शर्मा जी एक आदर्श अध्यापक हैं। अपने गुणों के कारण वे विद्यालय के छात्रों और अध्यापकों को ही प्रिय नहीं, अपितु समाज भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। शर्मा जी जैसे अध्यापकों की संरक्षणता में ही विद्यार्थियों से सच्चे नागरिक-समाज का निर्माण हो सकता है और देश कल्याण-पथ पर अग्रसर हो सकता है।

छत्रपति शिवाजी

प्रस्तावना—"मेरा शत्रु महान सेनानी है। मैंने उन्नीस वर्ष तक उसके विरुद्ध युद्ध का संचालन किया, परन्तु उसकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।" ये हैं वे शब्द जो प्रबल प्रतापी मुगल सम्राट औरंगजेब ने छत्रपति शिवाजी के विषय में कहे थे।

भारतवर्ष में मुगल बादशाहों का आधिपत्य पूर्ण रूप से स्थापित हो गया था और देश में सर्वत्र औरङ्गजेब की विजय दुन्दुभी बज उठी थी। इस धर्मान्ध बादशाह के अत्याचारों से प्रजा में त्राहि-त्राहि होने लगी थी। हिन्दुओं के तीर्थ-स्थान और मन्दिर तुड़वा कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाई जा रही थीं। हिन्दुओं के साथ होने वाले अत्याचार अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गये थे। समूची जाति में निराशा की भावना व्याप्त हो रही थी और हिन्दू जाति के उद्धार का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता था। ऐसे ही समय में हिन्दू-कुल-भूषण महाराष्ट्र केशरी छत्रपति शिवाजी का अवतार हुआ।

जन्म—राजपूतों का रक्त और वह भी श्रेष्ठ मानधनी सीसोदिया कुल का—जहाँ भी उसने अपने को प्रकट किया, उसका शौर्य अदम्य रहा है। महाराज सज्जनसिंह इसी कुल के जिन्होंने वि० संवत् १३७६ में चितौड़ छोड़ कर दक्षिण भारत को अपना निवास-गृह बनाया। भोंसला जाति प्रारम्भ में राणा कही जाती थी और वह महाराज सज्जनसिंह की ही सन्तति है। इसी कुल में महारानी जीजाबाई की कुक्षि से छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के पिता, शाहजी बड़े पराक्रमी और साहसी मरहठा सरदार थे।

शिक्षा—माता जीजाबाई परम विदुषी और धार्मिक

थी। वह अपने पुत्र को बाल्यावस्था में भी शौर्य और वीरता की कहानियाँ सुनाया करती थी। रामायण और महाभारत की कथा उन्होंने बचपन में ही शिवाजी को सुनादी थीं। जीजाबाई की परम अभिलाषा थी कि उनका पुत्र अत्यन्त पराक्रमी और यशस्वी बने। माता की शिक्षा-दीक्षा, बालक शिवाजी के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो गई और उनके बाल्य हृदय में भावी महत्ता का बीजारोपण हो गया।

बाल्यावस्था—जन्म से ही शूर वृत्ति शिवाजी 'मावली' बालकों के साथ टुकड़ियाँ बना कर युद्ध के खेल खेला करते थे। सच है, "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' माता जीजाबाई जैसी वीर-माता ने उन्हें पौराणिक-गाथाओं से प्रोत्साहित किया। दादाजी कोंड़देव जैसे परम नीतिज्ञ एवं शूरमा के संरक्षण उन्होंने शस्त्र-विद्या सीखी और समर्थ स्वामी रामदास जैसे दैवी महापुरुष के करों की अभय छाया उन्हें प्राप्त हो गई। देश पर, धर्म पर, गायों पर, ब्राह्मणों पर, मन्दिरों पर, सती नारियों पर और असहाय जनता पर जो अत्याचार निरंकुश यवन-शासकों द्वारा हो रहे थे, शिवाजी का वीर हृदय उस आर्त्त-क्रन्दन से परिप्लावित हो उठा। युवा होते-होते उन्होंने अपने बचपन के मावली शूरों को एकता के सूत्र में पिरोया, उनका नेतृत्व किया और धर्म, राष्ट्र, एवं संस्कृति के परित्राण के लिये 'भवानी' (शिवाजी की तलवार) की शरण ली।

प्रारम्भिक जीवन—शिवाजी के पिता शाहजी, बीजापुर नवाब के दरबारी थे। किन्तु शिवाजी, किसी के सम्मुख अपना मस्तक झुकायें, यह संभव नहीं था। उन्होंने बीजापुर के दुर्गों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिये और एक-एक करके उन पर अधिकार करते गये। बीजापुर के नवाब ने शाहजी को कैद

कर लिया परन्तु परम राजनीतिज्ञ शिवाजी ने अपने पिता की मुक्ति के लिये नवाब से कुछ न कह, सीधे दिल्ली से पत्र-व्यवहार किया। फलस्वरूप बादशाह शाहजहाँ ने शाहजी को अपना सामन्त घोषित कर दिया। बीजापुर के नवाब को दिल्ली की आज्ञा के सम्मुख नत-मस्तक होना पड़ा और शाहजी कैद से छोड़ दिये गये।

शिवाजी और अफ़जलखाँ—अब बीजापुर के नवाब आदिलशाह को शिवाजी का भय हो गया। उसने अपने कुशल सेनापति अफजलखाँ को शिवाजी से लड़ने के लिये भेजा। अफजलखाँ बड़ा ही धूर्त्त व्यक्ति था। उसने शिवाजी के पास प्रस्ताव भेजा कि वह उनसे मित्रता करना चाहता है और एकान्त में मिलना भी चाहता है। चतुर शिवाजी को उसका अभिप्राय; समझने में देर न लगी। वे तुरन्त ही निर्दिष्ट स्थान पर अफजलखाँ से मिलने पहुँचे। खान ने शिवाजी से मिलते ही उस पर तलवार का बार किया। शिवाजी तो इसके लिये पहिले ही से तैयार थे। उन्होंने प्रहार को बचा कर अपनी बघनख उसकी काँख में चुभो दी। खान आहत होकर धराशायी हो गया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। छिपे हुए मरहठा वीर, यवनों की सेना पर टूट पड़े और बात की बात में उन्हें तितर-बितर कर दिया। बीजापुर नवाब संधि करने के लिये विवस हो गया और उसने शिवाजी द्वारा जीते गये दुर्गों पर से अपना अधिका उठा लिया।

उत्थान—शिवाजी की विजय-दुन्दुभी से दिल्ली नरेश औरङ्गजेब भी अब चौकन्ना हुआ। उसने बड़ी भारी सेना के साथ शायस्तखाँ को शिवाजी से लड़ने भेजा। शायस्तखाँ, पूना में आकर ठहरा। कुशल मरहठों ने मुगलों की छावनी में

ही घुस कर आक्रमण कर दिया। शायस्ताखाँ अपनी चार उँगलियाँ कटा कर भाग गया। अब औरङ्गजेब ने राजकुमार मुअज्ज़म और जयसिंह को शिवाजी से लड़ने को भेजा। जयसिंह के परामर्श से शिवाजी औरङ्गजेब से मिलने दिल्ली पहुँचे। बादशाह ने दरबार में इनका अपमान किया और कैद कर लिया। अपनी चतुराई से शिवाजी, मिठाई की टोकनी में बैठ कर कैद से बाहर निकल आये और घूमते-फिरते दक्षिण पहुँच गये। औरङ्गजेब ने फिर जयसिंह को इनसे लड़ने भेजा परन्तु इस बार उसे मुँह की खानी पड़ी। अन्त में औरङ्गजेब को निराश होकर चुप बैठना पड़ा। शिवाजी ने अहमदनगर से भी चौथ लेना प्रारम्भ कर दिया। सन् १६७० में इन्होंने खानदेश पर भी आक्रमण किया।

अब शिवाजी ने अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया और सन् १६७४ ई० में बड़ी धूमधाम से रायगढ़ में इनका राज्याभिषेक संस्कार हो गया। शिवाजी युद्ध-कला में तो प्रवीण थे ही, परन्तु शासन-कार्य में भी इन्होंने अपनी कुशलता सिद्ध कर दी। सारी भूमि की नाप कराई गई और उपज के अनुपात से लगान बाँध दिया। सारे महाराष्ट्र में इन्होंने दुर्ग बनवाये। शिवाजी अपने आठ मन्त्रियों की सहायता से शासन-प्रबन्ध करते थे। यह मंत्रिमंडल 'अष्टप्रधानमंत्री-मंडल' के नाम से प्रसिद्ध था। शिवाजी के शासन में प्रजा पूर्ण सुखी और सन्तुष्ट थी।

चरित्र—शिवाजी बड़े ही चरित्रवान और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। वह सभी धर्मों का आदर करते थे। युद्ध में अपहृत स्त्रियों के सतीत्व की पूरी तरह रक्षा की जाती थी। खलीफाँ लिखते हैं कि, "शिवाजी ने कभी किसी मस्जिद, कुरान अथवा किसी धर्म को मानने वाली स्त्री को हानि नहीं

पहुँचाई। यदि उनके हाथ कोई कुरान की प्रति लग जाती तो वे तुरन्त ही उसे आदर-पूर्वक किसी मुसलमान को दे देते थे। शिवाजी महाराज के उद्योग को साम्प्रदायिक या संकीर्ण मानने वालों को एक मुसलमान का ही यह मत पढ़ना चाहिये। यह भी किवदन्ती है कि किसी युद्ध में बन्दी करके एक परम सुन्दरी यवन राजकुमारी को सैनिकों ने शिवाजी के सम्मुख उपस्थित किया। महाराज कुछ क्षणों तक उसकी ओर देख कर बोले, "यदि मेरी माता ऐसी सुन्दरी होती तो मैं इतना कुरूप न होता।" फिर अपने सैनिकों को फटकार बतलाते हुए उन्होंने आज्ञा दी कि वे उस यवन राजकुमारी को सुरक्षित रूप से उसके घर पहुँचा दें। पर-स्त्री मात्र में मातृ-भाव का यह उज्ज्वल आदर्श शिवाजी के वीरोचित हृदय के अनुकूल ही था। शिवाजी कट्टर हिन्दू थे और गो तथा ब्राह्मणों के सेवक थे। उन्होंने तो अत्याचार के विरुद्ध तलवार उठाई थी, और जीवन-पर्यन्त अपने इस आदर्श पर दृढ़ बने रहे। राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा में उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।

मृत्यु—५३ वर्ष की अवस्था में, रायगढ़-दुर्ग में ही हिन्दू-पति शिवाजी ने अपना शरीर छोड़ा। अपने साम्राज्य को उन्होंने कभी अपना नहीं समझा। उसे तो उन्होंने अपने गुरु समर्थ स्वामी रामदास के चरणों पर चढ़ा दिया था और समर्थ के साम्राज्य की ही प्रतीक है वह गैरिक ध्वजा। शिवाजी ने मरहठा जाति को तो संगठित किया ही था, परन्तु हिन्दू-राष्ट्र का निर्माण भी उन्हीं के हाथ से हुआ। वीरता और धर्म का ऐसा सुन्दर सामंजस्य शिवाजी के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष में नहीं मिलता। हिन्दू-जाति कभी भी छत्रपति शिवाजी से उऋण नहीं हो सकती, उसे सदैव ही

अपने इतिहास में इस महापुरुष के नाम पर गर्व रहेगा।

राखी हिन्दु आनी, हिन्दु आन को तिलक राख्यो,
स्मृति पुरान राख्यो, वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो गुन राख्यो गुनी में॥
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देश-देश कीरति बखानी तव सुनी में।
साह के सपूत शिवराज! समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि के, दिवाल राखी दुनी मै॥



मोहनदास करमचन्द गांधी

प्रस्तावना—संसार ने समय समय पर महान पुरुष उत्पन्न किये हैं। प्रत्येक राष्ट्र ने अपने सन्त, अपने शहीद, अपने वीर, अपने कवि, अपने योद्धा और अपने राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये हैं। भारतवर्ष ने भी महात्मा गांधी के रूप में एक ऐसे महापुरुष को जन्म दिया था, जो सन्त, शहीद, वीर, योद्धा, कवि और राजनीतिज्ञ सबका एक अद्‌भुत समन्वय था। महात्मा गांधी संसार के ऐसे महापुरुषों मे से ह जिनकी प्रशंसा सब करते हैं परन्तु समझते बहुत कम हैं। उन्होंने राजनीति में नैतिकता और धर्म की प्रतिष्ठा की है और राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये राजनीतिक क्षेत्र में भौतिक शक्तियों के साथ युद्ध करने के लिये आश्चर्यजनक नैतिक हथियारों का आविष्कार किया है। जहाँ एक ओर उन्होंने राजनीति की प्रतिष्ठा करके उसे आध्यात्मिक बना डाला है वहाँ दूसरी ओर धर्म में भी राजनीति का पुट देकर

धर्म को अनेक ऐसे पहलुओं से लौकिक बना दिया है, जिन्हें पुराण प्रिय हिन्दू एक मात्र धार्मिक रूप देते थे।

जन्म, शिक्षा और विवाह—महात्मा गांधी का जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ को पोरबन्दर नाम की एक छोटी सी रियासत में (काठियावाड़) हुआ था। गांधी जी के पिता करमचन्द गांधी राजकोट राज्य के दीवान थे अतः आपका बाल्यकाल राजकोट में ही व्यतीत हुआ था। राजकोट में ही गांधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा हुई। आपकी माता का नाम पुतलीबाई था। गाँधी जी को अपनी माता से बहुत स्नेह था इसीलिये पुतलीबाई की धार्मिक वृत्ति का इनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा। उस समय की प्रथा के अनुसार गांधी जी का विवाह तेरह वर्ष की ही आयु में श्रीमती कस्तूरबाई के साथ होगया।

सन् १८८७ में गाँधीजी ने राजकोट से ही मैट्रिक की परीक्षा पास की और सन १८८८ में बैरिस्ट्री पास करने के लिये इङ्गलैण्ड की यात्रा की। इङ्गलैण्ड जाने से पूर्व आपने अपनी माता के सम्मुख मांस, मदिरा और व्यभिचार से बचे रहने के लिये प्रतिज्ञा की थी और उस प्रतिज्ञा को आपने आजीवन निभाया। इस काल में माता पुतलीबाई का देहान्त होगया और इससे गांधीजी के हृदय को गहरी ठेस पहुँची। अपने अध्ययन काल में ही आपने धार्मिक ग्रन्थों का अच्छा अनुशीलन कर लिया था इससे ईश्वर और धर्म में आपकी अगाध श्रद्धा होगई थी। भारत लौटने पर गांधीजी ने पहिले बम्बई में और फिर राजकोट में वकालत आरम्भ की। इस पेशे में झूठ का आश्रय लिये बिना काम नहीं चलता था अतः शीघ्र ही आपको वकालत से घृणा होगई।

दक्षिण अफ्रीका की यात्रा—सन् १८९३ में एक मुकदमे

की पैरवी के सिलसिले में गांधीजी को दक्षिणी अफ्रीका जाने का अवसर मिला। यहाँ आकर गांधीजी ने काले मनुष्यों के प्रति गोरों के अत्याचार देखे। भारतवासियों के प्रति गोरों के ऐसे व्यवहार से आपका हृदय दुख से भर उठा। गांधीजी ने वहाँ इस सिद्धान्त पर आग्रह किया कि मनुष्य मनुष्य समान हैं और जाति या वर्ण के आधार पर किया गया कृत्रिम भेद न्याय विरुद्ध और अनैतिक है। अपने इस प्रयत्न में गाँधीजी को घोर अपमान और यातनाये सहनी पड़ीं। इस काम में जिन विरोधी शक्तियों का उन्हें सामना करना पड़ा, उनके बल की ठीक कल्पना होने पर ही हम समझ सकते हैं कि उनका उक्त कार्य उनकी सब सफलताओं में सर्वोपरि था। गांधीजी के प्रयत्न स्वरूप दक्षिणी अफ्रीका के भारतवासियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ और वहाँ की सरकार गांधीजी की बातें मान लेने के लिये झुक गई।

भारतवर्ष में आगमन—सन् १८९६ में गांधीजी भारत आये। उस समय के प्रसिद्ध अँग्रेजी पत्रों ने आपके आन्दोलन का खूब प्रचार किया। बम्बई, मद्रास आदि बड़े-बड़े नगरों में आपका बहुत स्वागत हुआ। उसी वर्ष के अन्त में डरबन निवासियों की प्रार्थना पर आपको फिर अफ्रीका जाना पड़ा। इस बार परिवार सहित गांधीजी अफ्रीका पहुँचे। अफ्रीका आकर आपको पुनः भारतीयों के व्यापार विरोधी बिल के विरोध में आन्दोलन करना पड़ा। सन् १८९७ से १८९९ तक बोअर युद्ध में आपने स्वयं-सेवकों के एक दल के सहित सेवा-सुश्रूषा का कार्य बड़ी तन्मयता और साहस के साथ किया। इसी समय भारत में घोर दुर्भिक्ष आ पड़ा। भारतवासियों की सहातार्थ गांधीजी ने अफ्रीका से एक भारी धनराशि इकट्ठी करके भारत भेजी।

कार्य और सत्याग्रह—सन् १६१४ में अफ्रीका में भारतियों की स्थिति को सुधार करके, स्वास्थ्य-लाभ के लिये गांधीजी बम्बई लौट आये। इस समय प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। आपने उस युद्ध में भारत सरकार को स्वयं-सेवकों से सहायता पहुँचाई और स्वयं भी सेवा का कार्य किया। सन् १६१६ में महायुद्ध समाप्त हो गया। अभी तक आपको अँग्रेजों की 'न्याय-प्रियता में विश्वास था और यह आशा कर रहे थे कि युद्ध की समाप्ति पर भारतवासियों को कुछ अधिकार मिल जायंगे। परन्तु रौलट एक्ट जब बन कर भारत पर लागू हुआ तो सारी जनता में क्षोभ की लहर दौड़ गई और उसके परिणाम स्वरूप जनता में जाग्रति की भावना व्याप्त होगई। गांधीजी ने बम्बई में एक केन्द्रीय सत्याग्रह समिति की स्थापना की। समिति ने ६ अप्रैल को सत्याग्रह-दिवस मनाने की घोषणा की। प्रत्येक स्थान पर सत्याग्रह दिवस के विरोध में पुलिस ने निर्दयता पूर्वक भीड़ पर लाठियाँ चलाईं। पत्रकार और नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इसी समय जलियांवाला बाग का गोलीकांड हुआ जिसमें सैकड़ों स्त्री पुरुषों की निर्मम हत्या हुई। बड़े-बड़े नगरों में जुलूसों पर गोरी पल्टनों ने गोलियों की बौछार की। चोरी-चौरा गाँव में २२ सिपाही जीवित जला दिये गये। गांधीजी ने आन्दोलन बन्द कर दिया। परन्तु सरकार ने आपको गिरफ्तार कर लिया और ६ वर्ष के कारावास का दण्ड दे दिया।

सन् १६२० में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया और देश व्यापी हड़ताल की घोषणा हुई। इन्हीं दिनों लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो गया और सारे देश का उत्तरदायित्व गाँधीजी के कन्धों पर आ गया। गांधीजी ने अब अहिंसात्मक

आन्दोलन को खूब बढ़ाया और सारे देश में जाग्रति की लहर दौड़ गई। सरकार भयभीत होगई और १६२२ में पुनः गांधीजी को ६ मास का कारावास भोगना पड़ा।

सन् १६२४ में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों को शान्त करने के उद्देश्य से गांधीजी ने २१ दिनों का उपवास किया। आपके इस कार्य से देश की प्रसुप्त जनता में फिर से चेतना लौट आई। १६२८ में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन गांधीजी ने प्रारम्भ किया। कलकत्ता में ढेरों विदेशी वस्त्र जला दिये गये।

गांधीजी की डांडी-यात्रा—१२ मार्च सन् १६३० की गांधीजी की डांडी-यात्रा भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध घटनाओं में से एक है। सत्याग्रहियों के एक दल के साथ आपने नमक कानून तोड़ने के लिये डांडी को प्रस्थान किया। आपको ५ मई सन् १६३० को गिरफ्तार करके यरवदा जेल में राजबन्दी बना लिया गया। ५ मई सन् १६३१ में गांधीजी से सरकार की सन्धि होगई और १६३२ में द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस में कांग्रेस के प्रतिनिधि बन कर आप लन्दन गये। लन्दन जाने से समस्या का कोई हल नहीं निकला अतः भारत लौट आने पर आपको पुनः आन्दोलन करना पड़ा। आपको फिर जेल भेज दिया गया। इस बार सवर्ण हिन्दुओं और दलितों में एकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से गांधीजी ने जेल में आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। परिणामतः अँग्रेजों ने हरिजनों को हिन्दुओं से प्रथक मान कर जो विशेषाधिकार दे दिये थे, वे 'पूना पैक्ट' द्वारा रद्द कर दिये गये।

१६३४ की २१ मार्च को डा० अन्सारी के सभापतित्व में दिल्ली कांग्रेसी नेताओं की एक सभा हुई। इसमें धारा सभाओं

में चुनाव लड़कर कौंसिलों में जाने की माँग महा समिति के सम्मुख उपस्थित करना निर्धारित हुई। इसी सभा में गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन को छोड़कर कार्य-समिति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। अब आप 'ग्रामोद्योग-संघ', 'हरिजन-सेवा-संघ' आदि कार्यों में अपना समय बिताने लगे।

भारत छोड़ो प्रस्ताव—१६३७ के प्रान्तीय चुनावों में कांग्रेस की विजय हुई परन्तु द्वितीय महायुद्ध के समय अंग्रेजों से युद्ध विषयक नीति में मतभेद होने के कारण कांग्रेस मंत्रियों ने त्याग-पत्र दे दिये। १६४२ में क्रिप्स-योजना से जब समस्या का कोई हल नहीं निकला तो ८ अगस्त १६४१ को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकृत किया। सन् १६४२ की क्रान्ति भारतवर्ष की एक ऐतिहासिक घटना है। गाँधीजी पकड़ कर पुनः जेल भेज दिये गये। जेल में ही माता कस्तूरबा की मृत्यु होगई।

अन्तर्कालीन सरकार का निर्माण—लगभग एक वर्ष पश्चात् ६ मई सन् १६४४ को सरकार ने गांधीजी को जेल से मुक्त कर दिया। देश के अन्य नेता भी छोड़ दिये गये। अब गांधीजी की आवाज से बृटिश सरकार भयभीत होगई थी। इङ्गलैण्ड से पैथिक लारेन्स का मिशन भारत आया और एक अन्तर्कालीन सरकार का निर्माण हुआ। १५ अगस्त सन् १६४७ को भारत स्वतंत्र हो गया और गांधीजी की दीर्घ तपस्या सफल होगई।

मृत्यु—महात्मा गांधीजी अब दहली में रहकर हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों को शान्त करने का प्रयत्न करने लगे। इसी समय ३० जनवरी सन् १६४८ की सन्ध्या को एक क्रूर भारत-वासी ने गांधीजी पर प्रार्थना के समय पिस्तौल से तीन गोलियाँ चलादीं। गाँधीजी के मुख से केवल दो वार 'हेराम'

'हेराम' शब्द निकला और वे सदैव के लिये इस संसार को छोड़कर चले गये। सारे संसार में गांधीजी की मृत्यु से हाहाकार मच गया। उनकी यह मृत्यु केवल भारतवर्ष के ही लिये नहीं, अपितु समूचे संसार के लिये दुखदायी हुई। विश्व के कोने-कोने से शोक के समाचार आये और श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। कदाचित ही किसी महापुरुष की मृत्यु का शोक इस प्रकार मनाया गया होगा।

गांधीजी की शिक्षा—गांधीजी का पूरा जीवन ही हमारे लिये एक पाठ है। नित्य प्रति की साधारण वातों में भी हम उनके जीवन से शिक्षा ले सकते हैं। अपने एक निजी और विलक्षण रूप में अंधकार से प्रकाश में आने का मार्ग उन्होंने मनुष्य जाति को दिखाया है। उन्होंने भारत की ऐसी सेवायें की हैं जिनके कारण वे भारतवासियों की कृतज्ञता और श्रद्धाञ्जलि के भाजन हैं। उन्होंने पद-दलितों और नीच माने जाने वाली जातियों का उद्धार किया है। गरीवी और वेकारी को दूर करने में उन्होंने भरसक प्रयत्न किया है। संसार के सामने अहिंसा का अमोघ अस्त्र रक्खा है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि आज केवल स्वेच्छापूर्ण कष्ट-सहन के वल पर किये गये सामूहिक नैतिक प्रतिरोध अर्थात् सत्याग्रह द्वारा युद्ध की हिंसा पर भी विजय हो सकती है। उन्होंने भारत की जनता को वन्दूकों और मशीनगनों की शक्ति नहीं दी जिसका प्रयोग उसके दमनकारी करते थे, वल्कि वह शक्ति दी जो जनता के प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित है, जो युद्धों से पीड़ित इस संसार को अभी प्राप्त करनी है और जिसका यदि पूर्णरूप से प्रयोग किया जाय तो उससे युद्धों की संभावना सदैव के लिये चली जायगी। अहिंसात्मक उपायों की शक्ति जीवन की, उस आत्मा की शक्ति है जिसकी पिपासा

कभी शान्त नहीं होगी। महात्मा जी की शिक्षा से भारत की आत्मा मुक्त हो गई है। नीच और नगण्य दासों की स्थिति से भारतवासी अब बहुत ऊँचे उठ गये हैं।

आज के संसार में महात्मा गांधी हमारे बीच अहिंसा की शक्ति के जीवित उपासक के रूप में एक प्रखर ज्योति के समान जगमगाते रहेंगे।



पं० जवाहरलाल नेहरू

"बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-सेवा में उनके आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय का एक विशिष्ट गुण है। फिर जहाँ उनमें एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहाँ एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। निःसन्देह वह अपनी परिस्थिति से बहुत आगे की बात सोचने वाले उग्रवादी हैं।....वह स्फटिक मणि की भाँति पवित्र हैं। उनकी सत्य शीलता सन्देह से परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।" ये हैं वे शब्द जो महात्मा गांधी ने सन् १६२६ में पं० जवाहरलाल नेहरू के विषय में कहे थे।

जन्म और बाल्यावस्था—जवाहरलाल का जन्म प्रयाग के मीरगंज मुहल्ले में १४ नवम्बर सन् १८८६ को हुआ था। आप के पिता पं० मोतीलाल नेहरू प्रयाग के प्रसिद्ध वकील थे। जवाहरलाल की माता का नाम स्वरूपरानी था। माँ बाप का इकलौता बेटा होने के कारण, सारे घर का लाढ प्यार इन्हीं के ऊपर था। पं० मोतीलाल खूब कमाते थे और जी

खोलकर खर्च करते थे। जवाहरलाल की शिक्षा दीक्षा १२ वर्ष की अवस्था तक घर पर ही हुई। आप के शिक्षक श्री एफ० टी० ब्रुक्स का प्रभाव आप के जीवन पर बहुत गहरा पड़ा।

शिक्षा—१९०४ में आप अपने पिता के साथ इगलैण्ड गये और वहाँ हैरो कालेज में आपको भर्त्ती करा दिया गया। १९०७ में आप ने उक्त कालेज से एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की। सन् १९१० में आप ने ट्रिनिटी काजले से बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। १९१२ में बार एट-लॉ की डिग्री प्राप्त करके आप भारतवर्ष लौट आये और प्रयाग में वकालत करने लगे। १९१६ में आपका श्रीजवाहरलाल कौल की सुपुत्री कमला से विवाह हो गया। १९१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १९२४ में श्रीमती कमला नेहरू के गर्भ से एक पुत्र भी हुआ परन्तु जन्म के तीसरे दिन ही वह जाता रहा।

राजनीति में प्रवेश—कुछ समय तक पिता के साथ आप वकालत करते रहे परन्तु इस काम में आप का मन न लग सका। निर्धनता और पराधीनता के पाटों में निरन्तर पिसते हुए दुखी भारत की अवस्था को देख कर आपका हृदय विद्रोह से भर उठा। राजसी ठाटबाटों को त्याग करके आप ने देश-सेवा का व्रत ले लिया। राजनैतिक घटनाओं का आप गंभीरता पूर्वक अध्ययन करने लगे। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह संग्राम के लिये आप ने पचास हजार रुपया एकत्रित किया। १९१५ में आप बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में भी सम्मिलित हुए। इसी वर्ष प्रयाग में प्रेस कानून के विरोध में आप ने सर्व प्रथम सार्वजनिक भाषण दिया। जलियाँन वाले बाग के हत्याकाँड से आपका खून

खौल उठा था और आप अंग्रेजों के कट्टर शत्रु हो गये।

सन् १९२० में जब आप मंसूरी गये तो वहाँ अफगानी राजदूतों से मिलने के लिये आप पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस आज्ञा को आपने नहीं माना और अन्त में सरकार को अपनी आज्ञा वापस लेनी पड़ी।

राजनीति में सक्रिय भाग—१९२१ में गांधी जी द्वारा छेड़े गये असहयोग आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया। इसमें आपको ६ महीने के कारावास का दण्ड दिया गया परन्तु तीन महीने पश्चात् ही आप जेल से मुक्त कर दिये गये। विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देने के अपराध में आपको १९२२ में फिर ६ माह तक जेल में रहना पड़ा। जेल से छूटने के पश्चात् आप अकाली आन्दोलन देखने नाभा गये और वहाँ आप को गिरफ्तार कर लिया गया। परन्तु अदालत से आप छोड़ दिये गये।

सन् १९२२ में सर्वसम्मति से आपको प्रयाग म्युनिसिपलटी का अध्यक्ष चुना गया। आप ने ६ वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। इनके प्रबन्ध काल में नगर की बहुत उन्नति हुई और सरकार ने भी आपकी योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। १९२६ में आपकी जीवन सहचरी कमला नेहरू के बीमार पड़ने पर आपको स्विटजरलैण्ड जाना पड़ा। वहाँ आप १९२७ में भारतीय राष्ट्र-सभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य विरोधी संघ के जेनेवा अधिवेशन में सम्मिलित हुए और उसके पाँच अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष चुने गये। तभी आप सोवियट सरकार के निमंत्रण पर रूस भी गये। जिनेवा में दो वर्ष रह कर सम्पूर्ण यूरोप का भ्रमण करते हुए आप भारत लौट आये।

भारत में आकर आपने राजनैतिक कार्यों में फिर

सक्रिय भाग लेना आरम्भ कर दिया। १९२८ में आप अखिल भारतीयट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति चुने गये। १९२९ में हिन्दुस्तानी सेवा दल और प्रथम प्रजातंत्र परिषद् के अध्यक्ष हुए। रूस से लौट कर आपके विचारों का झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और भारत में आकर आपके विचार क्रमशः उग्र होते गये। आप मजदूरों के बहुत पक्षपाती हो गये थे और इसीलिये १९२९ में मजदूर कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में आपको अध्यक्ष चुना गया। इसी वर्ष आप लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और तब से आप बराबर कांग्रेस के सर्वश्रेष्ठ नेता समझे जा रहे हैं। १९३० और १९३१ में आपको फिर जेल जाना पड़ा। आपके पिता; पं० मोतीलाल नेहरू की दशा चिन्ताजनक हो जाने के कारण आपको जेल से छोड़ दिया गया। ६ फरवरी सन् १९३१ को आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। १९३२ में और फिर १९३४ में आपको जेल जाना पड़ा।

कमला नेहरू का स्वर्गवास—इस बीच आपको पारिवारिक कष्टों का भी सामना करना पड़ा। श्रीमती कमला नेहरू का स्वास्थ्य गिरता चला जा रहा था। उन्हें जर्मनी ले जाया गया और वहीं २६ फरवरी सन् १९३६ को उनका स्वर्गवास हो गया। इस घटना के कुछ समय पश्चात् ही आपकी माता स्वरूप रानी का भी देहान्त हो गया। इन घटनाओं से भी आप विचलित नहीं हुए और अपने को पूर्णतः आपने देश-सेवा में अर्पण कर दिया।

१९३६ में आप लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और दूसरे वर्ष फैजपुर में भी आप ही अध्यक्ष चुने गये। इस समय आपने सारे भारतवर्ष का दौरा किया और गाँव गाँव में जाकर भाषण दिये। जनता में राष्ट्रीय जागरण के चिह्न प्रकट

होने लगे ।

१६३८ में दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। १६४० में भारतीय रक्षा विधान के अनुसार आपको जेल में बन्द कर दिया गया। इसी बीच सर स्टैफर्ड क्रिप्स एक योजना लेकर भारतवर्ष आये। इस योजना को कांग्रेस ने ठुकरा दिया। सन् १६४२ में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकृत किया। १६४२ की क्रान्ति भारत की एक ऐतिहासिक घटना है। इस क्रान्ति से अँग्रेजी सरकार आतंकित हो गई। क्रान्ति से पूर्व ही पं० जवाहरलाल को अन्य नेताओं के साथ जेल में भेज दिया गया। १६४५ में आपको छोड़ दिया गया और सन् १६४६ में आप पुनः कांग्रेस के प्रधान चुन लिये गये।

प्रधान मंत्रित्व—१६४५ में लार्ड वेविल की और १६४६ में 'केबिनेट मिशन' की योजनाओं पर आप कांग्रेस की ओर से बातचीत करते रहे। अन्तरकालीन सरकार के बनने पर आप उसके प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री बने। १५ अगस्त १६४७ को भारत पूर्ण स्वतंत्र हो गया और तब भी आप प्रधानमंत्री नियुक्त हुये। तब से अब उसी पद पर कुशलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

लोक प्रियता—महात्मा गांधी के पश्चात् जवाहरलाल ही देश के सबसे अधिक लोक प्रिय नेता हैं। आप जहाँ जाते हैं वहीं सहस्रों नर नारियों के झुण्ड आपके दर्शनों को खिंचे चले आते हैं। विदेशी राष्ट्र भी आपके पांडित्य का लोहा मानते हैं। अभी हाल में जब आप अमेरिका गये थे तो वहाँ की जनता ने जितना स्वागत आपका किया था, उतना कदाचित ही किसी विदेशी का हुआ होगा। ६० वर्ष की अवस्था होते हुए भी आप नवयुवकों का सा उत्साह रखते हैं और उन के हृदय सम्राट बने हुए हैं। देश-प्रेम की उमंग!

आपकी रग-रग में भरी हुई है।

चरित्र—साहस और निडरता आपके प्रधान गुण हैं। पिछले २६ वर्षों का भारतीय इतिहास कितना संकटपूर्ण रहा है। कठिन परिस्थितियाँ और बाधायें पग-पग पर आती रही हैं। बड़े-बड़े साहसी युवकों के दिल ठंडे पड़ गये, परन्तु जवाहरलाल हँसते हँसते सब बाधाओं को पार कर गये। अनेकों बार आपको जेल जाना पड़ा परन्तु जेल से छूटते ही आपने दूने उत्साह से अपना कार्य आरम्भ किया। आपके साहसिक कार्यों को देख कर ही कुछ लोग आपको उतावला बताते हैं। परन्तु इस उतावले पन में एक वीर योद्धा की तेजी है। आपको क्रोध आता अवश्य है, परन्तु शीघ्र ही आप उस पर नियंत्रण कर लेते हैं और कभी भी उसे सीमा से बाहर नहीं जाने देते।

आपका दूसरा मुख्य गुण, आपकी अपने लक्ष्य के प्रति तन्मयता है। एक बार स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ने पर फिर आप उससे विमुख नहीं हुए। कई बार निराश कर देने वाली परिस्थितियाँ आईं, कांग्रेस का भविष्य अंधकारमय हो गया, देश की स्वाधीनता का स्वप्न धूमिल पड़ गया। परन्तु जवाहरलाल के हृदय में कभी भी शिथिलता नहीं आई। अपने लक्ष्य के प्रति वह असाधारण तन्मयता के साथ अग्रसर होते रहे हैं।

जहाँ आप एक बहुत बड़े राजनीतिज्ञ हैं, वहाँ अच्छे साहित्यकार भी हैं। आपकी पुस्तकों में एक साहित्यकार की प्रतिमा स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। सच तो यह है कि एक विचारक और दार्शनिक के तत्व उनमें अधिक पाये जाते हैं, परिस्थितियों ने उन्हें राजनीति में ला दिया है। आपकी पुस्तकों में 'मेरी कहानी' 'संसार के इतिहास की एक झलक,'

तथा 'भारत की खोज' अधिक प्रसिद्ध हैं।

भारतवर्ष का सौभाग्य है कि महात्मा गांधी के वाद भी उसे जवाहरलाल जैसा नेता मिल गया है।

गोस्वामी तुलसीदास

प्रस्तावना—गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सर्व-श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। जितना प्रचार आपके 'राम चरित मानस' का भारतवर्ष के उत्तारखण्ड में हुआ है उतना अन्य किसी ग्रन्थ का कहीं भी आज तक नहीं हुआ। क्या राजा और क्या रंक, क्या पापी और क्या धर्मात्मा सभी में उनके मानस का पूर्ण प्रचार है। बड़े बड़े विद्वान् से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक रामचरित मानस से अपने हृदय की तृप्ति करते हैं और अपनी-अपनी विद्या बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन करते हैं। इस ग्रंथ ने भारतवर्ष का महान उपकार किया है। रीति, नीति, आचरण, व्यवहार और लोकाचार आदि सब बातों में मानो तुलसीदास ही हिन्दुओं के मार्ग-प्रदर्शक हैं। ग्रामीण और अनपढ़ जनता में भी बात-बात पर 'मानस' की चौपाइयों के उदाहरण दिये जाते हैं और जो कुछ तुलसीदास जी ने किसी विषय पर कह दिया है, उसे ही जनता ने प्रमाण मान लिया है।

भाषा के कवि, तुलसीदास जी के समय तक प्रायः लोभ-वश अपने ग्रन्थों में अपना और अपने आश्रयदाता का जीवन वृतान्त लिखा करते थे, परन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने ऐसा नहीं किया है। कहीं-कहीं उन्होंने अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के उद्देश्य से ही अपने चरित्र का आभास दिया है।

अतः तुलसीदास के जीवन चरित्र सम्बन्धी घटनाओं के लिये दूसरे ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। इस विषय में सबसे अधिक विस्तृत विवरण देने वाला ग्रन्थ बेणीमाधवदास का गोसाईं-चरित है जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने अपने शिवसिंह सरोज में किया है। दूसरा ग्रन्थ नाभाजी के भक्तमाल पर प्रियादास जी की टीका है।

जन्म एवं शिक्षा—गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म-समय अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। जनश्रुति के आधार पर पंडित रामगुलाम द्विवेदी ने उनका जन्म संवत् १५८९ माना है। डाक्टर ग्रिअर्सन और मिश्रबन्धुओं ने इसी जन्म संवत् को मान लिया है। शिवसिंह सरोज में लिखा है कि वे संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। बाबा वेनीमाधवदास के मूल गोसाईं-चरित के अनुसार उनका जन्म संवत् १५५४ के श्रावण मास की शुक्ला सप्तमी को हुआ था। गोस्वामी जी के जन्म-स्थान के विषय में भी विद्वान एक मत नहीं। कोई हस्तिनापुर, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर और कोई बाँदा जिले में राजापुर को इनका जन्म-स्थान बतलाता है। परन्तु पंडित रामगुलाम के मतानुसार राजापुर ही इनका जन्म-स्थान है। अधिकांश विद्वानों ने राजापुर को ही तुलसीदास जी का जन्म-स्थान माना है। किन्तु अब बहुत से लोग सोरों को उनका जन्म-स्थान मानने के पक्ष में होते जाते हैं।

तुलसीदास जी ने कहीं भी अपने पिता का नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिखा है। जनता में यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था और माता का नाम हुलसी था। तुलसीदास ने भी माता के रूप में हुलसी के नाम का उल्लेख किया है। अभुक्त मूल में जन्म होने के

कारण इनके माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। विनय पत्रिका में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं—"राम को गुलाम नाम राम बोला राम राख्यो।" इससे स्पष्ट है कि इनका एक नाम राम बोला था। तुलसी-चरित्र में लिखा है कि इनके गुरु तुलसीराम थे जिन्होंने इनका नाम तुलसी रक्खा। अपनी दीनता प्रकट करने के लिये पीछे ये अपने को तुलसीदास कहने लगे। गोस्वामी जी ने अपने गुरु का नाम कहीं नहीं दिया है। रामायण के आदि में मंगला चरण में यह सोरठा अवश्य लिखा है:—

वंदौं गुरु पद, कंज, कृपा-सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह-तम-पुंज, जासु वचन रवि-कर,निकर॥

इसी "नर-रूप-हरि" से इनके गुरु नरहरिदास होने की कल्पना लोगों ने की है। बाबा बैनी माधवदास ने इनके गुरु का नाम नर हर्यानन्द दिया है।

विवाह और गृहस्थ जीवन—प्रसिद्ध है कि तुलसीदासजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था जिससे तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था। वह बाल्यावस्था में ही मर गया। कहा जाता है कि इनको अपनी स्त्री से विशेष अनुराग था। एक दिन इनकी स्त्री इनके बिना कहे नैहर चली गई। गोस्वामीजी पत्नी वियोग न सह सके और तुरन्त ही अपनी स्त्री के पास पहुँचे। स्त्री ने लज्जावश ये दोहे कहे:—

"लाज न लागत आपकों, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि-चरम-मय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तौ भव भीति॥"

यह बात गोस्वामी जी को चुभ गई और वे स्त्री को छोड़ कर सीधे काशी चले आये और विरक्त हो गये।

वैराग्य—अब गोस्वामी जी देशाटन को निकल पड़े। प्रयाग राज में पहुँच कर उन्होंने संन्यास ले लिया। यहाँ से वे अयोध्या पहुँचे और वहाँ चार महीने रहे। अयोध्या से जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और द्वारका होते हुए बदरीधाम पधारे। यहाँ से मानसरोवर और वहाँ से रूपाचल और नीलाचल पर्वत होते हुए पुनः मानसरोवर लौट आये। इस प्रकार गोस्वामी जी ने कैलाश की यात्रा पूरी की। इस यात्रा से लौट कर वे भववन में जाकर रहने लगे। यहाँ से चित्रकूट गये और वहाँ बहुत वर्षों तक रहे। इसी स्थान पर उनसे मिलने सूरदास जी आये। तदनन्तर गोस्वामी जी पुनः अयोध्या गये और वहाँ से काशी आये। यहाँ उन्होंने राम कथा लिखने का संकल्प किया। अयोध्या लौट कर उन्होंने राम-चरित-मानस का लिखना आरम्भ किया। संवत् १६३१ में प्रारम्भ करके, २ वर्ष ७ महीने में इस ग्रन्थ को पूरा किया। इसके पश्चात् वे पुनः काशी गये और वहीं रहने का विचार करने लगे। यहाँ कुछ दिन ठहर कर पुनः अयोध्या, शूकर क्षेत्र, लखनऊ, बिठूर आदि स्थानों में होकर नैमिषारण्य में पहुँचे। वहाँ से संवत् १६४६ में वे वृन्दावन चले गये। वहाँ से अनेक स्थानों में घूमते हुए वे पुनः काशी चले आये और अन्तकाल तक काशी ही मे रहे। गोस्वामीजी की मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है :—

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

बाबा बैनी माधवदास द्वारा लिखित दोहा, तुलसीदासजी की मृत्यु के सम्बन्ध में इस प्रकार है :—

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यौ शरीर॥

यही तिथि, उनके परलोकवास की ठीक जान पड़ती है।

गोस्वामी जी के ग्रन्थ—गोस्वामी तुलसीदास जी के बनाये हुए १४ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—१—गीतावली, २—कृष्ण गीतावली, ३—कवित्त रामायण, ४—राम चरित मानस, ५—विनय पत्रिका, ६—दोहावली, ७ सतसई, ८—रामलला नहछू, ९—जानकी मंगल, १०—पार्वती मंगल, ११—बरवै रामायण, १२—हनुमान् बाहुक, १३—वैराग्य संदीपनी, १४—रामाज्ञा।

राम चरित मानस—उपर्युक्त सभी ग्रंथों में राम चरित मानस बे जोड़ है। इसी के कारण गोस्वामी तुलसीदास इतने अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। यह ग्रन्थ हिन्दी कविता का मुकुट है। इसकी भाषा सीधी-सादी है, कविता का प्रवाह एक शान्त गम्भीर नदी के समान चला जाता है। चरित्रों का चित्रण ऐसा सुन्दर हुआ है कि सभी पात्र चलते-फिरते और इसी संसार के जान पड़ते हैं। यद्यपि सभी चरित्र आदर्श रूप में उपस्थित किये गये हैं तथापि कहीं भी वे अस्वाभाविक और अमानवीय नहीं प्रतीत होते। राम-चरित-मानस की लोक प्रियता के दो मुख्य कारण हैं—एक तो उसके चरित्रों का चित्रण और दूसरा उसमें दिया हुआ मानवीय मनोविकारों का स्पष्टीकरण। गोस्वामी जी के सभी चरित्र स्वर्ग के निवासी नहीं, अपितु इसी पृथिवी के रहने वाले हैं। उनके कार्य, उनके चरित्र, उनकी भावनाएँ, उनकी वासनाएँ, उनके विचार, उनके व्यवहार आदि सभी मानवीय हैं। वे सामाजिक मर्यादा के अनन्य भक्त और संरक्षक हैं। काव्य की दृष्टि से भी राम-चरित-मानस आदर्श है। इसमे प्राय: सभी श्रेष्ठ अलंकारों का समावेश है। केशवदास की भाँति तुलसीदास जी ने पांडित्य-प्रदर्शन के लिये अलंकारों का

प्रयोग नहीं किया है, अपितु भाव को प्रदीप्त करने के लिये ही उनका प्रयोग हुआ है। तुलसीदास जी की भावुकता हृदय-स्पर्शी है। राम-वन-गमन, चित्रकूट में राम भरत मिलाप, शवरी का आतिथ्य, लक्ष्मण के शक्ति लग जाने पर राम-विलाप इत्यादि वर्णन पढ़ने पर हृदय भर जाता है और नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। रसों से भी मानस परिपूर्ण है। शृंगार, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स, आदि सभी रसों की आनन्द वर्षा इसमें हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास जी का महत्व—गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण करके इस भाषा के साहित्य को तो गौरवान्वित किया ही परन्तु साथ ही उन्होंने बहुत-कुछ सामाजिक भलाई भी की। उन्होंने मतमतान्तरों के झगड़ों को दूर किया और समाज को एकता के सूत्र में पिरो दिया। उनकी भक्ति-भावना ने जनता के हृदय में भक्ति का सागर उमड़ा दिया। केवल सद्गुरु के प्रसाद मात्र से सिद्ध हो जाने वाले ढोंगियों की उन्होंने पोल खोल दी और समाज विलासिता, और दुराचार मिटाने के लिए आदर्श सती सीता एवं एक पत्नीव्रत राम का चरित्र चित्रण करके संसार को कल्याण का मार्ग दिखला दिया। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की स्थापना करके, उन्होंने संसार के सामने शक्ति और शील का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण उपस्थित किया है कि पढ़ने वाले या सुनने वाले के हृदय में उनके प्रति सहज ही भक्ति का स्रोत उमड़ने लगता है।

सच्चा संन्यासी वही हो सकता है जो गोस्वामी जी के बताये हुए मार्ग का अनुसरण कर सके। राजा को प्रजा की रक्षा और प्रजा को राजा की सहायता, भरत का भ्रातृ प्रेम, गुरुओं और ऋषियों की सेवा तथा सम्मान, माता-पिता की

सेवा, पति में सच्ची निष्ठा इत्यादि के अनेकों आदर्श राम-चरित-मानस में भरे पड़े हैं जिनका अनुकरण करके हम अपना जीवन आदर्श बना सकते हैं।

सारांश यह है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा भाषियों और समूची हिन्दू जनता का जो उपकार किया है, उससे कदापि मुक्त नहीं हुआ जा सकता। राम-चरित-मानस के रूप में जो अमूल्य रत्न उन्होंने हमें दिया है, उसकी ज्योति से सदैव ही संसार जगमगाता रहेगा। किसी कवि ने कहा है:—

हिन्दी, हिन्दू हिन्द नाम जब लौं जग राजै,
तब लौं तुलसीदास कीर्त्ति महि मंडल गाजै।
कविता कर सम्मान जहाँ लगु यह संसारा,
ऋषिवर तव परताप, तहाँ लगु दरैन दारा॥



आधुनिक समय का सर्वश्रेष्ठ कवि

(बाबू मैथिलीशरण गुप्त)

उ० प्र० १६४७

गुप्त जी की महत्ता—यों तो आधुनिक समय में कई कवियों के नाम उच्चकोटि में आते हैं और अपने अपने क्षेत्र में सभी श्रेष्ठ हैं, परन्तु बाबू मैथिलीशरण गुप्त की सर्वतो मुखी प्रतिभा ने कविता के क्षेत्र में जो नाम कमाया है उसकी तुलना करने वाला अन्य कोई नहीं। खड़ी बोली में कविता लिखने वालों में गुप्त जी का नाम सर्व प्रथम लिया जाता है। इन्होंने ऐसे युग में खड़ी बोली में कविता करना आरम्भ

किया था जब कि इस माध्यम की सफलता में किसी को विश्वास नहीं था। ब्रजभाषा की भाँति खड़ी बोली को कविता का माध्यम बनाकर उसमें माधुर्य लाने की बात संदिग्ध समझी जाती थी। परन्तु गुप्त जी ने अपनी आरम्भिक रचनाओं, जैसे जयद्रथ-वध और भारत-भारती में ही लोगों की धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया। ज्यों-ज्यों आपकी प्रतिभा का विकास होता गया, त्यों-ही-त्यों आपकी भाषा परिमार्जित होती गई। 'साकेत, 'यशोधरा,' पंचवटी आदि पिछली रचनाओं में भाषा और कवित्त्व का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गुप्त जी ने खड़ी बोली में ही अपने काव्यों की रचना करके उनमें ब्रजभाषा के ही समान माधुर्य ला दिया है। यही नहीं. आप वर्त्तमान समय के सर्वश्रेष्ठ कवि होने के पूर्ण अधिकारी भी हैं।

कविता की विभिन्न प्रवृत्तियाँ—गुप्तजी की रचनाओं में विभिन्न प्रवृत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं और इसी लिये ये आधुनिक समय के प्रतिनिधि कवि भी कहे जाते हैं। वर्त्तमान समय की अनेक प्रगतियों में लगभग सभी के दर्शन हमें गुप्त जी की कविताओं से हो जाते हैं। भारत-भारती में, भारत के अतीत गौरव और वर्त्तमान समय की शोचनीय अवस्था का कैसा मार्मिक चित्रण किया गया है। जिस किसी विषय में आपने अपनी लेखनी उठाई है, उसी में कमाल कर दिया है। प्राचीन भारतवर्ष में गणित विद्या का कैसा विकास हो चुका था, उसका वर्णन करते हुए आप भारत-भारती में एक स्थान पर कहते हैं:

जिस अंक विद्या के विषय में वाद का मुँह बन्द है,
वह भी यहाँ के ज्ञान रवि की रश्मि एक अमन्द है,
डर कर महान कलंक से, या सत्य के आतंक से

कहते अरब वाले अभी तक हिन्दसा ही अंक से।

इसी प्रकार वर्त्तमान अधोपतन के विषय में लिखते हुये गुप्त जी कहते हैं :

"भारत तुम्हारा आज यह कैसा भयंकर वेष है,
है और सब निःशेष केवल नाम ही अवशेष है।
हा राम! हा हा कृष्ण! हा हा नाथ अब रक्षा करो,
मनुजत्व दो हमको दयामय! दुःख दुर्बलता हरो।

गुप्त जी के ऐसे वर्णनों को पढ़ कर किसका हृदय द्रवीभूत नहीं होगा? 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' में गुप्त जी वीरकाल के कवियों की परंपरा में दिखलाई देते हैं। 'साकेत' में राम काव्यकारों की श्रेणी में आ जाते हैं। 'झंकार' पुस्तक में आधुनिक छायावाद की प्रवृत्ति झलकती है।

गुप्त जी की कविताओं में समाज-सेवा और राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूट कर भरे हैं। पर गांधीवाद का पूरा प्रभाव है। 'सकेत' में वशिष्ठ जी द्वारा आपने राम से कहलवाया है:

हरो भूमि का भार भाग्य से लभ्य तुम
करो आर्यसम वन्य-चरों को सभ्य तुम।

एक स्थान पर राम स्वयं कहते हैं:

सदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

'भारत-भारती' में गुप्त जी के राष्ट्रीय-भाव की झलक निम्न-लिखित छंद में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है:

"हे ब्राह्मणो! फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो,
भूलो न अनुपम आत्म गौरव धर्म के ध्यानी बनो।
क्षत्रिय उठो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो,
निज देश को जीवन सहित तन, मन तथा धन भेंट दो।

राष्ट्रीय-भावना—गुप्त जी की काव्य रचना का उद्देश्य

केवल कलात्मक ही नहीं रहा है, अपितु सोते हुओं को जगाना और जागे हुओं में स्फूर्ति लाना भी है। इसी कारण गुप्त जी सबसे अधिक लोकप्रिय हुए हैं। आपके हृदय से भक्ति तथा राष्ट्र-प्रेम की पावन मंदाकिनी प्रवाहित होकर जनता के हृदय की कलुषित कालिमा को धोकर उन्हें राष्ट्रीयता का सच्चा संदेश सुनाती है। गुप्त जी सदैव राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होते हुए भी प्राचीनता एवं हिन्दुत्व के पोषक रहे हैं। अपनी जातीय जीवन की भावना के कारण ही आप हिन्दुओं के प्रिय कवि हैं।

धार्मिक उदारता—गुप्त जी रामोपासक वैष्णव होते हुए भी, सभी धर्मों के प्रति उदार हैं। आपने जिस प्रकार 'साकेत' में राम चरित्र का वर्णन किया है वैसे ही 'द्वापर' में कृष्ण चरित्र का गुण-गान किया है किन्तु उसमे भी उन्होंने अपनी अनन्यता अक्षुण रक्खी है। देखिये:

धनुर्बाण या वेणु लो, श्याम रूप के संग,
मुझ पर चढ़ने से रहा, राम दूसरा रंग।

'अनघ' और 'यशोधरा' में भगवान बुद्ध के चरित्र का वर्णन है। 'कावा और कर्बला' में हसन और हुसैन के बलिदान की कथा है। आपकी व्यापक राष्ट्रीयता ने सभी धर्मों को अपनी कविता का विषय बनाने के लिये प्रेरित किया है। इसी धार्मिक उदाहरण के कारण गुप्त जी देश और काल की सीमा को लाँघ गये हैं।

शैली—गुप्तजी की कविताओं में चार प्रकार की शैली की झलक दिखलाई पड़ती है—(१) प्रबन्धात्मक (२) उपदेशात्मक (३) गीतिकाव्यात्मक, (४) नाट्यात्मक,। 'अनघ', 'तिलोत्तमा' और 'चन्द्रहास' रचनायें नाट्यात्मक शैली में हुई है। नाट्यात्मक शैली में गुप्तजी को विशेष सफलता प्राप्त

नहीं हुई हैं। उपदेशात्मक शैली में कविता करते समय कहीं कहीं गुप्तजी प्रचारक के रूप में आ जाते हैं। गुप्तजी को सबसे अधिक सफलता प्रबन्धकार के रूप में हुई है। 'जयद्रथ वध' और 'पंचवटी' खण्डकाव्यों में आप जितने अधिक सफल हुए हैं उतने 'साकेत' में नहीं।

कथोपकथन—अपने काव्यों गुप्तजी कथोपकथन लाने में बहुत ही अधिक सफल हुए हैं। आपके संवाद बड़े ही सजीव और सुन्दर होते हैं। 'पंचवटी' में सूर्पणखा और लक्ष्मण के संवाद 'साकेत' में लक्ष्मण और उर्मिला के, तथा राम और सीता के संवाद कैसे हास्यरस पूर्ण और व्यंगात्मक हैं। 'साकेत' में एक स्थान पर उर्मिला कहती है—

"उर्मिला बोली अजी तुम जग गये ?
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये ?"

इस पर तुरन्त ही लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

"मोहिनी ने मंत्र पढ़ जब से छुआ
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"

गुप्तजी के ऐसे संवादों को पढ़ कर पाठक आनंद-विभोर हो जाते हैं।

कविता-क्षेत्र—सन् १६३१ से अब तक गुप्तजी ने जिन ग्रन्थों की रचना की है उन सभी में नारी-हृदय की विह्वलता तथा उसकी करुण-पुकार है। 'नहुष' को छोड़ कर सभी ग्रन्थों में स्त्री की प्रधानता है। हिन्दी के सभी कवियों ने उर्मिला और यशोधरा के साथ एक प्रकार से बड़ा अन्याय किया है। यदि देखा जाय तो वास्तव में उर्मिला और यशोधरा का त्याग किसी से कम नहीं है। लक्ष्मण चौदह वर्ष राम के साथ वन में रहते हैं और अपनी नवविवाहिता बधू उर्मिला को इतने समय के लिये घर पर ही छोड़ जाते हैं, केवल भ्रातृ

भक्ति के ही कारण उर्मिला बड़े धैर्य से इस दीर्घकालीन विरह-संताप को झेलती हुई सासों की सेवा और गृहस्थी के धर्म का पालन करती है। परन्तु किसी भी कवि को उर्मिला का ध्यान नहीं आया है। गुप्तजी ने 'साकेत' में उर्मिला को प्रधानता दी है और उसके नारी-हृदय का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। इसी प्रकार गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा को गुप्तजी ने ही पाठकों के सामने लाकर रक्खा। स्त्रियों के प्रति गुप्तजी ने बड़ी ही उदारता से काम लिया है और उनके वास्तविक स्वरूप की झाँकी कराई है।

"अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी
अंचल में है दूध और आँखों में पानी।"

ये पंक्तियाँ गुप्तजी ही लिख सकते हैं।

साकेत में गुप्तजी की मौलिकता—'साकेत' गुप्तजी की बहुत ही सुन्दर कृति है। राम की कथा को लेकर तुलसी आदि हिन्दी के अनेकों कवियों ने कई प्रबन्ध अथवा खण्ड-काव्यों की रचना की है। गुप्तजी ने 'साकेत' में राम कथा को अपनाते हुए भी उसे नवीन रूप दे दिया है। कथानक की सृष्टि में मौलिकता नहीं,अपितु उसे नवीन दृष्टिकोण से देखने और प्रतिपादित करने में है। कथा प्राचीन रहते हुए भी गुप्तजी साकेत में कई अंशों में मौलिक कहे जा सकते हैं। प्रथम सर्ग का उर्मिला-लक्ष्मण संवाद, षष्टम सर्ग का उर्मिला-चिन्तन, नवम का उर्मिला विरह वर्णन, दशम का उर्मिला का सर्व स्मृति चित्रण, एकादश का भरत-माण्डवी संवाद आदि प्रसंग, तुलसी के पाठकों के लिये नितान्त नवीन हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीय सर्ग का कैकेयी-मन्थरा संवाद, तृतीय चतुर्थ और पंचम का राम-वनगमन प्रसंग, सप्तम का भरत का पंचवटी के लिए प्रस्थान आदि ऐसे विषय हैं जिन्हें कवि ने नये ढंग से

देखा और चित्रण किया है। इसी कारण 'साकेत' की प्रायः सारी कथा को नवीन ढंग से पाठकों के सामने रखने में गुप्तजी पूर्ण सफल हुए हैं। चरित्र-चित्रण में गुप्तजी ने कैकेयी द्वारा पश्चाताप कराके उसके चरित्र को बहुत ही ऊँचा उठा दिया है।

"युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।"

भाषा—गुप्तजी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भाव के अनुरूप शब्दों का सृजन करने में आप सिद्ध-हस्त हैं। आपकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द ही अधिक मिलते हैं और उनमें स्वाभाविकता है। व्याकरण के नियमों का आप कहीं भी उल्लंघन नहीं करते। लोकोक्तियों और मुहावरों का आप प्रयोग अधिक नहीं करते। अलंकारों का प्रयोग पांडित्य प्रदर्शन के लिये नहीं हुआ है अपितु कविता में सुन्दरता लाने के हेतु हुआ है।

हरिऔधजी और गुप्तजी—गुप्तजी के समकक्ष हरिऔध जी ही ऐसे कवि हैं जिनका आधुनिक कवियों में नाम लिया जा सकता है। दोनों ही खड़ी बोली के अमूल्य रत्न हैं। 'प्रिय-प्रवास' में सर्व प्रथम व्यवहार में आने वाली खड़ी बोली 'साकेत' में आकर मँज गई है। इसमें मधुरता और प्रवाह दोनों आ गये हैं। 'साकेत' की भाषा 'प्रिय-प्रवास' के समान उखड़ी हुई और दुरूह नहीं प्रतीत होती। गुप्तजी ने संस्कृत के छन्दों के स्थान पर हिन्दी के ही छन्दों का अधिक प्रयोग किया है परन्तु हरिऔधजी ने 'प्रिय-प्रवास' में संस्कृत के केवल वर्ण वृत्तों का ही प्रयोग हुआ है। 'प्रिय-प्रवास' में अलंकार अपेक्षाकृत कम हैं। 'साकेत' में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही पाये जाते हैं। 'साकेत' के वर्णन

'प्रिय-प्रवास' की भाँति वस्तुओं के नाम गिना देने में ही समाप्त नहीं हो जाते। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'प्रिय-प्रवास' में कला का इतना विकास नहीं हुआ है जितना 'साकेत' में। गुप्तजी का वाक्य-विन्यास, पद-लालित्य और अलंकारों का चमत्कार दर्शनीय है।

उपसंहार—गुप्तजी ने हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की है। भाव, भाषा और विचार तीनों में ही गुप्तजी का क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत है। जनता के हृदय पर सबसे अधिक अधिकार करने वाले गुप्तजी ही हैं। खड़ी बोली के आप प्रतिनिधि कवि हैं और आधुनिक कवियों में आपका स्थान सबसे ऊँचा है। हर्ष का विषय है कि अभी आप जीवित हैं और वृद्धावस्था में भी हिन्दी साहित्य को अपनी कृतियों से सम्पन्न कर रहे हैं। हिन्दू जनता और हिन्दी-साहित्य आपके चिर ऋणी रहेंगे।

एक भिक्षुक की आत्म-कहानी

वर्तमान स्थिति—लोग मुझे भिक्षुक कहते हैं। ग्रामीण और अनपढ़ जनता में, मेरा नाम भिखारी अधिक प्रचलित है। कोई-कोई बाबाजी और साधू भी कह देते हैं। कहीं-कहीं मंगिता और भिख-मंगा के नाम से भी मुझे पुकारा जाता है। कोई ठग भी बता देता है। परन्तु मेरे लिये सभी नाम एक से हैं। कोई किसी भी नाम से मुझे पुकारे, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। मुझे तो अपनी भिक्षा से काम है। दो रोटी या एक चुटकी आटा, मुझे मिल जाय, मैं दाता को आशीर्वाद देता हुआ, दूसरा द्वार खट खटाता हूँ। जो नहीं

देता है उसे भी आशीर्वाद दे देता हूँ, इसकी मेरे पास कमी नहीं। सोच लेता हूँ कि बेचारा आज नहीं देता, तो कल देगा, कल नहीं तो परसों। कभी न कभी तो देगा ही। और ऐसा ही होता है। मेरी जिह्वा पर तो ये ही शब्द नृत्य करते रहते हैं 'कि दे उसका भी भला और न दे उसका भी भला'। बच्चे मुझसे बड़ा प्रेम करते हैं। जिस गाँव में पहुँचता हूँ, वहीं बहुत से बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं। कोई मेरी रोटियों की झोली को देखता है तो कोई मेरे बड़े बड़े बालों को। किसी को मेरी लाठी बड़ी अच्छी लगती है। उनके लिये मैं एक बड़ा अच्छा तमाशा हूँ। कुछ नटखट बच्चे मुझे तंग भी करते हैं परन्तु मैं बुरा नहीं मानता।

बच्चों से मुझे बड़ी सहायता मिलती है। जब तक मैं किसी घर के द्वार पर पहुँच भी नहीं पाता कि वे दौड़ कर मेरे आने की सूचना देते हैं और वे ही, रोटी भीतर से लाकर मेरी झोली में डाल देते हैं। यदि बच्चों के लिये मैं तमाशा न होऊँ तो शायद मुझे पेट भर रोटी भिक्षा में न मिले, क्योंकि जिस समय मैं भिक्षा माँगने जाता हूँ, उस समय अधिकांश स्त्रियाँ रोटी बनाने में व्यस्त होती हैं। उन्हें इतना अवकाश नहीं होता कि चौका छोड़ कर मुझे भिक्षा देने द्वार पर आवे। ऐसे समय उस घर के बच्चे ही मेरे काम आते हैं। झट दौड़ कर मुझे रोटी दे जाते हैं। कोई कोई माई कुछ काम न होते हुए भी, मुझे भिक्षा देना नहीं चाहती। कहने लगती है कि रोज रोज इसके लिये कहाँ से लावें, अपना ही पेट नहीं भरता। जा आज रोटी नहीं है। मैं चलने को होता हूँ परन्तु बच्चे मचल जाते हैं। उन्हें मेरे ऊपर दया आती है और दूसरे बच्चों के सामने अपनी तौहीन भी मालूम देती है। रो-धो कर वे रोटी ले ही लेते हैं और मेरे

चलते चलते झोली में डाल देते हैं। मैं उनके सिर पर हाथ रख कर जब उन्हें आशीर्वाद देता हूँ तो गर्व से उनकी छाती फूल जाती है और दूसरे घर के लिये मेरे साथ हो लेते हैं।

जब मैं बच्चों से भी बाबा कहता हूँ तो बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। प्रसन्न क्यों न होंगे, इतनी बड़ी पदवी उन्हें मुझ से ही मिलती है। मुझे उनके बहुत से प्रश्नों का भी उत्तर देना पड़ता है। वे पूछते हैं, 'भिखारी! तेरा घर कहाँ है? तू इन रोटियों को कहाँ ले जाता है? इतनी रोटी तू अकेला ही खा लेता है या किसी और को भी देता है? क्या तेरी माँ नहीं है जो तू रोटी माँगता है?' जब मैं कहता हूँ कि मेरा घर जंगल में है, इन सब रोटियों को मैं अकेला ही खा लेता हूँ और मेरी माँ मर गई है, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है और माँ के मरने की बात सुन कर उनके नेत्रों से कुछ ऐसा भाव झलकने लगता है जिसे मैं सहन नहीं कर सकता। मेरा हृदय उमड़ने को होता है, आँखें बरसने को होती हैं और अवरुद्ध कण्ठ फूट पड़ने को हो जाता है उसी समय बड़े प्रयत्न से इन सब को दबा कर, मैं जल्दी ही अपनी झोंपड़ी के मार्ग पर हो लेता हूँ। बच्चे देखते ही रह जाते हैं। उन का साहस नहीं होता कि गाँव छोड़ कर कड़ी धूप में वे एक रहस्यमय व्यक्ति का जंगल में भी पीछा करें।

चौबीस घन्टे में बस एक समय होता है जब कि कुछ क्षण के लिये मैं सांसारिक हो जाता हूँ। इस समय, मैं सुखी होता हूँ या दुखी, यह आज तक निर्णय नहीं कर पाया। इस परिस्थिति से बचने के लिये मैं शीघ्र ही भागने लगता हूँ, इससे मेरे दुखी होने की कल्पना की जा सकती है। झोंपड़ी पर पहुँच कर सुलफा की दम में मैं अपने आँसुओं को सुखा डालता हूँ और कंण्ठ को साफ कर लेता हूँ। इससे यह भी

सोचा जा सकता है कि इन प्रश्नों से मैं बचना चाहता हूँ। परन्तु दूसरे दिन सुबह होते ही मुझे भिक्षा लाने की उतनी चिन्ता नहीं होती, जितनी उन बच्चों के साथ की होती है, उनके प्रश्नों को सुनने की होती है और सबसे अधिक होती है मेरी माँ मरने की वात सुन कर उनके उन मूक नेत्रों को देखने की जिन से दया, सहानुभूति, सहृदयता और विवशता के असंख्यों भाव एक साथ ही फूट पड़ते हैं। मै सोचता हूँ कि जो चीजे मुझे जीवन में कभी नहीं मिलीं, जिनसे निराश होकर ही मैं भिखारी बना, बाबाजी बना और प्रति शोध रूप में संसार से उदासीन हो गया, वैराग्य धारण कर लिया, वे यदि बच्चों से मिल जाती हैं तो उन्हें क्यों न ग्रहण करूँ ? संभव है ये ही क्षण मुझे जीवित रहने दे रहे हों। इस संभवता की परीक्षा करने का मुझे आज तक साहस नहीं हुआ। साहस हो भी कैसे ? मुझे मानव-शरीर मिला है और उसके साथ ही मानव-स्वभाव। भिक्षुक अथवा बाबाजी होने से पहिले मैं मनुष्य हूँ। जिस दिन ऐसी परीक्षा का साहस हो जायगा, उस दिन मानव-शरीर न रहेगा।

हाँ, तो मुझे अपनी पूरी कहानी कहना है। बच्चों के साथ के थोड़े से क्षणों में ही अपनी सब बातें भुला बैठा। बच्चों की बाते करने मे मै भी बच्चा हो गया, कैसी मूर्खता है। मेरे और भी बहुत से काम हैं और काम की बातें हैं। वे सभी सुनानी हैं। अच्छा तो सुनो।

स्थिति मे संतोष—मैं एक भिक्षुक हूँ। रोटी माँग लाता हूँ और अपनी झोंपड़ी पर जाकर उन्हें बड़े आनंद से खाता हूँ। सन्ध्या को कहीं जाने की मुझे चिन्ता नहीं रहती। दोपहर की ही आधी रोटियाँ मै बचा कर रख देता हूँ। यदि भूख लगी तो शाम को उन्हीं में से खाली अन्यथा किसी

भूले-भटके को दे देता हूँ। इस प्रकार मैं भिक्षुक और दाता दोनों के ही आनंद को अनुभव कर लेता हूँ। भोजन करने के पश्चात् सुलफा की चिलम फिर मेरे सभी अनुभवों को भुला देती है और मैं ब्रह्मानंद में लीन हो जाता हूँ। कभी-कभी कोई भूला-भटका मेरी झोंपड़ी में आकर रात को ठहर भी जाता है। पहले तो इच्छा नहीं होती थी कि किसी के पूछने पर भी मैं अपना पूर्व इतिहास सुनाऊँ परन्तु अब मैं अपनी वर्त्तमान अवस्था का अभ्यस्त हो गया हूँ और अपनी राम-कहानी सुनाने में मुझे कोई कष्ट नहीं होता।

पहिले का इतिहास—भिक्षुक होने से पहले का मेरा इतिहास बहुत लम्बा है और उसे विस्तार से सुनने का किसी को अवकाश नहीं। हाँ, किसी सहृदय के हठ करने पर मैं संक्षेप में उसे इस प्रकार कह देता हूँ: मैंने एक निर्धन परिवार में जन्म लिया था। मेरे माँ और बाप कठोर परिश्रम करके अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते थे। मेरे अतिरिक्त मेरी दो बहिनें और थीं। अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा होने के कारण, बचपन में सभी सुख प्राप्त थे। माता का स्नेह और पिता का प्यार कैसा होता है इसे मैं खूब जनता हूँ। जो कुछ भी मै माँगता था, उसी की पूर्त्ति हो जाती थी। निर्धनता और गरीबी का जीवन क्या होता है, इसका उस समय मुझे कोई बोध नहीं था। माता, पिता की सारी इच्छाएँ मेरे ऊपर केन्द्रित थीं। वे मेरे भविष्य के लिये सब कुछ करने को तैयार थे। धीरे-धीरे मैं बड़ा हुआ। पन्द्रह वर्ष की ही मेरी अवस्था होगी कि एक दिन मेरी माँ मुझे सदैव के लिये छोड़ कर चली गई। मरते समय माँ ने पिताजी से केवल एक ही इच्छा प्रकट की थी और वह यह कि वे किसी

प्रकार मेरा विवाह कर सकें तो कर दें। माँ की मृत्यु उस समय मेरे लिये एक असाधारण घटना थी। माँ के स्नेह को मैं उनके मरने के पश्चात् ही समझ सका। घर मेरे लिये सूना हो गया था। महीनों तक घर के कोने में बैठ कर माँ की याद में, मैं रोया था। मेरे पिताजी मेरी इस अवस्था से अत्यन्त दुखी हो गये थे। उन्होंने अपना सारा हृदय मुझ पर उँडेल दिया था। समय बड़ा बलवान होता है। बड़े से बड़े दुख को मनुष्य सहन कर लेता है और धीरे-धीरे नवीन परिस्थितियों में ही वह सन्तुष्ट होने लगता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। माँ की याद क्रमशः कम होती गई और घर मुझे फिर से अच्छा लगने लगा।

मेरी अवस्था अब बीस वर्ष की हो चुकी थी। पिताजी को मेरी माँ की अन्तिम इच्छा को पूरा करने की दिन-रात चिन्ता रहती थी। उनका शरीर भी अब वृद्ध हो चला था। बड़ी दौड़-धूप के बाद उन्होंने एक व्यक्ति को अपनी कन्या देने के लिये राजी कर लिया और मेरा विवाह हो गया। परन्तु इस विवाह में मेरे पिताजी को अपनी सारी कमाई से हाथ धोना पड़ा था। स्त्री को पाकर मैं फूला न समाया, अपने समूचे हृदय से मैं उस पर न्यौछावर हो गया। पाँच वर्ष तक मैं जवानी के नशा में भूला रहा। पिताजी अब भी थोड़ा बहुत परिश्रम करते थे। इस बीच में मेरे तीन बच्चे हो गये थे, दो लड़के और एक लड़की। पिताजी मेरे भविष्य के विषय में बहुत चिन्तित रहने लगे थे और बराबर मुझसे नौकरी करने की कहते रहते थे। मैंने कभी भी उनकी बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। एक दिन मेरे पिताजी भी इस संसार से उठ गये। उनके वियोग को मैं शीघ्र ही भूल गया।

थोडे ही समय में पिताजी की संचित शेष पूँजी भी

समाप्त हो गई और अब मेरे सामने भरण-पोषण की समस्या अपने भीषण रूप में प्रकट हुई। बड़े प्रयत्न से मुझे एक २०)रु० की नौकरी मिल गई। सुबह से शाम तक मुझे कड़ी मिहनत करनी पड़ती थी। नौकरी के रुपयों से महीने की अन्तिम तारीख पकड़ना बड़ा कठिन हो जाता था। हमें रूखी रोटी और चिथड़ों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। दूध और घी के अभाव में बच्चे सूख कर काँटा हो गये थे। निर्बल शरीर पर रोगों का आक्रमण बहुत जल्दी होता है। एक रात्रि का ठंड के कारण दोनों लड़कों को निमोनिया होगया। मैं वैद्य और डाक्टरों के पास दौड़ा। उनकी फीस और औषधियों के दाम सुनकर मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मेरी स्त्री ने अपने शेष गहने बेच कर वैद्य और डाक्टरों का पेट भरा। परन्तु बीमारी लम्बी थी। अब घर में कुछ नहीं था। मैंने पड़ौसियों से बहुत-कुछ याचना की कि कुछ रुपया उधार देदें परन्तु हमारी दशा पर किसी को तरस नहीं आया। एक दिन दोनों बच्चे चल बसे। हमारा रोना-धोना, उनको न लौटा सका। कुछ दिन बाद लड़की की भी यही अवस्था हुई और उसने भी अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। सन्तान के वियोग से मेरी स्त्री का हृदय टूँक-टूँक हो गया। उसका मस्तिष्क विकृत हो गया और एक दिन उन्माद की अवस्था में उसने कुएँ में कूद कर अपनी जान दे दी।

मैं अब अकेला रह गया था। संसार में सब जगह मेरे लिये अँधेरा ही अँधेरा था। सन्तान और स्त्री के वियोग को मैं किसी प्रकार सहन नहीं कर पा रहा था। कई बार आत्म-हत्या अरने की बात सूझी। परन्तु अभी मेरे जीवन के दिन शेष थे। मैंने घर छोड़ दिया और बहुत दिनों तक इधर-उधर

पागलों की भाँति घूमता रहा। जो कोई कुछ दे देता था उसी को खा लेता था। भूला-भटका एक दिन इस स्थान पर आ निकला। यह जगह जहाँ मेरी झोंपड़ी है यहाँ एक साधू से मेरा साक्षातकार हो गया और मैं उन्हीं के साथ रहने लगा। कुछ दिन पश्चात् वे साधू चल बसे और तब से मैं अकेला यहाँ रह रहा हूँ। दिन में एक बार मुझे यहाँ से निकट के गाँव में भिक्षा क लिये जाना पड़ता है। मुझे रोटी मिल जाती है और कोई न कोई दयालु सुलफा भी लाकर देता है। यहाँ रहते मुझे पूरे दस वर्ष हो गये हैं।

वर्त्तमान दशा से सुखी—मैं अब इस नये जीवन का अभ्यस्त हो गया हूँ। मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं। संसार की बड़ी-से-बड़ी घटना मेरे लिये कुछ मूल्य नहीं रखती। राजा और रंक मेरे लिये समान हैं। ईष्या, राग, द्वेष, माया और मोह आदि सांसारिक भावों से मैं ऊपर हूँ। मेरी बातों को सुन कर लोग कह सकते हैं कि मैं स्वार्थी हूँ। परन्तु जब मैं ऐसा नहीं था, तभी लोगों ने मुझे क्या दे दिया? और अब जब ऐसा हूँ तब लोग मुझसे क्या छीन लेते हैं? दुनिया, कुछ भी कहे, मुझे इसकी चिन्ता नहीं और मैं यह भी जानता हूँ कि दुनिया को मेरे बारे में कुछ कहने का अवकाश ही नहीं। जैसा मैं हूँ, उससे पूर्ण सन्तुष्ट हूँ, इससे अधिक की इच्छा नहीं। मै सुखी हूँ।

व्यायाम की उपयोगिता

उ० प्र० १९४१, १९४६

प्रस्तावना—स्वास्थ्य-रक्षा के हेतु, जितनी आवश्यकता उत्तम भोजन, स्वच्छ जल-वायु और अन्य बातों की है, उतनी ही व्यायाम की भी है। यदि कुछ गंभीरता से विचार किया जाय, तो संसार में उत्तम स्वास्थ्य से बढ़कर अन्य सुख नहीं। सब सुख स्वास्थ्य पर ही निर्भर करते हैं। मनुष्य जब किसी रोग से ग्रसित होता है, तो संसार की कोई भी वस्तु उसे सुख दायक नहीं होती। उत्तम से उत्तम भोजन रोगी मनुष्य को फीके जान पड़ते हैं। सभी प्रकार के सौन्दर्य में उसे कुरूपता की झलक आती है। धन, प्रशंसा, मान-बड़ाई सभी कुछ स्वास्थ्य-अवस्था में ही अच्छे लगते हैं। अमेरिका के एक रोगी करोड़ पति ने अपनी रुग्णावस्था से अत्यन्त दुखी होकर एक बार कहा था कि मैं अपना सारा धन और वैभव उस व्यक्ति को दे सकता हूँ जो मुझे ऐसा करदे जिससे मैं रोटी खा सकूँ। सच है स्वास्थ्य-हीन पुरुष के लिये जीवन के सभी आनन्द फीके हैं। तभी तो अनुभवी व्यक्तियों ने कहा है कि 'पहिला सुख निर्मल हो काया।' धर्म का पहिला धर्म साधन शरीर-रक्षा को ही माना गया है। शरीरमाद्यं खलु साधनम्' सदैव बीमार बना रहने वाला व्यक्ति न तो स्वार्थ ही कर सकता है, और न परमार्थ ही। न वह अपने ही को सुखी रख सकता है, और न दूसरों को ही। उसका जीवन भार-स्वरूप हो जाता है। स्वस्थ और बलवान पुरुष ही संसार में सुख और यश प्राप्त कर सकते हैं।

स्वास्थ्य के लिये व्यायाम की आवश्यकता—उत्तम स्वास्थ्य के लिये, व्यायाम एक अनिवार्य साधन है। व्यायाम

के बिना अन्य सभी साधनों का पालन करते हुए भी मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। किसी न किसी प्रकार का व्यायाम सभी अवस्थाओं में आवश्यक होता है। जब बच्चा चलने फिरने योग्य नहीं होता, तब भी वह चारपाई पर पड़ा पड़ा अपने हाथ पैर हिलाता रहता है। इसी से उसका व्यायाम हो जाता है। प्रकृति ने उसके लिये, व्यायाम की स्वाभाविक व्यवस्था कर दी है। जब बालक कुछ बड़ा हो जाता है तो वह दिन भर खेल कूद के कामों में व्यस्त रहता है। खेल में बच्चे की रुचि, उसकी प्रकृति प्रदत्त विशेषता है जिससे उसका अवश्यक व्यायाम होता रहता है। प्रकृति की संरक्षणता से जब बालक बाहर आता है, और जब वह अपनी बुद्धि और सामर्थ्य का संरक्षण प्राप्त कर लेता है, तभी वह व्यायाम न करने की अस्वाभाविक प्रवृत्ति को अर्जित करता है और उसका परिणाम उसे अनेकों प्रकार से भोगना पड़ता है। व्यायाम की उपेक्षा, स्वास्थ्य को तथा जीवन की ही उपेक्षा है।

व्यायाम से शरीर की सफाई—नित्य प्रति व्यायाम करते रहने से शरीर के सभी अंग पुष्ट होते हैं। रुधिर का संचार शीघ्रता से होने लगता है जिससे दूषित पदार्थ शरीर के बाहर निकल जाते हैं। व्यायाम से आमाशय स्वस्थ रहता है और पाचन-क्रिया सुचारु रूप से होती रहती है। व्यायाम करने वाले पुरुष का आमाशय साधारण खाद्य-पदार्थों से ही शरीर रक्षा के लिये पोषक तत्व प्राप्त कर लेता है। पशुओं का आमाशय इतना शक्ति शाली होता है कि जिससे वे घास फूँस खाकर हो स्वस्थ और बलवान बने रहते हैं। मनुष्य घास और भूसे पर थोड़े दिनों तक भी जीवित नहीं रह सकता। इसका कारण यह है कि उसका आमाशय इतना

शक्तिशाली नहीं होता जिससे कि वह पशुओं के चारे से भोजन तत्व ग्रहण कर सके। मनुष्य के आमाशय की गठन एक तो वैसे ही पशुओं की तुलना में हीन है, फिर उसे वह व्यायाम न करके तथा हानिकारक वस्तुएँ खाकर, और भी अधिक विकृत कर लेता है। व्यायाम का एक मुख्य लाभ आमाशय को स्वस्थ और शक्ति शाली बनाये रखना भी है। व्यायाम करने वाला पुरुष सदैव प्रफुल्ल और कान्तियुक्त बना रहता है। व्यायाम से वक्षस्थल उभर आता है, पुट्ठे दृढ़ हो जाते हैं, गर्दन सुडौल बनती है और चाल में स्वाभाविक अकड़ आ जाती है। व्यायाम-शील व्यक्ति दूर से ही अपनी निराली छटा फैलाता हुआ दिखलाई देता है।

व्यायाम से बल बढ़ता है—व्यायाम करने से स्वास्थ्य और बल की वृद्धि तो होती ही है, परन्तु साथ ही व्यावहारिक दृष्टि से भी अनेक लाभ होते हैं। व्यायाम से पुष्ट हुए शरीर को देखकर, सभी उसका सम्मान करने लगते हैं। किसी बदमाश और गुण्डे को साहस नहीं होता कि पुष्ट शरीर वाले व्यक्ति से आधी बात भी कह सके। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता है, वहीं लोग उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते है और भरसक उसके कार्य में सहयोग प्रदान करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

मन की पवित्रता—व्यायाम करने से मन और बुद्धि का भी परिष्कार होता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। रोगी शरीर वाले का मस्तिष्क भी विकृत हो जाता है, उसकी मानसिक क्षमता न्यून हो जाती है। शरीर का मन से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। सभी मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि शारीरिक क्रियाओं का मन पर अनिवार्यतः प्रभाव होता है। अतः बुद्धि और मन को सचेष्ट

बनाने के लिये व्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है।

व्यायाम और चरित्र—व्यायाम का चरित्र-निर्माण में भी गहरा हाथ होता है। व्यायाम करने वाला व्यक्ति वासनाओं के प्रभाव में नहीं आता। उसका मन सदैव ही उसे उच्च कार्यों के लिये प्रोत्साहन देता रहता है। काम, ईर्ष्या, क्रोध आदि विकारों से व्यायाम मनुष्य को दूर रखता है। कमजोर और शक्ति-हीन व्यक्ति ही अधिकतर कामी एवं क्रोधी होते हैं, परन्तु व्यायाम करने वाले व्यक्ति को अपने मन पर अधिकार होता है। उसमें सहन शीलता कूटकूट कर भरी होती है। क्षमा और दया उसके आभूषण होते हैं। आज तक कोई भी व्यक्ति बिना व्यायास के दुर्वासनाओं पर विजयी नहीं हो सका है। मनुष्य के अवगुणों को रोक रखने की तो मानो व्यायाम पहिली लगाम है।

व्यायाम-प्रेमी कुछ महापुरुष—संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, सभी को व्यायाम से प्रेम था क्योंकि सभी इसकी उपयोगिता को भली भाँति अनुभव करते थे। स्वामी रामतीर्थ को तो व्यायाम का व्यसन ही था। प्रोफेसर राममूर्त्ति के नाम से कौन-सा भारतवासी परिचित नही? उन्होंने व्यायाम के द्वारा ही अपने शरीर को इतना दृढ़ कर लिया था जिससे वह मोटर को रोक देते थे, हाथी को अपनी छाती पर खड़ा कर लेते थे और लोहे की मोटी-मोटी जंजीरों को एक ही झटके में तोड़ डालते थे। आधुनिक युग के महापुरुष महात्मा गान्धी इतने अधिक व्यस्त रहते हुए भी व्यायाम के लिये अवश्य समय निकाल लेते थे। जब उनका घूमने का समय हो जाता था, तभी सब कामों को छोड़ कर वायु-सेवन और व्यायाम के लिये चल देते थे। हमारे प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू भी व्यायाम के बड़े प्रेमी हैं। आपको शीर्षासन और

तैरने में अत्यधिक रुचि है। सारांश यह है कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक कार्य व्यस्त होगा वह उतना ही व्यायाम की उपयोगिता पर ध्यान देगा क्योंकि इसी के द्वारा वह अपने शरीर की कार्य क्षमता को बनाये रखता है।

व्यायाम के प्रकार—मनुष्य के लिये व्यायाम अत्यन्त ही उपयोगी है चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो। व्यायाम के कई भेद हैं और सभी में अच्छा व्यायाम हो जाता है। दण्ड बैठक लगाना, कुश्ती लड़ना. कबड्डी, हाकी, फुटबाल, वालीबाल आदि खेल खेलना, तैरना, दौड़ना, घूमना, घोड़े पर चढ़ना आदि अनेकों प्रकार से व्यायाम किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न अवस्था और परिस्थिति के व्यायाम भी भिन्न हैं। जो व्यक्ति मानसिक कार्य अधिक करता है, उसके लिये अधिक श्रम वाले व्यायास हानिकारक होंगे। इसी प्रकार शारीरिक श्रम करने वालों को साधारण श्रम के व्यायाम से कोई लाभ नहीं होगा। व्यायाम में अवस्था का ध्यान रखना भी आवश्यक है अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना अधिक रहती है। बच्चों के लिये कबड्डी, हाकी या फुटबाल उपयुक्त व्यायास हैं परन्तु वृद्धावस्था में इस प्रकार का व्यायाम नहीं हो सकता। युवा पुरुष दण्ड बैठक भी लगा सकते हैं और तैर, दौड़ भी सकते हैं। जिन युवकों को अच्छा भोजन मिल सकता है और घी, दूध खाते पीते हैं, वे कुश्ती भी लड़ सकते हैं। कुश्ती लड़ने में शरीर के सभी अङ्गों पर अत्यधिक बल पड़ता है अत: ऐसे लोगों को शक्तिवर्द्धक पदार्थ जैसे घी, दूध, मक्खन आदि का अधिक सेवन करना चाहिये। बूढ़े आदमियों के लिये प्रात: सायंकाल घूमने से ही यथेष्ट व्यायाम हो जाता है। मानसिक कार्य करने वाले युवा व्यक्ति भी घूमकर अपना व्यायाम कर सकते है परन्तु उन्हें

अधिक दूर तक तेजी के साथ घूमना चाहिये। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व घूमने के लिये जाना सबसे अधिक लाभदायक होता है। इससे व्यायाम के अतिरिक्त स्वच्छ वायु भी मिल जाती है जो स्वास्थ्य के लिये हितकर है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्थिति और अवस्था के अनुसार कोई न कोई व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

व्यायाम के नियम—व्यायाम के विषय में कुछ और भी बातें ध्यान देने योग्य हैं जिनके बिना व्यायाम से लाभ नहीं उठाया जा सकता। प्रथम तो यह कि व्यायाम करने के लिये प्रातःकाल का समय शौचादि से निवृत्त होकर, सर्वोत्तम है। व्यायाम स्वच्छ वायु और स्वस्थ स्थान में करना चाहिये। भूख में या अधिक भोजन करने के पश्चात् व्यायाम कदापि नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है और रोग भी उठ खड़े होते हैं। व्यायाम शक्ति के अनुसार करना चाहिये क्योंकि अधिक व्यायाम करना भी हानिकारक हो जाता है। साधारण अवस्था के व्यक्तियों को स्वेद-कण झलक आने के पश्चात् व्यायाम समाप्त कर देना चाहिये। व्यायाम करने के पश्चात् तुरन्त ही कोई वस्तु नहीं खानी चाहिये। हाँ आध घन्टे बाद दूध या कोई हलका पदार्थ लिया जा सकता है। यदि व्यायाम में उक्त नियमों का ध्यान रक्खा जायगा तो निश्चय ही मनुष्य स्वस्थ रहते हुए दीर्घ जीवन प्राप्त करने में समर्थ होता है और सभी सांसारिक सुखों का उपभोग कर सकता है।

व्यायाम के विषय में किसी संस्कृत के कवि ने क्या ही उत्तम श्लोक लिखा है:—

"व्यायाम पुष्ट गात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशोबलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्माद् व्यायाममाचरेत॥"

———

देशाटन

उ० प्र०—१६१२, १६४६

प्रस्तावना—देश देशान्तरों में भ्रमण करने को देशाटन कहते हैं। प्राचीन समय में विद्यार्थियों को देशाटन भी करना पड़ता था, यह भी उनकी शिक्षा का एक अङ्ग था। ग्रहस्थ-जीवन में प्रवेश करने से पूर्व देशाटन द्वारा अनुभव प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता था। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में देश देशान्तरों के ज्ञान, वहाँ की रहन-सहन, विद्या, बुद्धि और रीति-नीति जानने से, बड़ी सहायता मिलती है। उस समय रेल, मोटर या वायुयान नहीं थे। लोग घोड़े पर अथवा अधिकांश में पैदल ही यात्रा करते थे। यात्रा में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। बड़ी-बड़ी नदियाँ तैर कर पार की जाती थीं। चोर और लुटेरों का सामना करना पड़ता था, खाने पीने की वस्तुएँ सभी जगह नहीं मिलती थीं। अतः घर से भोजन सामग्री बाँध कर ले जानी पड़ती थी। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी, सभी लोग थोड़ा बहुत देशाटन करते थे। वर्त्तमान समय में रेलों और मोटरों का जाल सा बिछ गया है। धनाड्यों के लिये वायुयान भी मिल जाते हैं। जहाँ पहिले किसी यात्रा में एक महीने का समय लगता था, वहाँ अब उसी में एक दिन भी नहीं लगता। वैज्ञानिक आविष्कारों ने दूरी को मेंट सा दिया है। संसार संकुचित हो गया है। परन्तु खेद तो इस बात का है कि अब यात्रायें इतनी सुलभ होते हुए भी लोग देशाटन नहीं करते; यदि करते भी हैं तो उनकी संख्या उँगलियों पर गिनाये जाने योग्य है। अधिकांश मनुष्यों की यात्राओं का उद्देश्य व्यापारिक अथवा दूसरा कोई होता है।

ज्ञान प्राप्ति का साधन—यदि देखा जाय तो ज्ञान प्राप्त करने के लिये देशाटन से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं। पुस्तकों में क्या होता है ? उनमें भी तो विभिन्न जातियों का, देश विदेशों का, विभिन्न मनुष्यों का इतिहास होता है। जितनी भी, भूगोल, इतिहास, दर्शन, समाज-शास्त्र, साहित्य आदि विषयों की पुस्तकें हैं, उन सब में मानवीय अनुभव ही तो है। किसी वस्तु का वर्णन पढ़ कर हम उसकी कल्पना ही कर सकते हैं। उसे साक्षात् देखकर हमें जैसा अनुभव होता है, उस ज्ञान की तुलना में पुस्तकों का ज्ञान नितान्त अधूरा होता है। कई बार पढ़ने पर भी पुस्तकों से जानी हुई बातें भूल जाती हैं, परन्तु यदि एक बार भी उन बातों को स्वय देख लिया जाय तो उसकी स्मृति सदैव के लिये हमारे हृदय पट पर अंकित हो जाती है। देश, विदेश में जाने से हमें वहाँ की जलवायु, भूगोल और प्राकृतिक स्थिति का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। वहाँ के निवासियों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक प्रवृत्ति, राजनैतिक स्थिति और सामाजिक दशा का पूरा-पूरा अनुभव उन लोगों में घूमने-फिरने और मिलसे जुलने से ही होता है। जिसने कभी ताजमहल न देखा हो, वह अनेकों पुस्तकों में से ताजमहल का वर्णन पढ़ कर उसकी यथार्थता तक नहीं पहुँच सकता। जो एक बार उसे देख लेगा, उसके सामने ताजमहल के सभी वर्णन फीके हो जायँगे। पर्वतीय प्रदेशों का वर्णन बहुत सी पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है। अनेकों यात्रियों ने पर्वतों की शोभा का वर्णन किया है। परन्तु जो कभी एक बार भी पर्वतों के निकट गया है और जैसी अनुभूति उसे उन्हें देख कर होती है, वैसी किसी भी वर्णन को पढ़कर उसे नहीं होती थी। सारांश यह है कि देशाटन द्वारा ही जीवन का सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

ज्ञान की उपलब्धि जिसे कहते हैं, वह देशाटन से ही होती है।

जब तक मनुष्य अपने घर में ही बन्द रहता है, वह घर से बाहर की बातें कैसे जान सकता है। वह तो उस कुएँ के मेढक के समान है जिसने कभी कुएँ की संकीर्ण जल' परिधि से बाहर निकल कर उन्मुक्त वायु में साँस नहीं ली। समुद्र कैसा होता है, इसकी कल्पना तक करना कूप-मण्डूप के लिये असम्भव है। देशाटन न करने वाला व्यक्ति भी ज्ञान और अनुभव में अत्यन्त संकीर्ण होता है। विभिन्न लोगों से कैसे मिला जाता है, कैसे बात-चीत की जाती है, आदि बातों को वह नहीं जानता। देशाटन मनुष्य को संकीर्णता के कठघरे से निकाल कर स्वतन्त्रता के प्रागण में ला खड़ा करता है। जहाँ वह खुलकर हँस सकता है; खुलकर रो सकता है और खुलकर साँस ले सकता है।

देशाटन से चरित्र-निर्माण—देशाटन करने से मनुष्य के आचरण पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ मिलने-जुलने से मनुष्य सभ्यता सीखता है। जब तक हम अपने ही घर पर रहते हैं, तब तक अपने ही को बुद्धिमान, योग्य और गुणी समझे रहते हैं। परन्तु बाहर निकल कर ही हमें पता चलता है कि संसार बहुत विस्तृत है और उसमें एक से एक बढ़कर पुरुष विद्यमान हैं। अतः देशाटन ही हमारे घमंड को दूर करता है और नम्र बनाता है। उदारता, विनम्रता, साहसिकता और दूरदर्शिता आदि मानवोचित गुणों का विकास देशाटन से ही होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि देशाटन चरित्र-निर्माण का भी एक उत्तम साधन है।

देशाटन, मनोरंजन का साधन है—मनुष्य की जिज्ञासा-

प्रवृत्ति और मनोरंजन-प्रियता का समाधान भी देशाटन से होता है। देश, विदेशों में भ्रमण करने से हम अद्भुत प्राकृतिक दृश्यों को देखते हैं। कहीं गगनचुम्बी पर्वत-शिखिर खड़े मिलते हैं तो कहीं अथाह सागर हिलोरें लेता हुआ दिखलाई देता है। हरे-भरे खेतों की शोभा रेल में बैठकर कैसी मनो-मुग्धकारिणी होती है। प्राकृतिक दृश्यों के भिन्न सभी स्थानों पर कुछ न कुछ दर्शनीय वस्तुएँ देखने को मिलती हैं। काश्मीर की कुम्कुम क्यारियाँ, बम्बई में मलाबार की पहाड़ियाँ, दहली की कुतुबमीनार, जयपुर की वेधशाला, आगरे का ताजमहल, लखनऊ का इमामबाड़ा आदि देशाटन करने वाले ही तो देख सकते हैं। जिन्हें अपने देश से भी बाहर जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है, उन्हें विदेशों की विचित्र उस्तुएँ देखते को मिलती हैं। तात्पर्य यह है कि देशाटन करने वालों को मनोरंजन के अत्युत्ताम साधन प्राप्त होते रहते हैं।

देशाटन से स्वास्थ्य-लाभ—देशाटन से स्वास्थ्य-लाभ भी होता है। जब मनुष्य एक ही स्थान पर बहुत दिन रह लेता है तो उसके लिये बाहरी जलवायु हितकारक होती है। बहुत से रोगियों के लिये तो डाक्टर और वैद्य जल-वायु परिवर्त्तन कराना आवश्यक समझते हैं। स्वास्थ्य-वर्द्धक स्थानों में भ्रमण करने से कुछ ही दिनों में स्वास्थ्य में असाधारण परिवर्त्तन आ जाता है। देशाटन करने में मनो-रंजन तो होता ही है, इससे स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। देशाटन में शारीरिक श्रम भी करना पड़ता है। श्रम करने से आमाशय ठीक रहता है और पाचन क्रिया सुचारुरूप से होती रहती है। इससे भी स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है।

देशाटन से साहित्य को लाभ—देशाटन साहित्य का भी

एक साधन है। किसी विद्वान् ने कहा है कि "यह संसार एक बहुत बड़ी पुस्तक के समान है और वे जो अपने घरों से पैर नहीं निकालते, इसका केवल एक ही पढ़ पाते हैं।" साहित्यकार, चाहे वह उपन्यास लेखक हो, चाहे नाटककार, कवि हो अथवा इतिहास-लेखक, उसे अपनी कथा के लिये जीवन के अनुभव की बड़ी आवश्यकता होती है। अपने पात्रों के जीवन की झाँकी वह देशाटन में ही कर पाता है। उपन्यास और नाटकों की कथा-सामग्री उसे प्रकृति और मानव-समाज में विचरण करने ही से प्राप्त होती है। मानव-जीवन की व्याख्या का नाम ही तो साहित्य है। साहित्यकार, द्वार-द्वार पर जाकर लोगों से मिलता है, वह गरीबों की झोंपड़ियों को देखता है, और राज प्रासादों को भी निहारता है। झोंपड़ियों के आर्त्तनाद से उसका हृदय पसीजता है और प्रासादों की संगीत-लहरी में उसे चीत्कार का ही स्वर सुनाई देता है। करुणा, दया, हिंसा, घृणा आदि सभी भावनाओं का उसे स्थान-स्थान पर घूमने से ही अनुभव होता है। तुलसीदास जी ने 'रामचरित-मानस' जैसे अनुभव पूर्ण साहित्यिक-ग्रन्थ की रचना भारतवर्ष के कोने-कोने को छानने के उपरान्त ही की थी। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि शैली और कीट्स के सर्वश्रेष्ठ काव्यों की रचना, इन कवियों के, इटली की प्रकृति-सुन्दरी में विचरण कर लेने के पश्चात् ही हुई थी। जिन लेखकों ने भ्रमण करके संसार का अनुभव प्राप्त किया, उनकी रचनायें ही साहित्य की अमरनिधि हैं।

देशाटन से देश को लाभ—देशाटन से व्यक्ति को तो विभिन्न लाभ होते ही हैं, देश भी उसके लाभों का उपभोग करता है। सभ्यता, कला-कौशल विद्यावुद्धि आदि का विस्तार देशाटन करने वाले लोगों ही से होता है। प्राचीन काल में

भारतवर्ष की सभ्यता और ज्ञान लेने के लिये सभी देशों से यात्री आते थे। वे यहाँ सर्वत्र ही भ्रमण करते थे और यहाँ की बातें अपने देश में ले जाते थे। इतिहास में अनेक विदेशी यात्रियों का उल्लेख आया है जो भारतवर्ष ज्ञान, कला-कौशल सीखकर लौट गये और उसका प्रचार अपने-अपने देशों में किया। सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में देशाटन-प्रिय लोग द्वारा बहुत कुछ सुधार किया जा सकता है।

उपसंहार—हर्ष का विषय है कि हमारे देश में भी अब देशाटन प्रेमियों की संख्या बढ़ती जाती है और देशाटन के विषय में रूढ़िवादी विचारों को प्रोत्साहन नहीं मिल रहा। हाँ एक समय था जब कि समुद्र की यात्रा धार्मिक विचार से निषिद्ध मानी जाती थी और जो लोग ऐसा करने का साहस करते थे उन्हें जाति-च्युत कर दिया जाता था। अब ऐसा कोई प्रतिबन्ध देशाटन पर नहीं रहा। वर्त्तमान समय में देशाटन की सुविधायें भी बहुत बढ़ गई हैं। अतः उन लोगों का जो भ्रमण करने का व्यय उठा सकते हैं, महान कर्त्तव्य है कि वे देशाटन द्वारा अपना और अपने देशवासियों का भला करें।

साहित्य और समाज

परिभाषा—साहित्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व दोनों की परिभाषा भिन्न-भिन्न में समझलेना आवश्यक है। विद्वानों ने साहित्य कई प्रकार से की है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने

"सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिये जो भाव-सामग्री निकाल कर समाज को सौंपता है उसी के संचित भांडार का नाम साहित्य है।" पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'ज्ञान राशि के संचित कोष' को साहित्य माना है। एक अँगरेज विद्वान् ने लिखा है "साहित्य केवल ऐसी पुस्तकों का भांडार है जो विषय-वस्तु और उसकी प्रतिपादन शैली के कारण सर्व साधारण के लिये रुचिकर होता है.......... वास्तव में यह भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति है।" साहित्य की कोई एक परिभाषा करना कठिन है। संक्षेप में समझने के लिये हम कह सकते हैं कि किसी भाषा की वे सब पुस्तकें जिनमें मानव-जीवन का चित्रण उसके सभी अङ्गों को लेकर किया गया है उस भाषा का साहित्य कहलाता है। कविता, कहानी उपन्यास, नाटक, निबन्ध, इतिहास, विज्ञान आदि सभी विषयों की पुस्तकों से साहित्य का सृजन हो सकता है इन सभी पुस्तकों में क्या होता है? मानव-जीवन का चित्रण, उसके भाव, विचार, कल्पना, अनुभव तथा प्रकृति की अन्य वस्तुओं के साथ उसका सम्बन्ध। जो पुस्तकें जितनी ही अधिक उस चित्रण में सफ़ल होंगी, वे उतनी ही साहित्यिक रचनाये मानी जायँगी। किसी भाषा का साहित्य उतना ही अधिक उन्नत और श्रेष्ठ होगा जितना अधिक, उसके अध्ययन से मनोभावों का परिष्कार, जीवन-शक्ति का संचार और चरित्र का निर्माण होगा। श्रेष्ठ समाज से श्रेष्ठ साहित्य निकलता है और श्रेष्ठ साहित्य से श्रेष्ठ समाज बनता है।

समाज की परिभाषा सरल है किसी जन-समुदाय की रहन-सहन, रीति-नीति, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार एवं कला-कौशल आदि बातें ही उसके समाज के अन्तर्गत आती हैं। कोई जन-समुदाय अपनी जीवन-प्रणाली के साथ अपने

समाज का निर्माण करता है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों, जातियों और धर्मों के साहित्य भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार उनके समाज भी भिन्न-भिन्न हैं।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध—साहित्य का समाज से घनिष्ट सम्बन्ध है बल्कि यों कहिये कि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के व्यक्तियों के भावों, भावनाओं विचारों और कार्यों का प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में देखने को मिलता है। किसी जाति की सामाजिक शक्ति अथवा सभ्यता का निर्देशक उसका साहित्य ही होता है। सामाजिक अवस्था के अनुरूप ही साहित्य होता है। किसी जाति के साहित्य को पढ़ कर उस जाति की सभ्यता, उसकी सामाजिक व्यवस्था, बौद्धिक विकास का पता सहज ही लग सकता है। जो जाति जितनी उन्नत अवस्था में होगी, उसका साहित्य भी उतना ही उन्नत होगा। सामाजिक विकास अथवा परिवर्त्तन के साथ ही उसके साहित्य में विकास या परिवर्त्तन होता रहता है।

आदि सम्बन्ध—हिन्दी साहित्य को ही लीजिये। इसके वीर-गाथा काल में राजा महाराजाओं की प्रशंसा के ही छन्द कविता में मिलते हैं। वह ऐसा समय था जब कि भारतवर्ष में छोटे-छोटे राजा होते हैं। अपने राज्य में उन्हीं का एक छत्र शासन होता था और उन्हीं की मनोवृत्ति ने अनुसार जनता अपनी मनोवृत्ति बना लेती थी। कवि लोग राज दरावरों में आश्रय पाते थे अतः उनकी कविताएँ अपने राजा की प्रशंसा में ही होती थीं। उस समय के साहित्य में युद्धों के वर्णन, राजाओं की विरहावली तथा शृङ्गार-रस की प्रधानता है।

भक्ति-काल और समाज—जब भारतवर्ष में यवनों का राज्य पूर्ण रूप से स्थापित हो गया और उनके अत्याचारों से

प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी तो निराश्रित जनता के सम्मुख ईश्वर के साकार, दुष्ट संहारक, भक्तवत्सल और दीन प्रति-पालक रूप की कल्पना के अतिरिक्त अन्य साधन न रहा ऐसे समय में सूरदास और तुलसीदास जैसे भक्त शिरोमणि कवियों का आविर्भाव हुआ। यह समय हिन्दी साहित्य में भक्ति-काल के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय अधिकांश कवि भक्ति-भाव से प्रेरित होकर कविता करते थे और लोगों के सम्मुख ईश्वर के साकार रूप का विश्वास दिला कर उन्हें धैर्य और साहस बँधाते थे। सूरसागर और रामचरित-मानस जैसे ग्रन्थों की रचना इसी समय हुई। हिन्दू समाज का वह विपत्ति काल था और इस काल में ऐसे ही साहित्य का सृजन होना स्वाभाविक था।

रीति कालीन समाज—भक्ति-काल के पश्चात् हिन्दी-साहित्य में रीति-काल का प्रारम्भ हुआ। इस समय मुगल साम्राज्य अपने पूरे अभ्युदय पर था। सर्वत्र शान्ति हो गई थी और जनता अपने शासकों के साथ विलास प्रिय बन गई थी। कवियों को राजाओं का प्रसन्न करना ही अभीष्ट था। इस समय की कविता में शृङ्गार-रस की प्रधानता है। नायक और नायिकाओं के हाव, भाव, नायिका भेद आदि विषयों से इस काल का साहित्य भरपूर है। बिहारी, केशव, पद्माकर आदि शृंगार प्रिय कवि इसी काल में हुए। इनके ग्रन्थों में उस काल के समाज की प्रतिच्छाया स्पष्ट लक्षित होती है। विलासी समाज में वीरता, उदारता एवं दार्शनिकता के भाव पूर्णतः विलीन हो जाते हैं और कवि नायक, नायिकाओं के फेर में पड़ जाता है।

आधुनिक साहित्य और समाज—आधुनिक काल में भी समय के हेर फेर के साथ साहित्य ने पलटा खाया। विज्ञान

की उन्नति ने संसार में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन कर दिये। मशीनों ने मनुष्यों का काम पूरा करना प्रारम्भ कर दिया। बहुत से मनुष्य बेकार हो गये। फलतः वर्ग संघर्ष स्थापित हो गये। पूँजी थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में चली गई। साधारण श्रेणी के लोगों के लिये जीवन की समस्या उग्र बन गई। पूँजीपतियों के विरोध में श्रमिक और किसान खड़े हो गये। बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ हुईं और प्राचीन समाज का ढाँचा पूर्णतः बदल गया। इस युग में आर्थिक समस्यायें प्रधान हो गईं और वास्तविकता ने कल्पना का स्थान ग्रहण कर लिया। इस समय भी समाज के अनुरूप ही साहित्य का निर्माण हुआ। लेखक और कवि जीवन के कठोर सत्य को अपनी रचनाओं में स्थान देने लगे। कविता का स्थान गद्य ने ले लिया। वर्त्तमान समय के प्रेमचन्द्र जैसे उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में साधारण श्रेणी के लोगों का चित्रण उनकी वर्त्तमान परिस्थितियों को लेकर ही किया है। जीवन संघर्ष में जनता इतनी व्यस्त रहने लगी कि उसके पास बड़े-बड़े ग्रन्थों को पढ़ने का अवकाश ही नहीं है अतः इस दृष्टि को रखते हुए हिन्दी साहित्य में उपन्यास और नाटकों के स्थान पर कहानी और एकांकी नाटक लिखे जाने लगे। वर्त्तमान काल की उच्च साहित्यिक रचनाओं में जीवन की वास्तविक कठोरताओं का ही वर्णन होता है।

इस समय प्राचीन काल के जैसे निरंकुश राजाओं के स्थान पर जनतन्त्री राज्य स्थापित हो गये हैं। जनता की राय ही सर्वोपरि समझी जाती है और एक प्रकार से शासनाधिकार जनता के ही हाथ में आगया है। अतः अब के साहित्य में चाटुकारिता और प्रशंसात्मक काव्य का पूर्ण अभाव है। लेखकों और कवियों की कृतियों में साधारण श्रेणी के लोगों

की समस्याओं का ही वर्णन अधिक होता है।

साहित्यकार और कर्त्तव्य—हिन्दी साहित्य के तीन विभाग करके हमने देखा कि किस प्रकार समाज के साथ-साथ उसके साहित्य में भी परिवर्त्तन आता गया। सभी समय के साहित्य में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के नग्नरूप का दर्शन मिलता है। परन्तु साहित्यकार का कर्त्तव्य समाज को केवल प्रतिबिम्बित कर देने में ही समाप्त नहीं हो जाता। एक कवि या लेखक पहिले समाज की भावनाओं का अध्ययन करता है, उसका चित्रण करता है और अन्त में उसका आदर्श रूप सामने रखता है। यदि साहित्यकार ऐसा न करे तो उसका महत्व ही नहीं रहता। जब समाज में दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है, लोगों में विलासिता बढ़ जाती है, अत्याचारी शासकों के उत्पीड़न से जनता में त्राहि-त्राहि होने लगती है, तब साहित्यकार तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, टाल्सटाय, मैक्सिम गोर्की और रूसो के रूप में प्रकट होती है। अपनी रचनाओं के द्वारा वह जनता की दुर्बलता विलासिता और भीरुता को उखाड़ फेंकता है एवं उनमें नवीन शक्ति और स्फूर्त्ति का संचार करता है। मनुष्य की उदात्तवृत्तियों को जाग्रत कर देना साहित्यकार का ही काम है। श्रेष्ठ साहित्यकार समाज के निर्माणकर्त्ता होते हैं, समाज उनके पीछे-पीछे चलता है।

उपसंहार—हर्ष का विषय है कि वर्त्तमान काल में हिन्दी साहित्य उन्नति के पथ पर अग्रसर है। यद्यपि अभी यह विदेशी साहित्यों से पिछड़ा हुआ है। हमारी जन-प्रिय सरकार ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन कर दिया है अतः आशा है कि हमारा साहित्य उत्तरोत्तर उन्नति करता

जायगा और अपने अनुरूप ही समाज का निर्माण करता चलेगा।

पुस्तकों का चरित्र निर्माण पर प्रभाव

अजमेर—१६४२

प्रस्तावना—मनुष्य के चरित्र पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है। बचपन के साथी, माता पिता, पड़ौस, समाज, शिक्षा और पुस्तकें आदि कई बातें चरित्र के बनाने या बिगाड़ने में सहायक होती हैं। यदि मनुष्य शिक्षित है और वह पुस्तकों को पढ़ता रहता है तो उसके चरित्र को जानने का सबसे अच्छा साधन उसकी पुस्तकें हैं। कहावत है कि किसी मनुष्य के साथियों से ही उस मनुष्य का चरित्र जाना जा सकता है। पुस्तके भी मनुष्य के साथी के रूप में होती हैं अतः उसके चरित्र-निर्माण पर उनका विशेष प्रभाव होना स्वाभाविक ही है।

पुस्तकें सर्वोत्तम मित्र हैं—एक श्रेष्ठ पुस्तक मनुष्य के सर्वोत्तम मित्रों में हो सकती है। जैसी यह आज है, वैसे ही पहले थी और वैसी ही भविष्य में रहेगी। मित्रों के स्वभाव और व्यवहार में अन्तर आ सकता है, मित्र कभी शत्रु भी हो जाते हैं परन्तु पुस्तकें हमारा साथ कभी नहीं छोड़तीं, उनका व्यवहार हमारे साथ सदैव एकसा रहता है। पुस्तकों से बढ़कर विश्वासपात्र मित्र और कौन हो सकता है? युवावस्था में जिस प्रकार एक उत्तम पुस्तक हमारे मन को उत्साहित करती है, उसी प्रकार बुढ़ापे में वह हमारा पथ-प्रदर्शन करती है।

पुस्तकों से लाभ—किसी श्रेष्ठ लेखक की पुस्तक, चाहे वह उपन्यास हो, चाहे जीवनी, गद्य हो अथवा पद्य, हमारे हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है। कैसी तन्मयता से हम उसके अध्ययन में लग जाते हैं। उसकी प्रत्येक बात हमें अपनी बात लगती है। पुस्तक का वातावरण, हमारा अपना वातावरण बन जाता है। लेखक के विचार हमारे विचारों को आच्छादित कर लेते हैं और हम अपने को उसी के विचार-जगत में पाते हैं। मनुष्य की दुनिया क्या है? अधिकांश में उसके विचारों की ही दुनियाँ है। श्रेष्ठ पुस्तकों में सुन्दर विचार और श्रेष्ठ भाव ही तो होते हैं। हम उन्हें पढ़ते हैं और स्मरण कर लेते हैं। ये ही विचार जीवन-पर्यन्त हमारा साथ नहीं छोड़ते और हमारे व्यक्तित्व का एक आवश्यक अङ्ग बन जाते हैं, हमारे चरित्र के निर्माता हो जाते हैं।

पुस्तकों के ज्ञान की अमरता—पुस्तकों की आत्मा अमर होती है। मानव-कृत सभी वस्तुओं से पुस्तक कहीं अधिक समय तक जीवित रहती हैं। बड़े-बड़े आलीशान मन्दिर और महल ढह जाते हैं, चित्र और मूर्त्तियाँ नष्ट हो जाती है। परन्तु पुस्तकें बनी रहती हैं अपने विचारों के रूप में। विचारों पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे आज भी उतने ही नवीन हैं जितने कि अपने जन्म के समय थे। महात्मा बुद्ध, स्वामी रामतीर्थ, तुलसीदास, ईसामसीह, सुकरात आदि के वचन हमारे हृदयों में आज भी वैसे ही रस की वर्षा करते हैं।

पुस्तकों के द्वारा हम सर्वोत्तम समाज में प्रवेश करते हैं, उनके द्वारा ही हम संसार के महान मस्तिष्कों के सम्पर्क में आते हैं। हम पुस्तकों में महापुरुषों की वाणी सुनते हैं, उनके कार्यों को देखते हैं। हमें अनुभव होने लगा है कि मानों

आज भी वे दिव्य आत्मायें हमारे सम्मुख उपस्थित हैं और हम उनके कार्यों में सहयोग कर रहे हैं। कभी हम उनके साथ सहानुभूति प्रकट करने लगते हैं कभी प्रसन्नता। कभी हम उनमें दुख से द्रवीभूत हो उठते हैं और उनके साथ रोने लगते हैं। उनके अनुभव, हमारे अनुभव हो जाते हैं। उनके वर्णित दृश्यों में हम अपने को प्रमुख अभिनय-कर्त्ता के रूप में पाते हैं।

पुस्तकों के द्वारा, महापुरुषों के समाज में प्रवेश धनी और निर्धन समान रूप से कर सकते हैं। जो पढ़ना जानता है, वही इस समाज में निःसंकोच जा सकता है। जो हँसना चाहता है, उसे इस समाज में हँसाने वाले बहुत मिलेंगे, जो रोना चाहता है, उसे रुलाने वालों की कमी न रहेगी। यदि तुम्हारे साथ सहानुभूति प्रकट करने वाला इस संसार में कोई नही है, यदि तुम्हारे दुखों और कष्टों को सुनने वाला यहाँ कोई नहीं मिलता तो किसी महा-पुरुष की जीवनी को उठा लीजिये। तुम जो कुछ चाहते हो, वह अवश्य तुम्हें मिलेगा। तुम्हारा मनोरथ अवश्य ही पूरा होगा।

पुस्तकों का चरित्र पर प्रभाव—पुस्तकों के समाज में प्रवेश करके भला कौन अछूता बन सकता है। जब पुस्तकें हमें रुला सकती हैं, हमें हँसा सकती हैं, हमें उत्साह का संचार कर सकती हैं, हमें वीर बना सकती हैं, सांसारिक बना सकती हैं, और दार्शनिक बना सकती हैं तो चरित्र की कौन-सी बात शेष रह जाती है? जीवन चरित्रों का मनुष्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है। किसी महपुरुष की जीवनी में, उसके कार्यों, उसके रहन-सहन के ढंगों आदि का वर्णन होता है और इन्हें पढ़ने में सभी को बहुत आनन्द आता है। मनुष्य स्वभाव ही से अनुकरण शील होता है अतः जो कुछ हम

जीवन चरित्र सम्बन्धी पुस्तकों में पढ़ते हैं, उसे अपने जीवन में भी व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते हैं।

राम चरित मानस का प्रभाव—राम चरित मानस श्री राम का जीवन चरित्र ही है। तुलसीदासजी ने यह ग्रन्थ लिख कर हिन्दू जाति के साथ महान उपकार किया है। इस महाकाव्य में राम के जीवन के सभी अङ्गों पर तुलसीदास ने पूर्ण प्रकाश डाला है, कोई अङ्ग अछूता नहीं छोड़ा। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में हमारे सामने रक्खा है। इसमें राम का चरित्र-चित्रण इतनी कुशलता से किया है कि उसका हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसमें नैतिक, सामाजिक धार्मिक एवं पारिवारिक जीवन के उच्च आदर्शों का वर्णन किया गया है। यही कारण है कि यह पुस्तक हिन्दू जाति की सर्व-प्रिय पुस्तक है। इसे पढ़कर न जाने कितनों ने अपना जीवन सुधार लिया, कितनों ने दुष्कर्म छोड़ दिये। कठोर से कठोर हृदय वाला व्यक्ति भी राम चरित मानस को पढ़ कर पसीज उठता है, उसके जीवन में परिवर्त्तन आने लगता है। कौन ऐसा हिन्दू है जिसे रामायण की दो चार चौपाई भी स्मरण न हों ? गाँवों के लोगों में तो बात बात पर चौपाई कही जाती हैं। वास्तव में इस महा-काव्य ने मनुष्य के ही क्या अपितु पूरे समाज के चरित्र-निर्माण पर असाधारण प्रभाव डाला है।

धार्मिक ग्रन्थों के प्रभाव—महाभारत, गीता, सुखसागर आदि भी हमारे धार्मिक ग्रंथ ऐसे हैं जिनसे हमें समय-समय पर शिक्षा मिलती रहती है और उनके अनुसार हम अपने जीवन को सुधारते रहते हैं। इस वैज्ञानिक युग में भी हिन्दू धर्म जीवित है। अनेकों विदेशी आक्रमण हुए, अनेकों राज्यों ने पलटा खाया और अनेकों बार ही हिन्दू धर्म पर कुठारा-

घात हुए। परन्तु हमारे धार्मिक ग्रंथ बराबर हिन्दू जाति का मार्ग प्रदर्शित करते रहे। हमारे पूर्वजों के सदुपदेश हममें बल और उत्साह भरते रहे। यही कारण है कि हिन्दू-धर्म की नींव अभी तक दृढ़ बनी हुई है। पुस्तकों का कैसा शक्तिशाली प्रभाव होता है।

महापुरुषों पर पुस्तकों का प्रभाव—उत्कृष्ट पुस्तकों का जीवन और चरित्र पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। महात्मा गान्धी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि टाल्स्टाय के ग्रन्थों को पढ़कर ही उनका अहिंसा की नीति में विश्वास हुआ और तब से अहिंसा उनके जीवन का मुख्य सिद्धान्त बन गया। कार्लमार्क्स की पुस्तकों को पढ़ कर लेनिन ने अपने जीवन का ध्येय ही बदल दिया। स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानंद आदि महापुरुष पुस्तकों के अध्ययन से ही संसार में प्रसिद्ध हुए। संसार के जितने भी महान पुरुष हुए हैं उन्होंने अपनी जीवन कथाओं में एक या दूसरी पुस्तक के प्रभाव को स्वीकार किया है। पुस्तकों के द्वारा ही अपने ध्येय के प्रति उनमें आकांक्षा जाग्रत हुई और अपने पूर्व पुरुषों के जीवन चरित्रों से ही वे अपने कार्य में उत्साहित होते रहे।

बुरी पुस्तकों का प्रभाव—जिस प्रकार अच्छी पुस्तकों का अच्छा प्रभाव होता है, उसी प्रकार बुरी पुस्तकों का प्रभाव बुरा पड़ता है। अश्लील कहानी और उपन्यास पढ़कर छोटे-छोटे बच्चे गन्दी आदतों में पड़ जाते हैं, उनके विचार वैसे ही बन जाते हैं। जो पुस्तक मिल जाय, उसी को उठाकर पढ़ने लगना ठीक नहीं। आजकल निम्नकोटि की पुस्तकों की बाजार में कमी नहीं। विद्यार्थियों को चाहिये किसी भी पुस्तक को पढ़ने से पहले उसके विषय में अपने गुरुजनों से

परामर्श ले लें अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि ही उठानी पड़ेगी। पुस्तकों के पढ़ने के विषय में अँगरेजी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक एमर्सन ने निम्नलिखित परामर्श दिया है—

(१) जो पुस्तक एक वर्ष से कम पुरानी हो, उसे कभी नहीं पढ़ना चाहिये।

(२) जो पुस्तक प्रसिद्ध नहीं हुई है, उसे नहीं पढ़ना चाहिये।

(३) जिस पुस्तक को तुम नहीं चाहते हो, उसे मत पढ़ो।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि उक्त नियम सर्वथा ही लागू होते हैं फिर भी उनमें कुछ तथ्य अवश्य है। तात्पर्य यह है कि किसी भी पुस्तक को उठा कर पढ़ने लगना ठीक नहीं। सदैव अच्छी और श्रेष्ठ पुस्तकें ही पढ़नी चाहिये।

वर्त्तमान युद्ध और उसका संसार व्यापी प्रभाव

उ० प्र० १६४२

अजमेर १६४४

युद्धों का भय—आज समूचे संसार के सम्मुख युद्धों को रोकने की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण समस्या है। पिछले सन् ४० के महायुद्ध के संसार व्यापी प्रभाव ने सभी राष्ट्रों की आँखें खोल दी हैं। परन्तु दुख की बात तो यह है कि सभी देश युद्धों के रोकने में जितने ही प्रयत्न शील हैं, युद्धों का भय उतना ही बढ़ता जा रहा है। सभी राष्ट्रों में शक्ति शाली बनने की परस्पर प्रतियोगिता हो रही है। सन् ४० के यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध सदैव के लिये बन्द हो जायँगे और संसार अब सुख

की नींद सो सकेगा। परन्तु हमारी वह कल्पना कितनी निराधार निकली। जो मित्र-राष्ट्र जर्मनी और जापान जैसे आततायी कहे जाने वाले देशों को पराजित करके युद्ध को सदैव के लिये मेंट देने के लिये कटिबद्ध दिखलाई पड़ते थे, जो शोषित देशों के उद्धारकर्त्ता होने का दम्भ भरते थे और जो पराजित राष्ट्रों को ही युद्ध का एक मात्र कारण समझते थे, आज उन्हीं मित्रराष्ट्रों में युद्ध के ताण्डव नृत्य की तैयारियाँ हो रही हैं। धीरे-धीरे युद्ध की चिनगारी सुलग रही है। यदि अमेरिका, रूस को दोषी ठहराता है तो रूस, अमेरिका को आक्रमणकारी राष्ट्र घोषित करता है। एक ओर तो सुरक्षा परिषद् की बैठकों में परमाणु बम्ब पर नियंत्रण होने और सैनिक संख्या सीमित कर देने के प्रस्ताव हो रहे हैं और दूसरी ओर ठीक इसके विपरीत कार्य-विधियाँ काम में लाई जा रही हैं। परमाणु बम्ब के स्थान पर उससे कहीं अधिक विनाशकारी और विध्वंसक हाइड्रोजन बम्ब बनाये जा रहे हैं। सैनिकों की संख्या घटाने के स्थान पर अनिवार्य सैनिक-भर्ती के आदेश दिये जा रहे हैं। छोटे-छोटे देशों को पारस्परिक शक्ति-प्रदर्शन के हेतु अपरोक्ष रूप से युद्ध का अखाड़ा बनाया जा रहा है। ये कैसा छल और कपट का व्यापार है?

ये शक्तिशाली राष्ट्र चाहे भले ही यह समझते हों कि दुनिया को वे धोखा दे सकते हैं, परन्तु काठ की हाँडी बार-बार नही चढ़ सकती। सभी जानते हैं कि जितना ही अधिक शान्ति रखने का प्रचार किया जाता है, युद्ध की संभावना उतनी ही अधिक निकट आती जाती है। वह दिन दूर नहीं जब कि संसार फिर एक बार रणचण्डी का आह्वान करेगा और युद्ध की लपटें सभी को निगल जाने के लिये लपलपा

उठेंगी। दुर्भाग्यवश यदि ऐसा हुआ जैसी कि संभावना है, तो मानव का भविष्य क्या होगा इसकी कल्पना ही रोमांचकारी है। घटना चक्र तेजी से घूम रहा है। अदम्य प्रेरणा उसे आगे बढ़ाती है और एक घटना दूसरी से आगे बढ़ जाती है। भौतिक शक्तियाँ दुनियाँ को इधर-उधर दौड़ा रही हैं। पुरुष और स्त्रियाँ भाग्य के हाथ के खिलौने हो रहे हैं और युद्ध के भँवर में खिंचे चले आ रहे हैं। हम सब और संसार किधर जायगा? इस संघर्ष का जिसमें कि राष्ट्र अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील हैं, क्या होगा? यह कोई नहीं कह सकता। फिर भी अनुभव के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि संसार नष्ट हो जायगा। आगे क्या होगा, यह कल्पनातीत है।

युद्ध के कारण—शस्त्रों के संघर्ष के पीछे सिद्धान्तों और शान्ति के उद्देश्य बताये जाते हैं परन्तु इन उद्देश्यों की आड़ में क्या छिपा हुआ है, इसे सभी जान गये हैं। प्राचीन समय में भी युद्ध होते थे परन्तु उनके कारण सुस्पष्ट थे। राज्य लिप्सा, प्रेम, ईर्ष्या, घृणा आदि वैयक्तिक भावनाओं से प्रेरित होकर ही एक राजा दूसरे राजा से लड़ बैठता था। परन्तु आधुनिक युद्धों का एक मात्र उद्देश्य साम्राज्य भावना ही है। जो राष्ट्र पहिले से ही साम्राज्य का विस्तार कर चुके हैं, वे उसे स्थिर रखना चाहते हैं, जिनके पास नहीं है, वे प्राप्त करना चाहते हैं। समाजवाद, प्रजातंत्रवाद, साम्यवाद, जनतंत्रवाद आदि लुभावने उद्देश्यों की आड़ में साम्राज्य-लिप्सा ही कार्य कर रही है। संकुचित राष्ट्रीयता की भावना सभी देशों में घर कर गई है। वर्त्तमान युद्धों के कुछ आर्थिक कारण भी हैं। प्रत्येक देश अपने व्यापार को बढ़ाना चाहता है और उसे बढ़ाने के लिये बाजार चाहिये और यह बाजार

आश्रित देशों में ही सबसे अच्छा मिल सकता है। शक्ति बढ़ाने के लिये साधनों की आवश्यकता होती है और जब अपने देश में समुचित साधन-व्यवस्था नहीं मिलती तो अन्य देशों पर अधिकार की भावना जाग्रत हो उठती है। अतः इस भावना की पूर्त्ति के उद्देश्य में, विविध प्रकार के आकर्षणीय सिद्धान्तों की आड़ लेकर सबल राष्ट्र, निर्बल राष्ट्रों को अपने आधीन करना चाहते हैं और इसी परस्पर प्रतियोगिता में युद्धों की अनिवार्यता प्रकट हो उठती है।

आधुनिक युद्धों से हानियाँ—पहिले समय में युद्धों में प्रयोग किये जाने वाले साधन ऐसे थे जिनसे अब की अपेक्षा बहुत ही कम संहार होता था। तलवार और बर्छों की लड़ाई होती थी। कुछ बाद में बन्दूक और तोपों का भी प्रयोग होने लगा था परन्तु वे भी आधुनिक अस्त्र शस्त्रों की तुलना में नगण्य थीं। पिछले यूरोपीय. युद्ध में जिन हाथियारों का प्रयोग हुआ है उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि आगामी युद्ध में मानव जाति का भविष्य कितना संकट पूर्ण है। परमाणु-बम्ब का विनाशकारी प्रभाव जापान के दो नगरों के विध्वंस से प्रकट हो गया। अब तो और भी अधिक भयानक परमाणु-बम्ब बन गये हैं। इन बम्बों से अपार धन और जन की हानि होती है। नगर के नगर भस्मी-भूत हो जाते हैं। वर्षो के परिश्रम से तैयार किये हुए महल, सड़कें, पुल, बाँध, कारखाने और सभी कुछ उपयोगी निर्माण देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं।

युद्ध के समय में उपर्युक्त हानियों के अतिरिक्त, युद्ध की संभावना के समय में भी अनेक प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ती हैं। समूचा शान्ति का वातावरण ही छिन्न-भिन्न हो जाता है। इस विश्व में मानव की उत्पत्ति युद्धों में लड़कट कर

मरने से लिये तो नहीं हुई है। मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य तो अधिक से अधिक सुख और शान्ति प्राप्त करना है। परन्तु युद्धों की संभावना से यह उद्देश्य तो विलुप्त हो गया है, शान्ति के समय में मनुष्य साहित्य, ललित-कलाओं, उपयोगी उद्योग धंधों, मानव सुख वृद्धि के सहायक वैज्ञानिक आविष्कारों आदि कार्यों में व्यस्त हो जाता है। परन्तु आज इन सभी कार्यों से तिलाञ्जलि दे दी गई है। प्रत्येक देश में जनता को भारी कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। खाद्यान्नों का अभाव हो रहा है। सर्वत्र ही खाद्य संकट फैला हुआ है और भुखमरी का राज्य है। आये दिन सैकड़ों ही व्यक्ति अन्न के अभाव में मर जाते हैं। यही बात कपड़े तथा अन्य दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में है। यातायात के साधन बहुत ही थोड़े रह गये हैं और उनसे बढ़ती हुई जन-संख्या की आवश्यकताओं की पूर्त्ति नहीं हो पाती। जो कुछ भी थोड़े बहुत साधन हैं वे युद्ध सम्बन्धी कार्यों में अधिकतर व्यवहारित होते रहते हैं। समाचार पत्रों पर नियंत्रण होने के कारण लोगों के कानों तक सच्ची खबरें नहीं पहुँच पातीं। समाचारों में अधिकतर प्रचार-नीति को ही अपनाया जाता है। इससे जनता का विश्वास समाचार-पत्रों से उठ गया है। झूठी अफवाहें शीघ्र ही फैल जाती हैं और हर समय लोग भयभीत से रहते हैं।

युद्ध संकट और भारतवर्ष—आज संसार की जैसी स्थिति है, उसे अनुभव करके यही कहना पड़ता है कि आधुनिक युद्ध के प्रभाव से भारतवर्ष भी बच नहीं सकता। कोई देश वर्त्तमान युद्धों में सक्रिय रूप से भाग ले या न ले परन्तु एक या दूसरे प्रकार से उसे युद्ध में सम्मिलित होना ही पड़ता है। पिछले युद्ध में भी भारतवर्ष ने सक्रिय भाग नहीं लिया था

परन्तु उसके देशव्यापी प्रभाव से वह अछूता नहीं रहा था। यही बात अब आगामी संभावित विश्व-युद्ध के विषय में भी है। सभी तटस्थ राष्ट्रों को युद्ध का भय लगा हुआ है और किसी को पता नहीं कि किस समय युद्ध छिड़ जाय। अतः भारतवर्ष भी अपनी स्थिति दृढ़ करने के प्रयत्न में लगा हुआ है। न चाहते हुए भी परिस्थितिवश भारत को युद्ध में घसीटा जा सकता है और यदि ऐसा हुआ तो इस नव-निर्मित राष्ट्र की स्वतंत्रता का भविष्य संकट पूर्ण हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। अभी से भावी युद्ध की संभावना में यहाँ संकट के बादल मंडराने लगे हैं। जनता में कहीं शान्ति नही। भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करली है परन्तु युद्ध की आशंका से यह स्वतंत्रता उसके लिये दुखदायी हो रही है। फिर भी उसे धैर्य से काम लेना ही पड़ेगा। अन्य देशों की भाँति इस देश के लिये भी भारी परीक्षा का समय है। अगर हम इस परीक्षा में असफल हुए तो पीछे रह जायँगे। आज आवश्यकता इस बात की है कि अपने सभी आन्तरिक मत भेदों को मिटा कर राष्ट्र को दृढ़ करने के प्रयत्न में कटिबद्ध हो जायँ। भारतवर्ष और संसार की स्वतंत्रता के महान लक्ष्य के लिये राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता है। यदि हम अपने साधारण कलहों को जारी रक्खेंगे, धार्मिक भावनाओं के झूठे विश्वासों पर चलेंगे, देश में एकता लाने का प्रयत्न न करेंगे तो निश्चय ही अपने भविष्य को अन्धकार पूर्ण बना लेंगे। आवश्यकता है आज हमें अपने महापुरुष महात्मा गान्धी के पदचिह्नों के अनुसरण की। आवश्यकता है आज भारतवर्ष को संसार के मार्ग-प्रदर्शन की। आज इस संकट काल में दुनिया के शान्ति-प्रिय देश, भारत की ओर आशापूर्ण नेत्रों से टकटकी लगाये देख रहे हैं।

उपसंहार—जब वर्त्तमान समय में संसार के सम्मुख युद्धों का भय बना हुआ है और मानव-जाति का भविष्य संकट में है तो प्रत्येक देश का और प्रत्येक व्यक्ति का यह महान कर्त्तव्य है कि वह युद्धों को रोकने का सतत प्रयत्न करे। इतिहास साक्षी है कि युद्ध द्वारा, युद्ध कभी-बन्द नहीं किये जा सकते। क्रान्ति से शान्ति नहीं स्थापित की जा सकती। जब तक कि सभी देश वैयक्तिक स्वार्थ-भावना का परित्याग करके सामूहिक हित-भाव के उद्देश्य को नहीं अपनायेंगे तब तक युद्धों की संभावना मिट नहीं सकती। किसी भी देश को आज पाशविक शक्ति के प्रयोग के अधीन नहीं रक्खा जा सकता संसार के सभी देश और सभी व्यक्ति समान हैं। कोई किसी पर शासन करने के लिये नहीं। अतः विश्व शान्ति और विश्व समानता के सिद्धान्तों को आगे रख कर हम अहिंसा द्वारा ही संसार में शान्ति स्थापित कर सकते हैं और युद्धों को सदैव के लिये रोक सकते हैं।

———

उपन्यास पढ़ने से हानि-लाभ

अजमेर—१९४६

प्रस्तावना—गद्य साहित्य में उपन्यासों का प्रमुख स्थान है। थोड़े से ही समय में उपन्यास-कला ने काफी उन्नति करली है। हिन्दी साहित्य में तो उपन्यासो की भर मार हो गई है। प्रति दिन ही मासिक पत्रिकाओं में नवीन उपन्यासों की समालोचना पढ़ने को मिलतीं रहती है। उच्चकोटि के उपन्यासों की भी अब हिन्दी साहित्य में कमी

नहीं रही। इस उपयोगी अंग की हमारे साहित्य में वृद्धि होना हर्ष की बात है।

उपन्यासों का प्रेम—पढ़े लिखे लोगों में उपन्यास प्रेमियों की संख्या बहुत बड़ी है। नवयुवक तो विशेष कर उपन्यास और कहानी पढ़ने को उत्सुक रहते हैं। अवकाश के क्षणों में, रल-यात्रा में, घर और बाहर सभी लोग थोड़े बहुत समय के लिये उपन्यास अथवा कहानियों से अपना मनोरंजन करते हैं। उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता उनके मनोरंजन-कारी होने में है। मनोरंजन के लिये ही उपन्यास पढ़े जाते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री के 'चन्द्रकांता संतति' और 'भूतनाथ' उपन्यासों ने न मालूम कितने लोगों का मनोरंजन किया है। कम पढ़े लिखे लोगों के लिये तो ये उपन्यास उनके गले के हार हो गये हैं। गाँवों में किसी भी पढ़े लिखे के यहाँ इन पुस्तकों की एक दो प्रति अवश्य देखने को मिलेंगी। इन्हें पढ़ने के लिये ही बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी और यहाँ तक कि बहुत से मुसलमानों को भी 'चन्द्रकान्ता' और 'भूतनाथ' पढ़ने के लिये हिन्दी सीखने को विवश होना पड़ा। आधुनिक श्रेष्ठ उपन्यासों में भी मनोरंजन की प्रचुर सामग्री रहती है।

उपन्यासों का उद्देश्य—परन्तु मनोरंजन करना ही केवल, उपन्यासकार का ध्येय नहीं होता। मनोरंजन के मार्ग से ले जाता हुआ, उपन्यासकर पाठक को किसी गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देता है, जहाँ पहुँच कर पढ़ने वाला संतोष की साँस लेता है। किसी तथ्य अथवा आदर्श तक इतनी सुगमता के साथ पहुँचने के लिये वह लेखक को मन ही मन धन्यवाद देता है।

समय के साथ-साथ लोगों की रुचि भी बदलती रहती है।

एक समय था जब कि रोमांचकारी और तिलस्मी रहस्यों की घटनाओं से उपन्यासों के पृष्ठ रँगे रहते थे। लोगों को तिलस्मी बातों पर विश्वास था रहस्यमय व्यक्तियों पर थी श्रद्धा। जनता की इस रुचि को पहिचानते हुये ही प्रारम्भिक उपन्यास लेखकों ने 'चन्द्रकान्ता संतति' और 'भूतनाथ-जीवनी' जैसे उपन्यासों की रचना की। आधुनिक समय में विज्ञान की उन्नति से लोगों के दृष्टिकोण में भी बहुत अन्तर आ गया। अदृश्य रहस्य में उनके विश्वास की नींव हिल गई। जीवन की कठोरता और वास्तविकता के उन्होंने दर्शन किये। सामूहिक विचार-धारा ही एक प्रकार से बदल गई। जनता की परिवर्त्तित रुचि को साहित्यकारों ने भाँप लिया और तब समूचे साहित्य की मार्ग-दिशा ही तदनुसार बदल गई। वह बदलती क्यों नहीं, आखिर साहित्य समाज का दर्पण ही तो है। लोगों को मनोरंजन की सामग्री प्रदान करने वाला साहित्यकार भी वर्त्तमान जीवन की कठोरताओं से, वैज्ञानिक तत्वों से, जीवन-संघर्ष में विजय पाने वालों के घात-प्रतिघातों, दाँव-पेचों और उनकी असमान मनोवृत्तियों से ही मनोरंजन की सामग्री चुनने में लग गया। हमारे हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द के 'सेवासदन' जयशंकर प्रसाद के 'तितली' और 'कंकाल' जैसे उपन्यास समाज के प्रति विद्रोह-भावना और क्रान्ति का संदेश लेकर इसी समय में उपस्थित हुए हैं। आज का उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र-मात्र है। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है।

उपन्यास पढ़ने के लाभ—उपन्यास का उद्देश्य समझ लेने पर अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपन्यास पढ़ने से क्या लाभ हैं। उपन्यासों में मानव-चरित्र को विभिन्न

परिस्थितियों में डाल कर दिखाया जाता है। उसमें मानव जीवन के घात-प्रति घात, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, करुणा रुदन, सफलता-असफलता और उत्थान पतन आदि के सभी दृश्य आ जाते हैं। इन दृश्यो को पढ़कर हम जीवन के सभी अंगों से परिचित होते हैं और हमारा अनुभव बढ़ जाता है। हमारे भाव विस्तृत होते हैं और संकुचितता नष्ट हो जाती है। उपन्यासों में धनी और निर्धन, शिक्षित, ग्रामीण और नागरिक सभी लोगों के जीवन की झाँकी हो जाती है। ग़रीबों के करुण-क्रन्दन एवं चीत्कार को सुन कर हृदय में सहानुभूति और करुणा का संचार हो जाता है, हमारी सहानुभूति उमड़ पड़ती है। उनके दुख से हम दुखी, और सुख से सुखी होने लगते हैं। करुणापूर्ण वर्णनों को पढ़ कर हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं और सचमुच में रोने लगते हैं। जिन बातों को हमें अपने दैनिक जीवन में देखने का अवसर नहीं मिलता, उन को उपन्यासकार सहज ही दिखला देता है। इस प्रकार उपन्यास पाठ से हमारे कोमल-भावों को उत्तेजना मिलती है और हमारे शुष्क हृदय में सहानुभूति, दया, उदारता आदि श्रेष्ठ भावों का संचार हो जाता है।

उपन्यासकार जनता की भावना बदल देता है— उपन्यासों में दुष्ट और अत्याचारियों के बर्बरतापूर्ण कार्यों का भी चित्र होता है। समाज में किस प्रकार धनी लोग निर्धनों का शोषण करते रहते हैं, जमीदार किस तरह किसानों को सताते हैं, धूर्त्त और चालाक लोग कैसे भोले-भाले और सीधे आदमियों को ठगते हैं, ये सारी बाते हमें उपन्यासों के पढ़ने से ज्ञात हो जाती हैं। अत्याचारियों और दुष्टों के प्रति हम घृणा से भर जाते हैं, उनके प्रति एक

विद्रोह-भावना का बीज हमारे हृदय में प्रस्फुटित होने लगता है। रूस के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक टालस्टाय और मैक्सिम गौर्की के उपन्यासों को पढ़कर जनता ज़ार के अत्याचारों से परिचित हो गई। उसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक क्रान्ति की लहर सी दौड़ गई। उपयुक्त समय पाकर विद्रोह की अग्नि भड़क उठी और उसने ऐसा भयंकर रूप धारण किया कि ज़ारशाही को हमेशा के लिये समाप्त कर दिया। आज रूस में पूँजीवाद के स्थान में, वहाँ के किसानों और मजदूरों की सरकार है। यह सब गौर्की और टालस्टाय के उपन्यासों का ही प्रभाव था। वास्तव में श्रेष्ठ उपन्यासकार जनता की मनोवृत्ति को बहुत कुछ बदल सकता है।

समाज-सुधार—उपन्यासों में मानव-जीवन के चित्रों के अतिरिक्त सामाजिक जीवन का भी चित्रण होता है। समाज में क्या-क्या रूढ़ियाँ प्रचलित हैं, उसमें क्या कमजोरियाँ आ गई हैं और किस-किस जाति के साथ क्या क्या अन्याय समाज की ओर से हो रहा है, इन सभी बातों को उपन्यास-कार खोलकर रखता है। वर्त्तमान सामाजिक उपन्यासों में तो समाज का जीता जागता चित्र होता है। विधवाओं के साथ कितना अन्याय होता है, देश में स्त्री जाति की कैसी दुर्दशा है, बाल-विवाह, बहु विवाह और अनमेल विवाहों से क्या-क्या हानियाँ समाज में हो रही हैं, इन सब विषयों की यथार्थता प्रकट करना उपन्यासकार का मुख्य ध्येय है। सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों को स्पष्ट करके ही लेखक चुप नहीं रह जाता, अपितु उन पर वह ऐसा व्यंग करता है, कि पाठक का हृदय तिलमिला उठता है। अपनी ही समाज में ऐसे भयंकर अपराधों को होते देख, उसकी सुप्त आत्मा जाग उठती है। सामाजिक बन्धनों को तोड़कर, वह

समाज से ऊपर उठना चाहता है। यदि पाठक स्वयं कुछ नहीं कर सकता है, तो दूसरे करने वालों के साथ उसकी सहानुभूति हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास पढ़ने से हमारा दृष्टिकोण सुधारवादी बन जाता है।

ज्ञान-विस्तार—उपन्यास पढ़ने से हमें देश विदेश के घटनाचक्र का पता लगता है। कहाँ क्या हो रहा है और कहाँ की सामाजिक अवस्था कैसी है आदि विषयों पर हमारी जानकारी बढ़ती है। हमारी संकीर्णता दूर हो जाती है और जीवन के विषय में हमारा अनुभव बढ़ता है।

हानियाँ—उपन्यासों के पढ़ने से हानियाँ भी हैं। परन्तु यह बात केवल निम्नकोटि के उपन्यासों के विषय में ही है। तिलिस्मी, जासूसी और ऐयारी के उपन्यासों से जीवन के विषय में कोई शिक्षा नहीं मिलती। उनमें तो बहुत सा समय नष्ट ही होता है। ऐसे उपन्यासों में घटना-चक्र इतना उलझा हुआ रहता है कि पाठक जब तक उन्हें समाप्त नहीं कर लेता तब तक दूसरा काम करने को उसका जी नहीं चाहता। फिर बहुत से उपन्यास आज कल ऐसे भी हैं जिनके पढ़ने से नवयुवकों के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार अश्लील चित्रों के देखने से, सिनेमा में भद्दे दृश्यों के देखने से हृदय में कुत्सित विचार घर कर लेते हैं, उसी प्रकार निम्न उपन्यासों में प्रेम के अश्लील वर्णन् पढ़ने से चित्त चंचल हो जाता है और वासनायें भड़क उठती हैं। अतः उच्चकोटि के उपन्यासों के चुनाव की बड़ी आवश्यकता है।

दूसरी हानि उपन्यासों के पढ़ने से यह भी है कि पढ़ने वाला कल्पना के संसार में उड़ान भरने लगता है। श्रेष्ठ उपन्यासों में पाठक जीवन के आदर्श रूप की झाँकी करता

है। जब वह अपने व्यावहारिक जीवन का आदर्श-जीवन से मेल खाता हुआ नहीं देखता तो उसे बड़ी निराशा होती है। वह समझने लगता है कि संसार में बुराई ही बुराई है और यह रहने योग्य नहीं। हर्ष की बात है कि अब केवल आदर्श प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों की ओर लेखकों की रुचि कम हो रही है और यथार्थवादी उपन्यासों की संख्या बढ़ रही है। यथार्थता के रूप को दिखलाते हुए, आज का उपन्यास-लेखक धीरे-धीरे आदर्श की ओर बढ़ता है। ऐसे उपन्यासों को पढ़कर पाठक, वर्त्तमान और भविष्य में समन्वय स्थापित करने लगता है। न तो वह वर्त्तमान की बुराइयों से एकदम घबड़ा जाता है, और न भावी आदर्श की ओर अंधा होकर दौड़ने लगता है। उसका एक संतुलित दृष्टिकोण बन जाता है।

उपसंहार—उपन्यास पढ़ने के विषय में पाठकों को यह बात भली भाँति स्मरण रखनी चाहिये कि वे किसी उपन्यास को उठाने से पहिले, उसके विषय में अनुभवी पाठकों का परामर्श अवश्य लेलें। निम्नकोटि के उपन्यास पढ़ने से कोई लाभ नहीं, समय व्यर्थ नष्ट करना हो जाता है। अतः खूब पूछताछ करके, और अभिभावकों की राय लेकर ही किसी उपन्यास को पढ़ना चाहिये।

———

आत्म-सम्मान

उ० प्र०—१६४४

आत्म-सम्मान क्या है—अपना सम्मान आप करने के भाव को आत्म-सम्मान कहते हैं। स्वाभिमान और आत्म-सम्मान मिले जुले भाव हैं। जिस मनुष्य को अपनी शक्तियों पर भरोसा है, जिसे अपने ऊपर गर्व है, जिसे अपनी मान-मर्यादा का ध्यान है, वही इस संसार में विश्वसनीय, प्रशंसनीय और श्रद्धेय है। जो व्यक्ति अपना सम्मान आप नहीं कर सकता, उसका दूसरे लोग सम्मान क्यों करने लगे ? जो स्वयं अपने ऊपर भरोसा नहीं करता, दूसरे उस पर भरोसा किस प्रकार कर सकते हैं ? एक विद्वान् ने ठीक ही कहा है, "आत्म-विश्वास की कमी ही हमारी बहुत सी असफलताओं का कारण होता है। शक्ति के विश्वास ही में शक्ति है। वे सबसे कमजोर हैं, चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, जिन्हें अपने आप तथा अपनी शक्तियों पर विश्वास नहीं।"

अब्राहीम लिंकन का कथन है कि तुम भले ही सब आदमियों को कुछ समय के लिये धोखा दे दो, परन्तु सब आदमियों को सब समय के लिये तुम धोखा नहीं दे सकते। यदि हम सम्मान चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे कार्य यह बतलादें कि हम उसके योग्य हैं। एक खोटे सोने की मुहर कब तक सच्चे सोने की कहला कर पूजी जा सकती है ?

आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास—जिस व्यक्ति को अपनी शक्तियों पर भरोसा होता है वह दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। प्रायः ऐसा देखा भी जाता है कि

आत्म-निर्भर व्यक्ति ही की सभी सहायता करना चाहते हैं। परन्तु आत्म-सम्मानी व्यक्ति कभी दूसरों की सहायता यथा-शक्ति स्वीकार नहीं करता। आत्म-विश्वासी के सामने बड़ी-बड़ी शक्तियाँ झुक जाती हैं। वह जिधर अपना पग बढ़ाता है, विजय श्री उधर ही उसके स्वागत में खड़ी मिलती है। फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन बोनापार्ट के अन्दर आत्म सम्मान और आत्म-विश्वास के भाव कूट-कूट कर भरे हुए थे। आत्म-विश्वास के बल पर ही उसने छोटी-छोटी सेनाओं को लेकर अपने से कई गुनी शक्तिशालिनी सेनाओं पर विजय प्राप्त की थीं। एल्बा टापू से भागकर जिस समय उसने फ्रान्स की भूमि पर पैर रक्खा, उसके साथ एक भी सैनिक नहीं था। तत्कालीन फ्रांस के बादशाह ने नैपोलियन को रोकने के लिए बड़ी-बड़ी सेनायें भेजीं। सेना के निकट आने पर नैपोलियन ने अपने कोट के बटन खोल दिये और आगे बढ़कर कहा, "सैनिको ! अपने सम्राट पर गोली चलाओ, तुम्हारी गोलियों के लिये उसने छाती खोल दी है।" नैपो लियन ने जिस आत्म-विश्वास के साथ ये शब्द कहे थे, उसने जादू का सा काम किया। फ्रान्सीसी सेनाओं की बन्दूकें झुक गईं और वे सब अपने भूतपूर्व सम्राट (नैपोलियन) के साथ मिल गईं हवा से डगमगाती हुई नौका को देखकर मल्लाह घबराने लगे। तब सीजर ने कहा था, घबराओ नहीं, नाव डूब नहीं सकती, उसमें सीजर और उसका भाग्य है। राज-पूताने का इतिहास स्वाभिमान के उदाहरणों से भरा पड़ा है। लाखों राजपूतों ने अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये अपने जीवन की आहुति चढ़ादी। सहस्रों वीराङ्गनाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा हँसते हँसते अग्नि में कूद कर की तभी तो विश्व के इतिहास में राजपूत जाति का नाम स्वर्णाक्षरों में

लिखा हुआ है। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी आदि भारतीय वीरों की स्वाभिमान गाथायें आज तक हिन्दू जाति के भाल को उन्नत किये हुए हैं।

आत्म-सम्मान और घमंड—बहुधा आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास रखने वाले व्यक्ति को घमंडी कहा जाता है यह नितान्त मिथ्या धारणा है। घमंडी व्यक्ति अपनी शक्तियों का मूल्य सदैव ही वास्तविकता से अधिक लगा लेता है। वह दूसरों को अपने सामने तुच्छ और निम्न भी समझ लेता है। परन्तु आत्म-सम्मान करने वाला व्यक्ति दूसरों का उतना ही सम्मान करता है जितना अपना। आत्म-सम्मान तो उन्हीं सिद्धान्तों पर आश्रित है जिन पर दूसरों का सम्मान करना अवलम्बित है। निसंदेह अधिकांश व्यक्ति अहंकारी होते हैं, परन्तु आगे चलकर महान् बनने वाले व्यक्तियों के ऐसे शब्द उनकी शक्तियों और उनके अपने विश्वास के आधार पर कहे जाते हैं। बड़े व्यक्ति सदैव अपनी योग्यता के मूल्य को समझ कर उसी के अनुसार आत्म-विश्वास रखना जानते हैं। कवि वर्ड्सवर्थ कहा करता था कि इतिहास में उसका कौनसा स्थान होगा। जर्मनी का प्रसिद्ध कवि गेटे अपने भाग्य का निर्णय पहिले ही कर चुका था।

जो व्यक्ति यह जानता है कि वह क्या है वह यह भी जान लेगा कि उसे क्या होना चाहिये। यदि विचारों में आत्म-सम्मान होगा तो व्यवहार में तो अपने आप ही आ जायगा। दृढ़ता के साथ साधनों पर बार-बार अधिकार घोषित करने वाला, वास्तव में उनका अधिकारी हो जाता है। एक विद्वान् ने कहा है कि "नम्रता बुद्धिमानी का एक अङ्ग है और मनुष्यों के लिये शोभनीय है। परन्तु किसी को भी अपना आत्म-सम्मान घटाना नहीं चाहिये। वही मनुष्य की

मनुष्यता का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

आत्म-सम्मानी व्यक्ति अपनी कमजोरियों पर विजयी होता है—जिस व्यक्ति के अन्दर आत्म-सम्मान होता है, दूसरे उच्च गुण तो स्वतः ही आ जाते हैं। मनुष्य के दुर्गुणों को वश में रखने की पहिली लगाम आत्म-सम्मान ही है। जो व्यक्ति अपना सम्मान करता है, वह दूसरों से भी सम्मानित होना चाहता है। उसका चाहना केवल इच्छारूप में ही नहीं होता, अपितु अपने व्यवहार से वह दूसरों का सम्मान प्राप्त करता है। अत: ऐसे व्यक्ति को अपनी कमजोरियों को दूर करना पड़ता है, और अवगुणों से वचना होता है। समाज तो गुणवान और शक्तिशाली का ही आदर करता है। आत्म-सम्मानी व्यक्ति अपने भीतर छोटी से छोटी कमजोरी भी नहीं रहने देता क्योंकि न मालूम कब और किस समय उसके द्वारा, उसके सम्मान को ठेस लग जाय।

आत्म-सम्मान ही नैतिकता की कुञ्जी है—आत्म-सम्मान रखने वाला व्यक्ति, अपने में अधिक से अधिक नैतिकगुणों को विकसित करता है। जिसके अन्दर स्व-सम्मान का भाव जितना ही गहरा होगा, उतना ही वह नैतिक दृष्टि से उच्च होगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आत्म-सम्मान, नैतिकता की कुञ्जी है। वह चरित्र का सब से मूल्यवान तत्त्व है।

आत्म-सम्मानी के लिये आत्म-निर्भरता तो सब से पहिली वस्तु है। विना आत्म-निर्भरता के वह अपने सम्मान की रक्षा कर ही नहीं सकता। अत: वह स्वावलम्बी भी होता है। अपने पैरों पर आप खड़ा होना, 'अपनी रक्षा आप करना, और अपनी सहायता के लिये किसी दूसरे की अपेक्षा न करना, किसी स्वावलम्बी के लिये आवश्यक होता है। आत्म-

निर्भरता अथवा स्वावलम्बन हँसी-खेल की वस्तु नहीं। उसके लिये कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, अपना तन, मन और धन सब कुछ न्यौछावर कर देना पड़ता है।

"स्वावलम्ब की एक झलक पर न्यौछावर कुवेर का कोप" कवि ने क्या ही ठीक कहा है। महाकवि शेक्सपियर ने एक स्थान पर कहा है—"जो कमजोर, परावलम्बी और आगा-पीछा करने वाले हैं, वे आत्म-निर्भर रहने वालों के उदार अहंकार को समझ नहीं सकते। आत्म-निर्भर मनुष्य को इस बात की खुशी नहीं रहती कि उसे राज-मुकुट मिल गया है, बल्कि इस बात की खुशी रहती हैं कि मुझमें राज-मुकुट प्राप्त करने की शक्ति है।" आगे चल कर वह कहता है—"यदि तुम अपने प्रति सच्चे रहोगे तो जिस तरह रात के पश्चात् दिन का होना निश्चित् रहता है, उसी प्रकार तुम किसी व्यक्ति को धोखा न दोगे।"

उपसंहार—प्रत्येक व्यक्ति, जो इस संसार में जन्म लेता है, वह स्वाभाविक रूप से यह चाहता है कि उसका सम्मान हो, उसे यश और कीर्त्ति प्राप्त हो एवं जिस काम में वह हाथ लगाये, वही सिद्ध हो। इस इच्छा की पूर्त्ति के लिये उसे आत्म-सम्मान और आत्म विश्वास के भावों को विकसित करना होगा क्योंकि शेष सभी बातें इन्हीं के ऊपर निर्भर हैं। अतः मनुष्य की उन्नति के लिये, उसे संसार के मनुष्यों में ऊँचा बनाने के लिये, उसके कार्यों में सफलता और सुन्दरता लाने के लिये आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास की नितान्त आवश्यकता है। आत्म-निर्भरता भी इन्हीं के साथ रहती है।

———

अन्नोत्पादन समस्या

प्रारम्भ—आज भारतवर्ष में अन्नोत्पादन एक जटिल समस्या बनी हुई है। भारतवर्ष की जनसंख्या को देखते हुए यहाँ अन्न की कमी रहती है। लगभग १० प्रतिशत अन्न विदेशों से मँगाया जाता है जिसमें राष्ट्र का बहुत सा रुपया बाहर चला जाता है। हम आये दिन ही विभिन्न प्रान्तों में दुर्भिक्ष और भुखमरी के समाचार सुनते रहते हैं। बंगाल में अन्न की कमी के कारण लाखों व्यक्ति मर गये। यह भुखमरी कभी बंगाल में होती है तो कभी बिहार में, कभी मद्रास में इसकी आशंका हो जाती है तो कभी किसी दूसरे प्रांत में। देश की सरकार को लाखों और करोड़ों रुपये ऐसी स्थितियों का सामना करने में व्यय करने पड़ते हैं, और इस प्रकार देश का आर्थिक ढाँचा बिगड़ता ही चला जाता है। अन्न की समस्या को हल करने के लिये सरकार ने कुछ वर्षों से भागीरथ प्रयत्न किये हैं। 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' का श्रीगणेश बहुत पहिले ही हो चुका है। अन्न का एक-एक दाना बचाने के लिये सरकारी कर्मचारी सर्वत्र प्रचार करते फिर रहे हैं। खाद्यान्नों पर राशन कर दिया गया है और एक निर्धारित सीमा से अधिक अन्न किसी परिवार को नहीं मिलता। सार्वजनिक भोजों, विवाह, उत्सवों आदि व्यावहारिक कार्यों मे नियत संख्या से अधिक व्यक्तियों को भोजन कराने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। थाली में अन्न का एक कण भी मत छोड़ो, पत्तलों पर आवश्यकता से अधिक मत परोसो, झूठन बिल्कुल न छोड़ो आदि ऐसे प्रचार सरकार को करने पड़ रहे हैं जिन पर हँसी आये बिना नहीं रहती। निसंदेह, आन्तरिक समस्याओं में अन्न की समस्या, देश की

वर्त्तमान सरकार के सामने 'लोहे के चने' बन कर खड़ी हो गई है।

भारतवर्ष की प्राचीन खाद्य-स्थिति—भारतवर्ष सभी समय में कृषि-प्रधान देश रहा है। यहाँ की जन-संख्या खेती की ही आय पर निर्भर है। एक समय में यहाँ अन्न खेतों में पड़ा सड़ता रहता था। भारतवर्ष उस समय अपना ही उदर-पूर्ण नहीं करता था, अपितु वह विदेशों का भी अन्न दाता बना हुआ था। अन्न की तो बात ही क्या, यहाँ घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। क्या कारण है जो वर्त्तमान समय में हमारा देश दाने-दाने के लिये तरस रहा है और वह परमुखापेक्षी हो रहा है? कारणों का पता लगाने से ही उनके निराकरण की समस्या हल हो सकती है और खाद्यान्न-संकट का निवारण हो सकता है।

अन्न की कमी के कारण—इनमें कुछ कारण तो ऐसे हैं जो परिस्थितियों के अनुसार पदा हो गये हैं और जिनका दूर होना अत्यन्त ही कठिन है जैसे देश की जन संख्या का बहुत अधिक बढ़ जाना और भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटवारा हो जाना। भारतवर्ष की जन-संख्या में प्रति वर्ष लगभग एक करोड़ की वृद्धि हो जाती है। यदि जन-संख्या की वृद्धि इसी क्रम से होती रही तो खेती की उपज काफी बढ़ जाने पर भी उससे अन्न की माँग किसी प्रकार पूरी न हो सकेगी। इस समय सरकार के सामने बढ़ती हुई जन-संख्या को कम करने की भी समस्या है और जब तक इसको हल न कर लिया जायगा तब तक अन्न की कमी की समस्या बनी ही रहेगी।

भारतवर्ष में लगभग ६० प्रतिशत व्यक्तियों का धन्धा खेती है। भूमि के अनुपात से कृषि करने वालों की संख्या

अत्यधिक है, अतः भूमि बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गई है। गणना करने से पता लगा है कि हमारे देश में प्रति किसान के हिस्से में २.५ एकड़ औसत भूमि है। पिछले साठ-सत्तर साल में एक किसान के अधिकार में होने वाली भूमि का आकार बिलकुल बदल गया है। अँग्रेजों से पहिले और बृटिश राज्य के प्रारम्भिककाल में एक-एक किसान के पास काफी भूमि होती थी और वह बहुधा नौ-दस एकड़ से अधिक होती थी। दो एकड़ से कम भूमि तो किसी किसान के पास शायद ही होती है। अब इस भूमि में दुगुने से अधिक भाग हो गये हैं और इन भागों में से ८१ प्रतिशत भाग दस एकड़ से और कम से कम साठ प्रतिशत भाग ५ एकड़ से छोटे हैं। कृषि विशेषज्ञों ने ६ एकड़ भूमि एक किसान के पास होना आवश्यक समझा है। इससे कम को अलाभकर जोत बतलाया है। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े ही किसानों के पास हैं और वे उसी पर जीवन-निर्वाह करते हैं। थोड़ी भूमि में कृषि करने से प्रति एकड़ औसत उपज बहुत कम होती है, यह बात तो सभी लोग जानते हैं। उपज के कम होने का यह ऐसा कारण है जिसका दूर होना बड़ा ही कठिन है। थोड़ी भी भूमि के स्वामित्व से किसानों को बलात् अलग नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो केवल उन्हें समझाया ही जा सकता है कि वे अपनी भूमि को बड़े किसानों के हाथ बेचकर दूसरे धन्धे करें।

खेतों का टुकड़ों में बँट जाना—अब हम उन कारणों पर आते हैं जिनको आसानी से दूर किया जा सकता है और जिनके द्वारा देश में अन्न की कमी रहती है। पहिला कारण तो यह है जितनी भूमि एक किसान के अधिकार में है, वह भी एक ही स्थान पर नहीं है। कोई खेत कहीं है तो कोई

कहीं। खेतों के बिखरे रहने से उनकी देखभाल भली-भाँति नहीं हो पाती और उनका बहुत सा चारा और अन्न नष्ट होता रहता है। एक ही आदमी कई जगह के खेतों का प्रबन्ध किस प्रकार कर सकता है? दूसरे खेतों के अलग-अलग होने के कारण उन पर श्रम और व्यय भी अधिक पड़ता है। ऐसे खेतों में आधुनिक कृषि-यंत्रों का प्रयोग भी नहीं हो पाता। खेती की कमाई न ठीक होने से, उपज बहुत थोड़ी होती है। बिखरे हुए खेतों को किसान एक ही स्थान पर पालेने से बहुत प्रसन्न होगा और उसकी उपज भी बढ़ जायगी। यह कारण, सरकार के प्रयत्न से ही दूर हो सकता है। उसे चाहिये कि सभी गाँवों में खेतों की चकबन्दी करादे अर्थात् खेतो की अदला बदली इस ढंग से हो जाय कि प्रत्येक किसान को उसके सभी खेत एक ही स्थान पर मिल जायँ। खेतों की चकबन्दी हो जाने से कृषि-उपज बढ़ जायगी।

भारतवर्ष की गरीबी—भारतीय किसानों की गरीबी भी एक ऐसा कारण है जिससे अन्न की उपज पर बहुत प्रभाव पड़ता है। सदियों से किसानों की आर्थिक अवस्था बुरी चली आरही है। जमीदारों के अत्याचार, बृटिश सरकार की पूँजीवादी नीति और महाजनों की अंधा-धुन्धी से भारतीय किसान खोखला हो गया है। वह अपने ऋण-दाताओं के आश्रय के बिना खेत में एक बीज तक नहीं डाल सकता। सभी कामों के लिये उसे अपने महाजन से ऋण लेना पड़ता है। इस ऋण की ब्याज में उसकी खेती का लाभ चला जाता है। जो कुछ भी वह वर्ष भर के अपने गाढ़े परिश्रम से पैदा करता है, उसे वह महाजन की जेब में डाल देता है, यहाँ तक कि उसे अपने खाने के लिये, फसल कमाने के तुरन्त

ही बाद महाजन से अन्न उधार लेना पड़ता है। वर्षों से यही क्रम चला आने से किसान का निराशावादी दृष्टिकोण बन गया है। उसे अपनी खेती में सुधार करने का उत्साह ही नहीं होता। 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन वालों की बात पर उसे विश्वास नहीं होता। फिर जब वह खेती की साधारण वस्तुओं को तो बिना महाजन के रुपये के खरीद नहीं सकता, तो आधुनिक कृषि-यंत्रों के प्रयोग की बात उसे हास्यास्पद लगती है। सरकार जब तक किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त न करायेगी तब तक उनसे उपज बढ़ाने की आशा करना व्यर्थ है। सरकार को चाहिये कि वह एक बार किसानों को बिना व्याज पर रुपया दे ताकि वे अपना पिछला सब ऋण चुका कर नये सिरे से खेती करें। जिन किसानों के पास अधिक भूमि है, उसके लिये नवीन कृषि-यंत्रों का प्रबन्ध करे और उनमें लगाया हुआ रुपया उनसे धीरे-धीरे किश्तों द्वारा वसूल करे। एक बार जब उन्हें नये उपायों का लाभ प्रतीत हो जायगा तो वे उन्हें सदैव ही अपनाते रहेंगे।

पैदावार बढ़ाने के उपाय—उपर्युक्त आधारभूत कारण पर विचार करने के उपरान्त अन्न की उपज, खेती के ढंगों में सुधार करके बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है। अभी गाँवों में खेती के पुराने तरीके ही चले आते हैं। समय के साथ-साथ हमें उन तरीकों को भी बदलना पड़ेगा। उपयुक्त खाद, आवश्यकतानुसार सिंचाई और उत्तम बीज के प्रयोग से अन्य देशों ने प्रति एकड़ औसत उपज को कई गुना बढ़ा लिया है। खेती के लिये खाद की बड़ी आवश्यकता है। बिना उपयुक्त खाद के भूमि की उर्वराशक्ति कुछ समय में नष्ट हो जाती है अतः खाद द्वारा उसकी शक्ति को बनाये रखना आवश्यक होता है। प्रथम तो भारतीय किसान खाद का विशेष मूल्य

ही नहीं समझते, और दूसरे वे जो कुछ थोड़ा बहुत खाद देते हैं, वह अधिक गुणकारी नहीं होते। गाँवों का बहुत सा कूड़ा करकट और गोबर जलाने के काम में ले लिया जाता है जब कि इनका बहुत अच्छा खाद तैयार हो सकता है। सरकार कूडे, करकट और गोबर से कम्पोस्ट खाद बनाये जाने के अङ्गों का प्रचार तो कर रही है परन्तु अभी किसानों का ध्यान इस ओर विशेषरूप से आकर्षित नहीं हो पाया है। खाद के विषय मे अधिक प्रचार करने की आवश्यकता है।

सिंचाई— सिंचाई भी खेती के लिये आवश्यक साधन है। बिना पानी के कोई भी चीज पैदा नहीं हो सकती। सिंचाई के महत्व को तो भारतीय किसान खूब समझता है परन्तु साधनाभाव के कारण वह अपनी फसलों की समय पर ठीक-ठीक सिंचाई नहीं कर पाता। कुएँ से सिंचाई करने में व्यय अधिक पड़ता है अतः कुछ मूल्यवान फसलों को छोड़ कर, अधिकांश फसलें वरुणदेव की कृपा पर छोड़ दी जाती हैं। यदि समय पर वर्षा हो गई तो उनमें पैदावार हो जाती है, नहीं तो उनमें से कुछ दाने ही बटोर कर सन्तोष करना पड़ता है। सिंचाई का प्रबन्ध भी सरकार द्वारा ही हो सकता है। इसके लिये अधिक से अधिक नहरें निकाली जानी चाहिये ताकि उनसे सिंचाई का व्यय कम पड़े। यद्यपि सरकार ने कुछ समय से नहरों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और बहुत सी नहरें निकाली भी गई हैं, परन्तु कृषि-क्षेत्र को देखते हुए उनकी संख्या कम ही है। नहरों के अतिरिक्त नल-कूपों (ट्यूबवैल्स) से भी सिंचाई की जा सकती है। जहाँ पानी की सतह भूमि के पास ही है वहाँ नल-कूपों का बड़ा अच्छा उपयोग हो सकता है। गाँवों में जो लोग स्वयं अपने नल-कूप लगवा सकते हैं, उनके लिये सरकार को बिजली

देने की व्यवस्था करनी चाहिये।

उत्तम बीज—अच्छी उपज के लिये उत्तम बीज भी आवश्यक है। पौधों की बढ़वार और अन्न की उपज अच्छे बीज पर बहुत कुछ अवलम्बित है। उत्तम बीज में, पौधे को बीमारियों से भी बचाने की शक्ति होती है। सरकार ने गाँवों में सभी जगह बीज गोदाम खोल दिये हैं जहाँ से किसानों को अच्छा बीज उधार मिल जाता है। परन्तु बीज गोदामों के कर्मचारियों का जनता के साथ सौहाद्रपूर्ण व्यवहार नहीं रहता, इससे अधिकांश किसान वहाँ के बीजों से लाभ नहीं उठा पाते। दूसरे बीज गोदामों पर किसानों की आवश्यकतानुसार बीज नहीं मिलता। इस विषय में भी सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है।

शिक्षा—भारतीय किसानों की अशिक्षितता भी अन्नोत्पादन में बाधक है। जब तक ग्रामीण जनता शिक्षित नहीं होगी तब तक उससे सुधार के ढंगों को पूर्णरूप से अपनाने की भी आशा नहीं करनी चाहिये। यदि ऊपर बतलाये हुए ढंगों से भारतवर्ष में सरकार और किसान पारस्परिक सहयोग की भावना से खेती करायें तो निसंदेह, शीघ्र ही देश, अन्न के विषय में स्वावलम्बी बन जायेगा।

ग्राम्य-जीवन, एवं उसमें सुधार की आवश्यकता

अजमेर बोर्ड—१६४०, १६४३,
उ० प्र० बोर्ड—१६४४, १६५०,

ग्राम्य-जीवन का महत्व—ग्राम्य-जीवन का महत्व तथा उसकी सुन्दरता का अनुभव वे ही लोग कर सकते हैं जिन्हें गाँवों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जो सदैव से शहरों में रहे हैं, जिन्हें शहरी वातावरण से बाहर साँस लेने का अवकाश नहीं मिला है, उनके लिये ग्राम्य-जीवन आकर्षणीय वस्तु नहीं। परन्तु एक बार इसका अनुभव हो जाने पर फिर शहरों में जाने के लिये मन नहीं करता। मैथिलीशरण गुप्त अपनी ग्राम्य-जीवन शीर्षक कविता का प्रारम्भ इस प्रकार करते हैं:-

"अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे ?" सचमुच यह जीवन ऐसा ही है। शहर के जनरव पूर्ण वातावरण से दूर, एक ग्रामीण का जीवन कितना स्वाभाविक और आडम्बर शून्य होता है। उसके व्यवहार में कितनी सादगी और हृदय में कितनी शान्ति विराजती है! मनुष्य जितना ही स्वाभाविकता से दूर होता जाता है, उसका जीवन जितना ही अप्राकृतिक होता जाता है, वह सच्चे सुख से उतना ही विमुख होता जाता है। शहरों के विपरीत, गाँवों का जीवन अकृत्रिम है। वहाँ मनुष्य की आवश्यकतायें कम हैं अतः वे शहरों की अपेक्षा अधिक सुखी हैं। सुख, सांसारिक भोग-विलास के साधनों में नहीं, अपितु वह मन के संतोष में है। जो संतोषी है, वही सुखी है।

शहरी जीवन की आवश्यकताएँ, वहाँ का वातावरण और परिस्थितियाँ मनुष्य को कपट पूर्ण व्यवहार करने के लिये

वाध्य कर देती है। परन्तु गाँव का जीवन इन सब बातों से मुक्त होता हैं। यह सच है कि अब गाँव वाले भी शहरी लोगों के सम्पर्क में आते रहने के कारण पहिले जैसे निष्कपट और सच्चे नहीं रहे हैं, परन्तु फिर भी अपेक्षाकृत वे सरल हैं। उन्हें अपने कार्य से इतना अवकाश ही नहीं कि शहरी लोगों की भाँति चोरी, ठगी, धोखेवाजी एवं प्रपञ्च में पड़ें। दिन रात के कठोर परिश्रम द्वारा ग्रामीण निवासी अपनी जीविका उपार्जन करते हैं और उसी से अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। उनके पास व्यसनों के लिये धन ही नहीं। रूखी सूखी रोटी खाकर वे ठडा पानी पी लेते हैं और उसी में सुखी रहते हैं। वे सच्चे आत्मिक आनन्द का उपभोग करते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से तो ग्राम्य-जीवन की प्रशंसा नगर निवासी भी करते हैं। स्वच्छ वायु और स्वच्छ जल गाँवों को प्रकृति की देन है। शहर के लोगों को स्वच्छ वायु के लिये शहर से वाहर जाना पड़ता है, परन्तु ग्रामीण लोग अपने घर वैठे ही उसे प्राप्त कर लेते हैं। अपने छोटे से मिट्टी के लिपे, पुते, स्वच्छ और सुघड़ घरों में निवास करते हुए ग्रामीण जनों को स्वास्थ्य लाभ की सभी सुविधायें मिलती रहती हैं। बीमारियों का प्रकोप गाँवों में बहुत ही कम होता है और जब होता है तो अपनी घरेलू औषधियों से ही वे ठीक हो जाती हैं।

जीवन का सच्चा आनन्द तो पारस्परिक प्रेम और त्याग भावना में पाया जाता है। इस प्रेम और त्याग-भावना का उदाहरण ग्राम्य-जीवन में ही देखने को मिलता है। गाँव के नाते से सभी ग्रामीण एक दूसरे के सम्बन्धी होते हैं। ग्रामीण सम्बन्धों में जाति की वाधा भी नहीं होती। कोई किसी का

भाई है, तो कोई चाचा। सभी ग्रामीण परस्पर के वार्तालाप में इन्हीं सम्बन्ध-सम्बोधनों का उच्चारण करते हैं। कैसी आत्मीयता प्रकट होती है उनके व्यवहार में! जब किसी व्यक्ति पर कोई आपदा आ पड़ती है तो सभी पड़ोसी उसकी भरसक सहायता को उठ खड़े होते हैं। वे दूसरों के दुख में दुख और और सुख मे सुख अनुभव करना अच्छी तरह जानते हैं। आतिथ्य-सत्कार तो अब भी गाँव में लगभग पहिले जैसा ही होता है। सब गाँवों में नहीं, तो बहुत से गाँवों में अतिथि का खूब सत्कार किया जाता है अपने सम्बन्धी की भाँति ही आवभगत की जाती है।

तात्पर्य यह है कि ग्राम्य-जीवन कई दृष्टियों से नागरिक जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम है और यदि कुछ बातों की वहाँ सुविधा प्रदान कर दी जाय तो निसंदेह यह सर्वश्रेष्ठ जीवन बन सकता है।

ग्राम्य-सुधार की आवश्यकता:—ऊपर ग्राम्य-जीवन का जो सुन्दर रूप खींचा गया है, हमें उसी से संतोष नहीं कर लेना है। अभी तो हमें ग्रामों को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करना है। भारतवर्ष की ८० प्रतिशत से भी अधिक जनता गाँवों में निवास करती है। इस जनता की ओर ध्यान दिये बिना देश की उन्नति होना असंभव है। देश की आर्थिक दशा सुधारने, उद्योग धन्धों की वृद्धि करने और समूचे रूप में राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिये हमें अपने गाँवों की दशा को ही सुधारना होगा। क्योंकि गाँवों से मिल कर ही तो देश का ८० प्रतिशत से अधिक भाग बना हुआ है। यही कारण है कि हमारे देश के बड़े-बड़े, महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं का ध्यान गाँवों की ओर आकर्षित हुआ था। बढ़ती हुई जन-संख्या के कारण ग्राम्य-जीवन बहुत ही

कठिन होता जा रहा है। दिन रात परिश्रम में जुटे रहने पर भी एक किसान अपने परिवार का भली-भाँति भरण-पोषण नहीं कर पाता। जहाँ पहिले समय में भारतीय किसान के घर दूध की नदियाँ वहा करती थीं, वहाँ अब उसके बच्चों को मट्ठे के लिये भी तरसना पड़ता है। एक स्त्री की भाँति गाँव का काम लोगों के जीवन की ऐसी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरी करना है जैसे भोजन और आनन्द, जीवन की सरल और सादा कविता और जीवन की वह सुन्दरता जो कि गाँवों में स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। परन्तु जब महत्वाकांक्षा के परिणाम स्वरूप गाँवों पर बोझ बढ़ जाता है, जब उनके साधनों का शोषण होने लगता है, तब गाँव का जीवन निर्धन और नीरस हो जाता है। ग्राम्य-निवासियों का मस्तिष्क कुण्ठित और अक्रियाशील हो जाता है। महत्वाकांक्षा के परिणाम स्वरूप मानवता का जो सर्वनाश हो रहा है वह हमें आज गाँवों में देखने को मिलता है। गाँव का जीवन धुँधला होता जा रहा है, उस जीवन का आनन्द कम होता जा रहा है। हमारा उद्देश्य समाज के और देश के अत्यन्त आवश्यक इस अङ्ग में रक्त का फिर से संचार करना होना चाहिये। देश की उन्नति करने के लिये हमें गाँवों की उन्नति पहिले करनी होगी। ग्रामोन्नति के लिये हमें सर्व प्रथम निम्न-लिखित सुधारों की आवश्यकता है।

आर्थिक स्थिति—सबसे पहले तो गाँवों की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करना होगा। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है और कृषि का धन्धा गाँवों में ही होता है। गाँव निवासियों की आर्थिक स्थिति को सुधारने का अर्थ है खेती की उन्नति करना। गाँवों में खेती के वे ही साधन आज भी प्रयोग में आ रहे हैं जो अब से १०० वर्ष पूर्व प्रयोग किये जाते थे।

वैज्ञानिक आविष्कारों की गाँवों में कोई पहुँच नहीं हुई है। अन्य देशों ने वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से कृषि की पैदावार पहिले से कई गुना अधिक बढ़ाली है परन्तु भारतवर्ष का किसान पुरानी लकीर का ही फकीर होने के कारण ज्यों का त्यों बना हुआ है। ग्राम-सुधार-आन्दोलन का उद्देश्य ग्रामीण लोगों के निराशावादी दृष्टिकोण को बदलने का भी होना चाहिये। ग्राम निवासी वर्षों से राज्य, जमींदार तथा महाजन के शोषण से इतने निर्धन हो गये हैं कि उन्हें अब अपने धनी होने की बात में विश्वास ही नहीं होता। यही कारण है कि राज्य की ओर से खेती में सुधार करने के सम्बन्ध में जो प्रचार किया जाता है, उसका कोई प्रभाव किसानों पर नहीं होता। यह निराशावादी दृष्टिकोण जब तक नहीं बदला जायगा तब तक प्रचार कार्य सफल नहीं हो सकता। इसका उपाय यही है कि राज्य को किसानों की अधिक सहायता करनी चाहिये। केवल प्रचार से ही ग्राम-वासी उन्नति करने की ओर अग्रसर नहीं हो सकते। उन्हें कृषि के सभी साधनों जैसे आधुनिक यन्त्रों, अच्छे बीजों, अच्छे खादों आदि से सम्पन्न करना होगा। जब एक बार वे इन साधनों की उपयोगिता का अनुभव कर लेंगे तो भविष्य में वे स्वयं ही इनका प्रयोग करने लगेंगे। खेती के अतिरिक्त, गाँवों के अन्य उद्योग धन्धों को भी विकसित करने की आवश्यकता है। आज विदेशी कल और कारखानों से बने हुए माल के कारण घरेलू उद्योग-धन्धों की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई है और बहुत से ग्रामीण किसान जो खेती नहीं करते, बेकार हो गये हैं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ है कि ग्रामीण लोग निर्धन होते चले जाते हैं। अतः ग्राम-सुधार का पहिला प्रश्न गाँवों के आर्थिक जीवन को सुधारने का है।

गाँवों में शिक्षा की आवश्यकता——भारतवर्ष में एक तो वैसे ही शिक्षा का अभाव है, फिर गाँवों की दशा तो इस सम्बन्ध में बहुत ही गिरी हुई है। गाँवों के अधिकांश लोगों को साधारण अक्षर का ज्ञान तक नहीं है। यह शिक्षा का ही अभाव है जिससे ग्रामीण लोगों में सुधार सम्बन्धी प्रचार सफलता पूर्वक नहीं चलता। शिक्षा का जीवन में बहुत प्रभाव होता है और किसी भी देश का भविष्य शिक्षित लोगों की संख्या पर ही निर्भर करता है। अतः आर्थिक स्थिति को दृढ करने के पश्चात् हमारे सामने गाँवों में शिक्षा-प्रसार का ही महत्व-पूर्ण प्रश्न आता है। गाँव-गाँव में समुचित संख्या में पाठशालाएँ खोलनी चाहिये और उनमें बालक-बालिकाओं की अनिवार्य भर्ती होनी चाहिये। जब तक अनिवार्य शिक्षा का नियम नहीं होगा तब तक ग्राम निवासी अधिक संख्या में शिक्षित नहीं बनाये जा सकते। बालक और बालिकाओं की शिक्षा के साथ ही प्रौढ़ों को शिक्षा देने की भी व्यवस्था होनी चाहिये। पाठशालाओं का पाठ्य-क्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जाय। साधारण शिक्षा के अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों, स्वास्थ्य-रक्षा तथा अन्य आवश्यक बातों के सम्बन्ध में भी जानकारी करानी चाहिये। तात्पर्य यह है कि राज्य को, एक निश्चित अवधि के अन्दर देश से निरक्षरता को उखाड़ कर फेंक देने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। कवि ने ठीक ही कहा है कि :—

जगती कहीं ज्ञान की ज्योती, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते॥

ग्राम पचायतों की स्थापना——हर्ष का विषय है कि सभी गाँवों में ग्राम सभा और ग्राम-पंचायतों की स्थापना हो गई है और अधिकतर छोटे-मोटे झगड़ों के निपटारे ग्राम-पंचायतों में

ही होने लगे हैं। परन्तु इन पंचायतों का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिये अभी वहुत समय की आवश्यकता है। राज्य को इस सम्बन्ध में धैर्य से काम लेना चाहिये। प्रारम्भ में, गाँवों के वीच झगड़े अधिक होने लगेंगे, पंचायत के न्यायालयों में पक्षपात पूर्ण कार्य भी किये जायँगे और पंचों के सामने अपने आदर्श से गिरने के लिये बहुत से प्रलोभन भी आयेंगे। परन्तु राज्य के सतत प्रयत्न और धैर्य से ये सब वाधायें समय के साथ-साथ दूर हो जायँगी और शीघ्र ही ग्राम-निवासी सच्चे राम राज्य के स्वप्न को क्रियान्वित होते देखेंगे।

स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्सा—स्वास्थ्य-रक्षा के साधन यद्यपि गावों में अधिक होते हैं और उन्हे स्वच्छ जल और वायु प्राकृतिक रूप से मिलते रहते हैं परन्तु निर्धनता और अशिक्षा के कारण न तो ग्रामीण लोगों को पौष्टिक भोजन ही मिलता है और न वे कृत्रिम रूप से स्वास्थ्य रक्षा के साधनों को अपनाते हैं। यही कारण है कि अब गाँवों में भी बीमारियों का प्रकोप वढ़ता जाता है। खेद है कि भारतीय गाँवों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है। प्रत्येक गाँव में तो चिकित्सालय नहीं खोले जा सकते परन्तु पाँच या दस गाँवों का एक चिकित्सालय हो सकता है। इन चिकित्सालयों का व्यय राज्य को सहन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त ग्राम-निवासियों के लिये मनोरंजन के कुछ साधन भी होने चाहिये क्योंकि जीवन में मनोरजन की बहुत आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये प्रत्येक गाँव में खेल के मैदान होने चाहिये और ऐसे खेलों का प्रचार किया जाना चाहिये जो कम व्यय वाले हों, जिनमें अधिक से अधिक लोग भाग ले सकें और जिनके द्वारा साहस, अनुशासन तथा सामूहिकता

की भावनायें जाग्रत हो सकें।

उपसंहार—ग्राम्य-जीवन ही वास्तविक और स्वाभाविक जीवन है। ग्रामों में रह कर ही मनुष्य सच्चे सांसारिक और आत्मिक आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। कुछ परिस्थितियों वश गाँव के जीवन में शुष्कता आ गई है परन्तु जिन सुधारों की आज आवश्यकता है यदि उनको गाँवों में क्रियान्वित कर दिया जाय तो स्वर्ग का अनुभव हमें ग्राम्य जीवन में ही हो सकता है।

सहकारिता : ग्राम पुनर्संगठन का कार्यक्रम

प्रस्तावना—वर्त्तमान समय में संसार संकुचित बन गया है। रेल और वायुयानों ने दूरस्थ देशों को भी निकट ला दिया है। आपस में मिलजुल कर रहना वर्त्तमान समय की अनिवार्यता हो गई है। सभी देश यह अनुभव करने लग गये हैं कि जीवन का सिद्धान्त एक दूसरे की सहायता करना है।

भारतवर्ष में शिक्षित वर्ग को छोड़ कर, अन्य लोग सभी एकता के लाभों को नहीं समझते। वर्त्तमान सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि भारतीय स्वयं ही एकता के गुणों को समझने लगें। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये उसने सहकारी-योजना का विशद प्रसार आरम्भ कर दिया है।

'सहकारी योजना', जैसा कि इसके नाम ही से प्रकट है इस सिद्धान्त पर स्थित है कि एक दूसरे की सहायता की जाय। इस योजना का यह अर्थ है कि सब लोग मिलजुल कर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें। सहकारिता के

अभाव में गरीब आदमी एक के बाद एक कठिनाई में फँसते चले जाते हैं। अपने किसी काम के लिये मान लीजिये कि एक किसान महाजन से कुछ रुपया ऋण लेता है। उसकी तात्कालिक आवश्यकता तो पूरी हो जाती है परन्तु भविष्य में वह और भी अधिक कष्ट में पड़ जाता है। महाजन का रुपया बढ़ता ही चला जाता है और किसान ऋण से कभी मुक्त नहीं होता। दिन रात कठोर परिश्रम करते रहने पर भी जब भारतीय किसान की दशा नहीं सुधरती तो वह जीवन में निराशावादी दृष्टिकोण को अपना लेता है। वह अपना धैर्य खो बैठता है और भविष्य के अप्रत्यक्ष लाभ के लिये प्रयत्न नहीं करता।

सहकारी-योजना का प्रारम्भ—भारतीय सरकार ने भारत में सहकारी-आन्दोलन सन् १९०४ में प्रारम्भ किया था। उस समय सरकारी सभायें केवल ऋण देने का ही काय करती थीं और किसानों की अन्य आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती थीं। जब सन् १९३७ में कॉंग्रेस सरकार ने शासन अपने हाथ में लिया तब प्रथम बार इन कार्यों की ओर ध्यान दिया गया। इस बात का प्रयत्न किया गया कि किसानों को खेत जोतने से लेकर खेत काटने और उपज बेचने तक प्रत्येक अवसर पर सहायता दी जाय। उसे घरेलू उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाय, उसके रहन-सहन का स्तर ऊँचा किया जाय और वह सहकारी सभाओं में पूर्ण सहयोग देने लगे। किसानों के लिये उस समय बीज गोदाम खोले गये। बीज गोदामों से अच्छे बीज, अच्छे खाद और अच्छे कृषि के औजारो के मिलने की सुविधा कर दी गई। कुएँ बनवाने के लिये तकावी भी मिलने लगी। उसी समय बहु उद्देशीय सभाओं की भी स्थापना हुई।

गवर्नरी राज्य में सहकारी-आन्दोलन—यह कार्य आरम्भ हुए अभी दो ही वर्ष हुए थे कि युद्ध आरम्भ हो गया और कांग्रेस मंत्रि-मण्डल ने शासन त्याग दिया। ६ वर्ष के गवर्नर राज्य ने वहु उद्देशीय सभाएँ भंग कर दीं। युद्ध के समय में एक 'औद्योगिक-संस्था' का निर्माण हुआ और सूबे को छोटी-छोटी सभायें अपनी-अपनी उत्पादित वस्तुएँ इस संस्था के द्वारा वेचने लगीं।

आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण लड़ाई के समय में एक व्यापारिक संस्था की भी स्थापना हुई। इसका पूरा नाम "यू० पी० कोआपरेटिव डेवलपमेन्ट मार्केटिंग फेडरेशन" है। इससे सभी जिलों के कोआपरेटिव वैंक, मार्केटिंग यूनियन, और उपभोक्ता सुसाइटियाँ मिला दी गई थीं। इस संस्था के द्वारा युद्ध काल में आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त की जाती थीं। इसने पर्याप्त उन्नति की है और यह एक करोड़ प्रतिवर्ष से अधिक का व्यापार करती है। इस संस्था का एक कार्य यह भी है कि यह किसानों को उनकी उपज वेचने में सहायता दे। काँग्रेस सरकार उसे अब और भी अधिक उन्नतिशील वनाना चाहती है।

काँग्रेस सरकार का ध्येय—काँग्रेस राज्य का वास्तविक ध्येय देहातों को उन्नत करना और किसानों की साधारण अवस्था सुधारना है। अतः अब पुनः सन् १९३७ के सिद्धान्त पर सहकारी योजनायें प्रारम्भ कर दी गई हैं और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि गाँव-गाँव सहकारी सभायें स्थापित हो सकें।

"विभिन्न उद्देश्यीय 'सहकारी सभाओं" के नाम ही से स्पष्ट है कि ये विभिन्न कार्य करेंगी। इसके कार्य-क्षेत्र में गाँवों का समस्त आर्थिक जीवन सम्मिलित होगा। ये किसानों को

कृषि करने और कृषि की पैदावार बेचने दोनों कार्यों में सहायता देंगी।

यह योजना परीक्षा के रूप में पहिले तीन हजार गाँवों में प्रारम्भ की जायगी। योजना का पूर्ण स्वरूप इस प्रकार है—

नई योजना का रूप:—एक ऐसा क्षेत्र चुन लिया जाय जिसके गाँव पास-पास हों। फिर एक-एक गाँव या कई-कई गाँव के एक-एक टुकड़े में "प्रारम्भिक सभायें" स्थापित करदी जायँ। इस प्रकार समस्त क्षेत्र में इन सभाओं का एक जाल सा बिछ जायगा। कई प्रारम्भिक सभाओं को मिला कर एक संघ (यूनियन) स्थापित कर दिया जायगा। प्रत्येक संघ का कार्य-क्षेत्र सौ गाँवों पर सीमित रहेगा। जिले के सब संघों को मिलाकर एक जिला सहकारी संघ बनेगा। जिले के संघों को मिला कर प्रान्तीय संघ बनाये जायँगे।

विभिन्न उद्देशीय सभायें:—ये नवीन सभायें उन समस्त आर्थिक कार्यों से सम्बन्धित होंगी जिनसे किसान दिलचस्पी रखते हैं। प्रारम्भ में ये सभायें रुपये के लेन-देन, उत्तम कृषि उपज का क्रय-विक्रय, पशुओं की देख-रेख, दुग्धशालायें खोलना, सूत कातने और दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को एकत्र करने से सम्बन्ध रक्खेंगी।

पैदावार की बिक्री के सम्बन्ध में प्रत्येक सदस्य को यह संकल्प करना होगा कि वह आवश्यकता से अधिक अन्न या कपास को गाँव की सभा या समिति के द्वारा ही बेचेगा। सरकारी कार्यकर्त्ता इस विषय में सभा के सदस्यों को उत्तम राय दिया करेंगे। ये सभायें उत्तम बैल और कृषि के अच्छे औजार भी रक्खेंगी जो किसानों को उधार या किराये के रूप में दिये जा सकेंगे। कुएँ बनवाना और सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध करना भी इसका काम होगा। इन कामों से किसानों

की प्रति एकड़ उपज बढ़ जायेगी और इससे उनकी आय भी बढ़ेगी।

सम्मिलित खेती— कृषि के विशेषज्ञों का विचार है कि भारतीय किसान की निर्धनता का एक कारण यह भी है कि उनकी उपज किसी नियम के अनुकूल नहीं होती अर्थात् कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं है कि जिसके अधीन एक विशेष क्षेत्र में एक विशेष फसल उत्पन्न की जाये। इनका कहना है कि इस प्रकार का क्रम, उपज की मात्रा और उसकी वास्तविकता दोनों की उन्नति के लिये आवश्यक है। सहकारी सभायें किसानों को सम्मिलित खेती की शिक्षा दे सकती हैं, अर्थात् प्रत्येक किसान अपने खेत में वही बोये जो निकट के खेत में बोया जाय। यदि एक क्षेत्र में एक ही अन्न बोया गया हो तो बुवाई, निराई, कटाई और सिंचाई सब में सुविधा हो जाती है और उपज में भी वृद्धि होती है।

खेती की नवीन रीतियाँ—किसानों की निर्धनता और कम उपज होने का दूसरा कारण यह है कि उनके खेत क्रम से नहीं हैं। एक खेत कहीं है तो दूसरा कहीं। खेती करने का ढंग भी बहुत प्राचीन एवं अपूर्ण है जब कि अन्य देशों में खेती ट्रेक्टरों, नई मशीनों से होती है, वहाँ भारतवर्ष में वही पुराना हल और चरस है। कृषि के ये पुराने औजार तो केवल अजायब घरों में ही रखने योग्य हैं। सहकारी सभायें, इन त्रुटियों को दूर करेंगी, खेतों को क्रम बद्ध करेंगी और खेती के नये उपाय बतलायेंगी।

सामूहिक कृषि—खेती के इस नवीन ढंग में, खेतों को मिलाकर बड़े बड़े खेत बना लिये जाते हैं जिससे कि उसमें ट्रेक्टर आदि कृषि के औजारों का ठीक-ठीक उपयोग हो सके। जितने किसान इस योजना में सम्मिलित होते हैं, वे

सब मजदूरों की भाँति सम्मिलित कृषि में काम करते हैं और उन्हें उसके लिये वेतन मिलता है। कृषि की उपज को तत्पश्चात्, खेतों के अनुपात से प्रत्येक किसान को बाँट दिया जाता है। सामूहिक कृषि पद्धति के लाभों को किसान तभी समझ सकते हैं जब वे शिक्षित हों। कांग्रेस सरकार किसानों को सामूहिक-कृषि की शिक्षा दे रही है।

सहकारी-खेती—इस कृषि-प्रणाली के अनुसार किसान अपने खेत का मालिक रहता है। वह अलग रह कर ही उत्तम ढंग से अपनी खेती करता है। इस कार्य में उसे सहकारी-सभा सहायता पहुँचाती है। वह प्रत्येक किसान के लिए उत्तम बीज, उत्तम खाद और उत्तम साधनों को जुटाती है। कृषि की पैदावार को अधिक से अधिक मूल्य पर बिकवाने का प्रबन्ध भी सहकारी-सभा द्वारा होता है।

कांग्रेसी सरकार ऐसे ढंग चालू कर रही है जिससे किसान अपनी भूमि का स्वामी भी रहेगा और उन सभी लाभों को प्राप्त कर सकेगा जो सामूहिक अथवा संयुक्त खेती के ढंगों से प्राप्त होते हैं। किसानों का लाभ इसी में है कि वह सहकारी-सभाओं के सदस्य बनें और सरकार द्वारा दी गई सुविधाओं से लाभ उठावें। इसी में उनका और देश का हित है।

अन्य कार्य—किसानों ने यदि सहकारी-योजना के सिद्धान्त पर काम करना सीख लिया तो विभिन्न-उद्देशीय सभाओं के कार्य-क्षेत्र बढ़ने लगेंगे। ये सभायें कृषि में सुधार करने के साथ ही साथ पशुओं की दशा सुधारने का प्रयत्न करेंगी। दूध देने वाले पशुओं की देख रेख करेंगी और दूध एवं घी की बिक्री का प्रबन्ध करेंगी। पशुओं की नस्ल सुधारने, उन्हें बीमारी से बचाने और समुचित चारे की व्यवस्था करने का भार इन

सभाओं पर ही रहेगा। लखनऊ और इलाहाबाद के पास ऐसी दूध-सभायें स्थापित होगई हैं और अच्छा कार्य कर रही हैं।

सूत कातने और कपड़ा बुनने की कला सीखने से भी किसानों को बहुत लाभ हो सकता है। हमारे भारतीय-किसान फसल बोने के समय से फसल काटने के समय तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। यदि सूत कातने और बुनने का काम, किसान अपने अवकाश के समय में करने लगें तो उनके स्त्री बच्चों को कपड़ा भी मिल सकता है और कुछ लाभ भी हो सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में ऊन सहयोगी-सभायें स्थापित हैं और उन्होंने बड़ा लाभ उठाया है मैदानी क्षेत्रों में भी सूत-सहयोगी सभायें स्थापित की जा सकती हैं और उनके द्वारा किसानों को सूत कातने और कपड़ा बुनने की कला सिखाई जा सकती है। इस प्रकार किसानों की आय बढ़ जायगी

भारतीय किसानों को सहकारिता के सिद्धान्त को समझना चाहिये और अधिक से अधिक इसके लाभों का उपयोग करना चाहिये। इसी में उनकी और देश की उन्नति है।

जीवन में अहिंसा का महत्व

प्रस्तावना—जीव-हत्या अथवा हिंसा से बचने के भाव को अहिंसा कहते हैं। मानव-उत्पत्ति के साथ ही, हिंसा की उत्पत्ति हुई थी। पत्थर युग में मनुष्य अपने उदर की पूर्त्ति एक मात्र हिंसा करके ही कर पाता था। वह दूसरे जीवों को मार कर खाता था। यहाँ तक कि मनुष्य, मनुष्य को खा जाता था। उस समय सर्वत्र हिंसा का राज्य था। सभ्यता के उदय के साथ साथ जीव-हिंसा की भावना कम होती गई

और मनुष्य अन्न द्वारा भी अपना पेट भरने लगा। मानव-हत्या, अपराध समझा जाने लगा। परन्तु भोजन के लिये अन्य जीवों को मारने की परंपरा तो अब तक चली आती है।

हिंसा की प्रवृत्ति— वर्त्तमान समय में हिंसा की परिभाषा भी व्यापक हो गई है। जीव-हत्या ही हिंसा नहीं है, अपितु जीवों को सताना, उन्हें कष्ट देना अथवा उन्हें अपनी स्वार्थ सिद्धि का साधन बनाना भी हिंसा-भाव के अन्तर्गत आ गया है। इस बीसवीं सदी के संसार में भी जब कि सभ्यता पिछले सब समय से आगे बढ़ी हुई समझी जाती है, हिंसा का बोल बाला है। मनुष्य, मनुष्य के खून का प्यासा बना हुआ है। शक्तिशाली देश, कमजोर देशों को अपनी तलवार के बल पर अधीन बना रहे हैं। आये दिन ही विश्व-युद्ध की संभावनायें हो जाती हैं। अभी पिछले युद्ध में लाखों मनुष्य युद्ध की भट्टी में जलाये जा चुके हैं। इस समय भी कोरिया में युद्ध का ताण्डव नृत्य हो रहा है जिसमें प्रतिदिन ही सहस्रों स्त्री, पुरुष और बच्चे बम्बों के शिकार हो रहे हैं। निर्दयता की भावना जागरित हो गई है। मनुष्य ने हिंसा में, वन्य-पशुओं को भी मात कर दिया है। मांस भक्षण भी पहले से कम नहीं है। प्रतिदिन लाखों उपयोगी पशुओं के गले पर छुरी चलादी जाती है। प्राचीन काल में तो मांस-भक्षण उस युग की अनिवार्यता थी, परन्तु इस समय की अनेक धन-धान्यों से परिपूर्ण वसुन्धरा पर, मांस-भक्षण मनुष्य की घोर हिंसक प्रवृत्ति का परिचायक है।

अहिंसा की आवश्यकता—संसार में ज्यों ज्यों हिंसा की प्रवृति बढ़ती जाती है, त्यों ही त्यों अहिंसा में लोगों का विश्वास भी बढ़ रहा है। अहिंसा के महत्व को सभी

समय के महापुरुषों ने स्वीकार किया है। भगवान बुद्ध ने तो अहिंसा को अपने धर्म का प्रमुख अंग माना था। बौद्ध-धर्म में हिंसा सबसे बड़ा पाप समझा जाता है। जैन मत वाले तो किसी भी प्रकार के जीवों की हत्या करना पाप समझते हैं। महात्मा ईसा ने भी अहिंसा भाव पर बहुत जोर दिया है। तात्पर्य यह है कि सभी की, सभी सम्प्रदायों और सभी महापुरुषों ने अहिंसा की शक्ति को स्वीकार किया है। वर्त्तमान युग के सबसे महान व्यक्ति महात्मा गांधी ने तो अहिंसा अपने जीवन का व्रत बना लिया था। आज सभी राष्ट्रों के समझदार व्यक्ति यह अनुभव करने लगे हैं कि अहिंसा के सिद्धान्त पर चलकर ही विश्व का कल्याण हो सकता है।

युद्धों को रोकने का उपाय अहिंसा—जो लोग युद्धों द्वारा शान्ति लाने का स्वप्न देख रहे हैं, वे अपने लक्ष्य के ठीक विपरीत जा रहे हैं। गांधी जी ने इस बात को भली भाँति जान लिया था। उन्होंने भारत की जनता को बन्दूकों और मशीन गनों की शक्ति नहीं दी, जिसका प्रयोग उसके दमनकारी करते थे; बलिक वह शक्ति दी जो जनता के व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर्निहित है, जो युद्धों से पीड़ित इस संसार को अभी प्राप्त करनी है और जिसका यदि पूर्णता के साथ उपयोग किया जाय तो वह युद्धों को असंभव बना सकती है। राजनीतिज्ञ और युद्ध प्रेमी लोग हिंसात्मक साधनों का प्रचार करते समय यह भूल जाते हैं कि मनुष्य का स्वतंत्रता में से विश्वास उठ नहीं सकता। बन्दूक, मशीन गनें और परमाणुबम्ब, मनुष्य या राष्ट्र की आत्मा को कुचल नहीं सकतीं। वे कुछ समय के लिये उसे आँखों से ओझल कर सकतीं हैं, उसे पृथ्वी तले छिपा कर रख सकती हैं, पर

वह अँधेरे में भी चुपचाप बढ़ती रहती है और एक दिन आता है जब वह प्रज्ज्वलित हो उठती है और मानव-जाति के लिये पथ-प्रदर्शक ज्योति बन जाती है।

हिंसा का उत्तर हिंसा से देना तो अत्याचारी के निम्न—धरातल पर उतर आना है जो शक्ति का नाम केवल मृत्यु और विनाश द्वारा करता है। अहिंसात्मक उपायों की शक्ति जीवन की उस आत्मा की शक्ति है जिस की पिपासा कभी शान्त नहीं होती। मनुष्य, किसी बुराई को मेटने या किसी झगड़े को करने के लिये जितना ही अधिक हिंसा से काम लेगा, उतना ही अधिक वह सत्य से परे हटता जायगा। हम कहते हैं कि चोरों को इसलिये दण्ड दिया जाता है कि वे हमें तंग करते हैं। दण्ड देने से चोर हमें कुछ समय के लिये छोड़ देते हैं परन्तु अपना ध्यान वे दूसरों पर लगा देते हैं। दण्ड देने से उनकी आदत बदल नहीं जाती। चोरों को दण्ड देने से उन्हें सहलेना अच्छा है। कुछ समय पश्चात् उनकी बुद्धि स्वतः ही ठिकाने आजायगी। जब हम उन्हें सहन करते हैं तब हम आप ही यह अनुभव करने लगते हैं कि चोर हमसे भिन्न नहीं, बल्कि हमारे ही सगे सम्बन्धी और मित्र हैं और उन्हें दण्ड नहीं दिया जा सकता।

अहिंसा की शक्ति—अहिंसा की शक्ति महान है। यह मनुष्य के हृदय पर ही विजय प्राप्त नहीं करती, पशु पक्षी तक इससे प्रभावित हो जाते हैं। वस्तुतः अहिंसा-भाव और प्रेम भाव एक ही वस्तु है। प्रेम से हिंसक पशु भी वशीभूत हो जाते हैं। शेर के विषय में कहा जाता है कि वह सामने आये हुए मनुष्य की आँखों में उसकी हिंसा अथवा अहिंसा की भावना को ताड़ जाता है। प्रेम दृष्टि से

देखने वाले पर वह कभी आक्रमण नहीं करता। प्रतिरोध स्वरूप ही शेर, मनुष्य पर आक्रमणकारी होता है। घरेलू जानवर भी अपने स्वामी के भाव को ताड़ जाते हैं। बच्चों को दण्ड देने से वे अधिक उद्दण्ड बन जाते हैं, प्रेम व्यवहार द्वारा उनकी बुरी से बुरी आदतें छुड़ाई जा सकती हैं। अनेकों उदाहरण हैं जिनसे अहिंसा और प्रेम की शक्ति का प्रभाव सिद्ध हो जाता है। बड़े बड़े चोरों, डकैतों और हत्यारों ने अहिंसा की शक्ति के सामने अपने घुटने टेक दिये और अपने दुष्कृत्यों को सदैव के लिये त्याग दिया। गाँधी जी का कथन है कि यदि आपके एक गाल पर कोई थप्पड़ मारता है तो उसका प्रत्युत्तर अपना दूसरा गाल, थप्पड़ मारने वाले के सामने करके दो। भला जो ऐसा अहिंसक होगा, उसे सताने का कौन साहस कर सकता है? 'अहिंसा' प्रेम के तत्वज्ञान और सत्य की साधना-सिद्धान्त के साथ इस प्रकार जुड़ी हुई है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः विश्व प्रेम का ही नाम अहिंसा है। इन्द्रियों के दमन और आत्मा के विकास का सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नहीं है, इसे तो हमारे पूर्वजों ने बहुत पहिले ही खोज निकाला था। आज के युग में गांधी जी ने इस की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करके संसार के सामने इसकी अमोघता सिद्ध कर दी है।

अहिंसा से विश्व-कल्याण—जीवन के सभी क्षेत्रों में अहिंसा को सिद्धांत बना कर चलने से सफलता मिल सकती है। राजनीति में गांधीजी ने अहिंसा की शक्ति के महत्व को सभी के सामने प्रकट कर दिया। उन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर ही भारतवर्ष को स्वतन्त्रता दिलवाई। सामाजिक जीवन में तो अहिंसा सबसे बड़ा गुरुमंत्र है। इसी के द्वारा मनुष्य, अपने भाइयों, पड़ौसियों और समूचे समाज का

हृदय जीत सकता है। अहिंसा शब्द की शाब्दिक परिभाषा तो हिंसा न करना अथवा जीवों को न सताना ही है। परन्तु वास्तव में इसका अर्थ इससे कहीं अधिक बढ़ कर है। अहिंसा के अन्दर दूसरों का हित करना भी आता है। अहिंसा के सिद्धांत पर चलकर ही, संसार में युद्धों की समाप्ति हो सकती है। जब तक सब राष्ट्र एक दूसरे से प्रेम का व्यवहार नहीं करेंगे, जब तक हम संगठित और समन्वित सामाजिक जीवन की अहिंसा-सिद्धांत पर आधारित नई धारणा को विकसित नहीं करेंगे, तब तक हमें शान्ति नहीं मिलेगी। इस लोक के मानव समाज और सभ्यता का भविष्य, आत्मा, स्वतन्त्रता, न्याय और मनुष्य-प्रेम की उन गहरी विश्व-भावनाओं के साथ बँधा हुआ है जिनकी उत्पत्ति अहिंसा-भाव से होती है।

"सबै दिन जात न एक समान"

अजमेर—१९४८

कहावत—यह एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका अर्थ है कि सब दिन एक से नहीं होते, अर्थात् परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। कभी हमारे जीवन में सुख आता है और कभी दुख। सुख की घड़ियों में हम आनन्द विभोर हो जाते हैं, जीवन में सरलता आ जाती है और संसार की प्रत्येक वस्तु सुन्दर दिखलाई देती है। परन्तु यह सुख निरन्तर नहीं रहता। देखते-देखते सुख के दिन चले जाते हैं और उसके स्थान पर दुख की घटायें हमारे ऊपर मँडराने लगती हैं।

जो जीवन हमें सरलता पूर्ण प्रतीत होता था, उसी में नीरसता आ जाती है। संसार की प्रत्येक सुन्दर लगने वाली वस्तु कुरूप दिखाई देती है। जीवन भार हो जाता है। सुख और दुख बारी-बारी से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आते रहते हैं परन्तु स्थाय' रूप से कोई नहीं टिकता। जिस प्रकार गाड़ी का पहिया घूमता रहता है और ऊपर का भाग नीचे आता है तथा नीचे का ऊपर उठता है, उसी प्रकार सुख और दुख आते जाते हैं। किसी कवि ने क्या ही ठीक कहा है कि :

'काहू पै दुख सदा न रह्यौ, न रह्यौ नित काहू के सुक्ख अगारी
चक्रनिसी सम दोऊ फिरैं, तर ऊपर आपनी आपनी बारी।"

समय परिवर्त्तन शील है—समय परिवर्त्तन शील है। जीवन के सभी अङ्गों में इसका प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। सुख और दुख की ही भाँति हर्ष, विशाद, हानि-लाभ, उत्थान पतन और आशा एवं निराशा का क्रम निरन्तर चलता रहता है। यह सब कुछ समय का ही खेल है। आज जो आनन्द से फूला नहीं समाता, वही कल विलख-विलख कर रोता दिखलाई पड़ता है। आज जो कसी के सामने झुकना नहीं जानता वही कल घर-घर माथा टेकता हुआ मिलता है। कल जो करोड़ों की सम्पत्ति का स्वामी बना बैठा हुआ था, वही आज भिखारी बना घूम रहा है। कल जो सिंहासनारूढ़ थे, वे ही आज दर-दर मारे फिरते हैं।

झुकते किसी को थे न जो नृप-मुकुट रत्नों से जड़े,
वे अब शृगालों के पदों की ठोकरें खाते पड़े।

अहिंसा और मांस-भक्षण—बहुत से लोग मांस-भक्षण के विषय में जीव-हत्या को अक्षम्य समझते हैं वे कहते हैं कि भोजन के लिये जीवों को मारकर खाते हैं। जीवस्य जीव भोजनम् की उक्ति देकर वे अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। मनुष्य

का यह सोचना, और अपनी कार्य-प्रणाली का आधार पशु-प्रवृत्ति को बनाना कहाँ तक न्याय-संगत है, इसे सभी विचार शील व्यक्ति जानते हैं मनुष्य,सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य के अन्दर ही बुद्धि का आविर्भाव हुआ है। यदि फिर भी वह अपनी बुद्धि का प्रयोग न करे तो उसमें और पशुओं में अन्तर ही क्या रहा ? डाक्टरों ने यह बात सिद्ध करदी है कि स्वास्थ्य के लिये मांस का सेवन सर्वथा हानिप्रद है मांस खाने वालों के अन्दर से दया और उदारता के भावों का लोप हो जाता है। उनकी वृत्ति तामसी हो जाती है। दया-भाव से शून्य व्यक्ति, मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं। दया, शान्ति, क्षमा आदि मानवोचित गुण हैं और इन्हीं गुणों को विकसित करके मनुष्य अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। आत्मिक उन्नति के अर्थ हैं, सच्ची शान्ति और सुख, जो मानव-जाति का मुख्य लक्ष्य है। मांस-भक्षी, अपने लक्ष्य से तो च्युत होते ही हैं, साथ ही वे संसार में हिंसा और घृणा का प्रचार करते हैं। आत्मरक्षा के हेतु हिंसक जीवों का वध करना तो न्याय संगत है भी, पर अपनी स्वाद-वासना की तृप्ति के लिये उपयोगी पशुओं का वध करना राक्षसता है, पाशविकता है। संसार में एक से एक बढ़ कर उत्तम खाद्य-पदार्थ हैं। घी, दूध, अन्न और फलों की समता कौन सा भोजन कर सकता है ? इन वस्तुओं को छोड़ कर मांस के लिए जीव-हिंसा करना केवल अपनी अहिंसक प्रवृत्ति का प्रकाश करना है।

समय की शक्ति—समय के सामने किसी की नहीं चलती। यह सबसे बलवान है। बड़े-बड़े छत्रधारियों ने अपने अहंकार के मद में समय के प्रभाव को रोकना चाहा, उसकी गति को स्थिर करना चाहा। परन्तु क्या लाख प्रयत्न करने पर भी वे अपने उद्देश्य में सफल हो सके ?

कदापि नहीं। समय को वे नहीं रोक सके अपितु समय ने उनको रोक दिया। समय की गति अबाध रूप से अग्रसर होती गई। उसके वेग में तनिक भी शिथिलता नहीं आई। इसके सामने अन्त में सभी घुटने टेक देते हैं। किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

शार्दूल बन्धन में बँधे स्वातंत्र्य जाल श्रगाल को,
वायस चुगें मोती अहो, मिलता चुगा न मृगाल को।
इसमें नहीं संदेह कुछ भी, वास्तविक है, तथ्य है,
हा काल! जो कुछ तू कराले, सब तुझे सामर्थ्य है।

समय की परिवर्त्तन शीलता अचूक है। सब दिन एक से नहीं होते। जीवन का घटना-चक्र बदलता रहता है। इतिहास इसका साक्षी है। महाराज युधिष्ठिर को कौन भारतवासी नहीं जानता? उनके सामने बड़े-बड़े राजा सिर झुकाते थे। उनके भाई अर्जुन और भीम की ललकार के सामने कौन खड़ा रह सकता था। परन्तु एक समय आया जब महाराज युधिष्ठिर और उनके भाइयों को वन-वन भटकना पड़ा। एक साधारण से राजा की उन्हें शरण लेनी पड़ी और विराट नगरी में वे १ वप तक छिप कर नौकरी करते रहे। रावण की कीर्त्ति-पताका का कहीं ओर छोर नही था। देवता उसके घर दासों का काम करते थे। भगवान भाष्कर उसके प्रती-हार थे। क्षपानाथ, चन्द्र, उसका चँवर डुलाने पर रहते थे और यहाँ तक कि काल उसके पाँव धोते थे। परन्तु अन्त में रावण का भी क्या हुआ? उसे भी एक दिन नीचा देखना पड़ा और बुरी तरह उसकी मृत्यु हुई। जिस नैपोलियन के नाम से समूचा यूरोप थर्राता था, जिसकी विजय-दुन्दुभी सर्वत्र बज उठी थी और जिसने असंभव को संभव कर के दिखला दिया था, उसी चक्रवर्त्ती सम्राट नैपोलियन को एक

दिन सैन्टहेलेना द्वीप में वर्षों तक साधारण सैनिक की भाँति वन्दी होकर अपने जीवन के शेष दिन पूरे करने पड़े। महाराज हरिश्चन्द्र, महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज आदि भारतीय वीरों की कथा सभी जानते है। समय ने उनको उच्चासन पर एक दिन बैठाया। परन्तु एक दिन उन्हें बुरे दिन भी देखने पड़े। मनुष्यों की तो बात ही क्या, जिन श्रीकृष्ण को भगवान का अवतार माना जाता था और जो तीनों लोक के स्वामी हो गये थे उन्हें एक दिन बहेलिये के तीर से मरना पड़ा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भी चौदहवर्ष वनवास के कष्ट झेलने पड़े। महारानी सीता जिन्होंने कभी पृथ्वी पर पैर नहीं रक्खा था, उन्हें कंटकाकीर्ण दुर्गम मार्गों पर पैदल चलना पड़ा। तात्पर्य यह है कि एक न एक दिन सभी को बुरा समय देखना पड़ता है और सभी को अच्छा समय। समय के प्रभाव से कोई नहीं बचता।

प्रकृति भी परिवर्तनशील है—प्रकृति में भी सभी वस्तुओं के एक से दिन नहीं होते। किसी समय में कहीं हरियाली ही हरियाली होती है तो दूसरे समय वहाँ एक पत्ता तक नहीं दिखलाई देता। वसन्त ऋतु में उद्यान की शोभा कैसी अपूर्व होती है, परन्तु पतझड़ आने पर उसी में मरुभूमि का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आते जाते रहते हैं। ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षा काल और फिर शीत ऋतु का आगमन होता है। जो सूर्य मध्यान्ह के समय अपने पूर्ण उत्कर्ष को होता है, वही संध्याकाल में उतरते-उतरते पूर्ण अस्त हो जाता है और दूसरे दिन तक वह रात्रि के अन्धकार में विलीन रहता है।

उन्नति तथा अवनति प्रकृति का नियम एक अखन्ड है;
चढ़ता प्रथम जो व्योम में गिरता वही मार्तण्ड है।

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा अपनी शीतल ज्योत्सना से सारे संसार को सुखी करता है और अपने रूप पर गर्व करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु कृष्णपक्ष में वही चन्द्र क्रमशः क्षीण होता चला जाता है और एक दिन पूर्ण विलुप्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रकृति भी परिवर्त्तनशील है और समय का प्रभाव उस पर भी पड़ता है।

समाज और देश पर भी समय का प्रभाव पड़ता है—एक सा समय किसी का नहीं रहता, यह नियम व्यक्तियों के लिये ही नहीं, अपितु समाज और देशों पर भी यह समान रूप से घटित होता है। कोई भी देश सदैव एक ही स्थिति में नहीं रहता। इतिहास से पता लगता है कि एक समय में जो देश उन्नतिशील थे, वे दूसरे समय में अवनति के गर्त्त में जा पड़े। यूनान और रोम एक समय में सबसे अग्रगण्य माने जाते थे। जिस समय अन्य देशों में सभ्यता का जन्म भी नहीं हुआ था. उस समय यूनान की सभ्यता अपनी चर्म सीमा को पहुँची हुई थी। परन्तु आज वही यूनान बहुत से देशों से पिछड़ा हुआ है। दूसरे देशों को जाने दीजिये। एक समय में भारतवर्ष की क्या दशा थी? यहाँ की सभ्यता दूसरे देशों के लिये आदर्श मानी जाती थी। साहित्य, कला, विज्ञान, व्यापार आदि सभी क्षेत्रों में यह सर्वोन्नत था। विदेशों से लोग आकर यहाँ से ज्ञान ले जाते थे और अपने देश में उसका विस्तार करते थे। एक से एक दानवीर, युद्धवीर और धर्मवीर पुरुष भारतवर्ष में थे जिनकी समता आजतक किसी ने नहीं की। परन्तु आज उसी भारतवर्ष की क्या दशा है? सभी उन्नतिशील देशों से यह प्रत्येक बात में पीछे है। सदियों से इसे परतंत्रता की बेड़ियों में रहना पड़ा है और अनेक कष्टों को भोगना पड़ा है। भाग्यवश अब भारत

स्वतंत्र हो गया है और निश्चय ही उसका अच्छा समय आने वाला है क्योंकि एक सा समय किसी का नहीं होता।

उपसंहार—इन सब बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि एक सा समय कभी नहीं रहता, सब दिन समान नहीं होते। जिसकी उन्नति होती है, उसका पतन अवश्यम्भावी है और जिसका पतन हुआ है उसका उत्थान अनिवार्य है। सुख के बाद दुःख और दुख के बाद सुख आते जाते रहते हैं। घटना-चक्र बराबर चलता रहता है और उस पर होने वाली परिस्थितियाँ क्रमशः बदलती रहती हैं। यह एक प्राकृतिक नियम है जो सदैव से घटित होता आया है, हो रहा है और होगा। अतः किसी को अपने उत्कर्ष पर गर्व नहीं करना चाहिये और अपकर्ष पर हताश नहीं होना चाहिये। हमें चाहिये कि सभी अवस्थाओं में धैर्य से काम लें और परिस्थितियों को महत्व न देते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

"समरथ को नहिं दोष गुसाई"

उ० प्र० १९४९

चौपाई का अभिप्रायः—उक्त कथन गोस्वामी तुलसीदास की "रवि पावक सुर सरि की नाई। समरथ को नहिं दोष गुसाईं।" चौपाई का अर्द्ध भाग है। इसका अर्थ है कि सूर्य, अग्नि और देव-नदी गंगा की भाँति सामर्थ्यवान व्यक्ति को दोष नहीं लगता। सूर्य शक्तिवान है और सामर्थ्यवान है अतः वह कुछ भी करे, उसे दोष या पातक नहीं लगता। सूर्य की किरणें गन्दे स्थान में भी पड़ें तब भी वे पवित्र हैं। इसी प्रकार अग्नि में सभी वस्तुएँ पड़ कर शुद्ध हो जाती

हैं। अपवित्र वस्तुओं से अग्नि की पवित्रता में कोई अन्तर नही आता। गंगा में पापी से पापी व्यक्ति भी स्नान करके पवित्र हो जाता है और उसके पाप धुल जाते हैं। इसीलिये गंगा को पतित उद्धारिणी कहा जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि सूर्य, अग्नि और गंगा शक्तिवान हैं। दूषित वस्तुओं से ये दूषित नहीं होतीं अपितु इनमें पड़कर वस्तुओं के दोष दूर हो जाते हैं। सामर्थ्यवान पुरुष भी ऐसे ही होते हैं। वे कुछ भी करें, कुछ भी कहें सब उचित है ठीक है।

सामर्थ्य की उपासना—'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' पद की सत्यता हम नित्य प्रति अपने व्यावहारिक जीवन में भी देखते हैं। जो शक्तिशाली हैं, सामर्थ्यवान हैं, वे कुछ भी करें, लोग उनकी ओर उँगली नहीं उठाते। सर्वत्र बलवान की ही पूजा होती है और उन्हीं के गीत गाये जाते हैं। निर्बल व्यक्तियों के अच्छे से अच्छे कार्यों को साधारण समझा जाता है और उनके द्वारा की गई भूलों को कभी क्षमा नहीं किया जाता। असहाय और शक्ति हीन व्यक्ति समाज में न कुछ करते हुए भी दोषी समझे जाते हैं और सबल व्यक्तियों के बड़े से बड़े अपराध भुला दिये जाते हैं। भुला ही नहीं बल्कि अपराधों को अपराध समझा ही नहीं जाता। बड़े आदमियों के अवगुण भी गुण कह कर प्रसिद्ध किये जाते हैं। संसार में सदैव से शक्ति की उपासना होती आई है। बलवान जो कुछ करता है उसी को ठीक समझा जाता है और उसी को दूसरे लोग करने लगते हैं। उनके कृत्य, दूसरों के लिये अनुकरणीय होते हैं। वर्त्तमान समय में भी शक्तिवानों का ही जनता साथ देती है, उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाती है। ऐसे तो विरले ही जन होते हैं जो वास्तविकता और सत्यता का साथ देते हैं अन्यथा अधिकांश जन शक्ति

और सामर्थ्य के अनुगामी होते हैं। धन की शक्ति भी एक बड़ी शक्ति है और धनवान व्यक्ति की कैसी पूजा समाज में होती है इसे सभी जानते हैं। धन की ओट में बड़े से बड़े अवगुण छिप जाते हैं। समाज धनवानों का ही यशोगान करता है और उन्हीं की विरदावली गाई जाती है। इसके विपरीत निर्धन व्यक्तियों का सर्वत्र तिरस्कार किया जाता है। निर्धन व्यक्ति कितना ही बुद्धिवान और गुणवान क्यों न हो, परन्तु उसे धनवान के समान महत्व नहीं दिया जाता। उसकी साधारण सी प्रशंसा करके ही लोग चुप हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि चाहे धन की शक्ति हो, चाहे बल की और चाहे यश की, उसी की प्रशंसा होती है। शक्ति सम्पन्न ही सामर्थ्यवान माना जाता है और समाज उसे दोषी नहीं ठहराता।

धन की शक्ति—आज के संसार में सभी बुराइयों, दोषों और अवगुणों का बखान बल हीन और निधन व्यक्तियों के विषय में ही किया जाता है। चोर, जुआरी, ठग, बेईमान, शराबी, व्यभिचारी आदि व्यक्ति निर्धनों में ही पाये जायँगे अथवा ऐसे व्यक्तियों में मिलेंगे जो अत्यन्त शक्ति हीन हैं। तब क्या धनी और शक्तिशाली लोग इन बुराइयों को नहीं करते? क्या धन और शक्ति के साथ दोषों का कोई सम्बन्ध नहीं? वास्तविकता तो यह है कि सारी बुराइयों की जड़ धन ही है। धनवान व्यक्ति ही निठल्ले और बेकार होते हैं और उन्हीं के पास सब व्यसनों को करने के लिये पैसा और समय होता है तथा प्राय: धनी व्यक्ति ही उक्त व्यसनों में अधिक लिप्त पाये जाते हैं। परन्तु बात यह है कि धन की आड़ में उनकी बुराइयाँ छिपी रहती हैं। उनके पास शक्ति होती है और वे सामर्थ्यवान होते हैं अत: सब

कुछ करते हुए भी उनके दोष प्रकट नहीं हो पाते। लोग उनकी बुराइयों की चर्चा करने का साहस नहीं करते अपितु इसके विपरीत उनकी झूठ मूठ प्रशंसा के गीत गाये जाते हैं। उनके पहाड़ सदृश दुष्कर्मों को तिल के बराबर समझा जाता है और तिल समान गुणों को पर्वत करके प्रसिद्ध किया जाता है। दूसरी ओर निर्धन और सामर्थ्यहीन व्यक्तियों के दोष कई गुना बढ़ा कर प्रकट किये जाते हैं। दोष के भोगी न होते हुए भी वे दोषी ठहरा दिये जाते हैं। निर्बल व्यक्ति की कौड़ी की चोरी भी सोने की चोरी कह कर फैलाई जाती है और शक्ति वाला यदि ऊँट भी निगल जाय तो भी कोई बात नहीं। यही कारण है कि वर्त्तमान समाज में सभी अवगुण और दोष निर्बल व्यक्तियों में ही हैं। वास्तव में हैं तो धनी और सबलों में ही परन्तु उनके प्रकट नहीं होते। जो बात प्रकट है, वही है, और जो अप्रकट है, वह नहीं है। संसार की यही रीति है और सदैव से रही है।

गोस्वामी तुलसीदास जी का इस कथन से अभिप्राय— गोस्वामी तुलसीदास जी का 'समरथ को नहि दोष गुसाईं" कथन से यह अभिप्राय नहीं था कि समर्थ व्यक्ति को दोष लगता ही नहीं अथवा सामर्थ्यवान कितना ही अन्याय या पाप क्यों न करे परन्तु वह दोषी नहीं। उन्होंने सामर्थ्यवान की उपमा सूर्य, अग्नि और गंगा नदी से दी है। उनकी दृष्टि में धनवान या शारीरिक बल से युक्त व्यक्ति सामर्थ्यवान नहीं था। जिस समय का वर्णन उनकी कथा में है, उस समय धर्म की शक्ति ही सबसे बड़ी शक्ति थी। जो न्यायी, धर्मात्मा, परोपकारी, तपस्वी और सदाचारी होता था, वही सामर्थ्यवान माना जाता था और सचमुच उसमें सामर्थ्य होती थी। हमारे प्राचीन ऋषि और मुनियों की सामर्थ्य के

आगे बड़े-बड़े राजा सिर झुकाते थे और कभी भी उनके कोप के भाजन न बनते थे। कारण यह था कि धर्मात्मा व्यक्ति के वचनों में ही बड़ी शक्ति होती थी। उस समय के ब्राह्मणों की वाणी में ही सब कुछ था। जिसको वे आशीर्वाद दे देते थे, वह अवश्य ही अपने कार्य में कृतकार्य हो जाता था और जिसको वे श्राप दे देते थे उसकी रक्षा फिर कोई कर नहीं सकता था। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में धर्म ही सबसे बड़ी शक्ति थी और धर्मात्मा एवं सदाचारी व्यक्ति ही सामर्थ्यवान माने जाते थे। तुलसीदास जी का अभिप्राय ऐसे ही समर्थ व्यक्तियों से था। ऐसा सामर्थ्यवान यदि कोई हो और वह कोई ऐसा कार्य कर भी दे जो समाज मे दोष कहलाया जाता हो तो उस सामर्थ्यवान व्यक्ति को दोष नहीं लगता। कारण यह है कि ऐसे लोग अपने किसी नीच भाव की तृप्ति के हेतु दोष पूर्ण कार्य नहीं करते। उनका उद्देश्य ऐसे कामों में भी ऊँचा होता है। जहाँ उद्देश्य अथवा लक्ष्य ऊँचा हो तो निम्न साधनों की गणना नहीं की जाती।

उदाहरण— प्राचीन इतिहास में अनेकों सामर्थ्यवान व्यक्तियों के उदाहरण पाये जाते हैं जिन्होंने कुछ अनुचित कार्य किसी न किसी दृष्टि से कर दिये हैं परन्तु फिर भी वे दोषी नहीं माने गये। महाराजा युधिष्ठिर जुआरी थे और इस व्यसन में उन्होंने अपनी पत्नी द्रौपदी तक को जुए के दाँव पर रख दिया परन्तु फिर भी वे धर्मराज कहलाये। कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में पाण्डवों का पक्ष लिया था और कई बार उन्होंने पाण्डवों को विजयी कराने के उद्देश्य से धर्म विरुद्ध नीति को अपनाया था परन्तु फिर भी उन्हें पातक नहीं लगा। कारण यह था कि जिस पक्ष को उन्होंने अपनाया था वह

धर्म के अनुकूल था। इसी पक्ष की विजय उन्हें करानी थी और इस लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये कुछ सामयिक धर्मविरुद्ध नीतियों को अपनाना उन्होंने अनुचित नहीं समझा। राम चरित मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के द्वारा भी तुलसी-दास जी ने कुछ ऐसे कार्य करा दिये हैं जो उस समय दोष-युक्त माने गये जैसे वालि का वध और सीता वनोवास। परन्तु राम के ये दोष, उनकी महानता में छिप गये और अन्त में उन्हें निर्दोष ठहराया गया। सीता जैसी सती और साध्वी स्त्री के ऊपर आरोप लगाना और उसे वनोवास देना, राम का अत्यन्त ही निंदनीय कार्य था। यदि इसी कार्य को कोई साधारण व्यक्ति कर बैठता तो कभी भी उसके माथे से कलंक का टीका नहीं मिटता। परन्तु राम सामर्थ्यवान थे, धर्मात्मा थे और सबसे बड़ी बात उनके स्वभाव में यह थी कि वे प्रजा पालक थे एवं प्रजा की भलाई करना ही उनका एक राजा के नाते सबसे बड़ा उद्देश्य था। राम का यह स्पष्ट कथन था कि—

"मोह, दया, सुख, सम्पदा, जनकसुता वरु होहि
प्रजा-हेतु तिनहू तजत व्यथा न व्यापहि मोहि

भला, जब प्रजा के लिये राम के हृदय में इतना स्थान था, तो सीता निष्कासन का पातक उन पर किस प्रकार लग सकता था। राम ने जो कुछ किया, वह अनुचित होते हुए भी अनुचित नहीं था। रामचरित मानस ही में गोस्वामी तुलसीदास ने पार्वती के विवाह के प्रसंग में नारद जी से यह भाव प्रकट करवाया है कि—

"समरथ को नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं

नारद जी ने कहा है कि भगवान शंकर में यद्यपि दोष है अर्थात् वे जटाजूट धारी हैं, भंगड़ी हैं और उनकी वेषभूषा

भी सभ्य पुरुषों जैसी नहीं परन्तु फिर भी वे पार्वती के योग्य हैं और उनसे श्रेष्ठ वर अन्य नहीं। कारण, कि वे सामर्थ्यवान हैं और ये दोष उनकी सामर्थ्य के आगे कुछ भी महत्व नहीं रखते। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी जी का अभिप्राय कृष्ण, युधिष्ठिर, राम, शंकर, सूर्य, आदि ऐसे ही सामर्थ्यवान व्यक्तियों से है और वास्तव में ऐसे ही व्यक्ति यदि कोई बुराई कर बैठें तो उन्हें दोष न तो लगता है और न लगना ही चाहिये। प्रथम तो ऐसे महापुरुष कोई दोष पूर्ण कार्य करते ही नहीं हैं। और यदि किसी कारण से कोई अनुचित कार्य उनसे हो भी जाता है तो भी उसका उद्देश्य उच्च होता है अतः वे दोष के भागी नहीं बनते।

सारांश—सारांश यह है कि आजकल बहुत से व्यक्ति गोस्वामी जी के कथन का दुरुपयोग करते हैं और धन तथा शारीरिक शक्ति को ही सामर्थ्य मान कर उचित अनुचित सब कुछ कर के भी दोष से बचना चाहते हैं। हाँ, यह ठीक है कि वर्त्तमान समाज में धन और शारीरिक बल को ही शक्ति और सामर्थ्य माना जाता है तथा धनवान एवं शक्तिवान व्यक्तियों को समाज दोष नही लगाता परन्तु समाज के दोष लगाने अथवा न लगाने से ही तो कोई दोषी अथवा निर्दोषी नही बन जाता। किसी बुरे आदमी को यदि सारा संसार भला कहे तो भी वह भला नहीं हो सकता, और किसी अच्छे आदमी को सारा संसार बुरा कहे फिर भी वह बुरा नहीं है। सत्यता की ही सदैव विजय होती है। किसी को भी संसार के कहने पर न चलना चाहिये। सदैव अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये और सच्चे रूप में सामर्थ्यवान बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

'जिसकी लाठी उसकी भैंस'

उ० प्र०—१९४७

परिभाषा—'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत लोगों में बहुत प्रचलित है। जहाँ शारीरिक बल अथवा पाशविक शक्ति के द्वारा अधिकार ग्रहण की बात आती है, वहाँ इसी कहावत का प्रयोग किया जाता है इसमें शारीरिक शक्ति की महत्ता का भाव अन्तर्हित है। न्याय अथवा नैतिकता के आदर्श को तिलाञ्जलि देकर जहाँ भौतिक शक्ति के प्रयोग से जय पराजय का निर्णय किया जाता है, वहीं यह कहावत चरितार्थ होती है। यहाँ हमें इसी विषय पर विचार करना है कि क्या वास्तव में सदैव पाशविक बल की ही विजय होती है? क्या शारीरिक शक्ति ही, अन्य शक्तियों से अधिक महत्व पूर्ण है? मानवजीवन में क्या यही सिद्धान्त प्रयोग में आरहा है? और क्या यह सिद्धान्त उचित है?

कहावत की सत्यता—'जिसकी लाठी उसकी भैंस' अर्थात् शारीरिक शक्ति की ही विजय होती है, इस कथन में कुछ तथ्य अवश्य है। यदि इस में कुछ सचाई नहीं होती तो न तो इस कहावत का इतना प्रचार ही होता और न यह बहुत प्राचीन समय से अब तक चली आती। सच्ची बातें ही टिकाऊ होती हैं। मनुष्यों को तो हम पीछे लेंगे, पहिले पशु-संसार में ही उक्त कथन की जाँच करके देखलें। पशुओं में शारीरिक बल का ही बोल बाला है। जो पशु शरीर से बलवान हैं, वे ही निर्बल पशुओं पर शासन करते हैं। सिंह अपनी शारीरिक शक्ति के कारण ही वन का राजा कहलाता है। निर्बल पशुओं का भक्षण करना उसका एक मात्र अधिकार है। कोई भी उसके विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकता। सिंह की अनुपस्थिति में, उससे

कम शक्ति वाले पशुओं का राज्य होता है। जो जिससे बलवान होता है, वह उसे मार कर खा जाता है। छोटे मोटे कीड़ों में भी यही सिद्धान्त काम में आरहा है। बड़े कीड़े, अपने से छोटे कीड़ों को खाजाते हैं। पक्षियों में भी यही बात देखने को मिलती है। यदि कौआ को उलूक नहीं देख सकता, तो बाज के सामने उलूक की दाल नही गलती। छोटी छोटी चिड़ियाँ जहाँ दाना चुग रही होती हैं, वहाँ यदि कौआ आजाता है तो चिड़ियाँ सब उड़ ज.यँगी। कबूतर कैसा सीधा पक्षी होता है? परन्तु छोटे छोटे कीड़ों का सफाया करने में वह भी कितना सिद्ध हस्त है। पशु-संसार में निर्बल जीव, सबल जीवों के आहार हैं। यह एक सर्व-मान्य सत्य है। सभी पशु इस सिद्धान्त को अपना रहे हैं। इसके औचित्य अथवा अनौचित्य का तो प्रश्न ही वहाँ नहीं उठता।

शक्ति की प्रधानता—विकासवाद का सिद्धान्त भी-'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत की सत्यता को स्वीकार करता है। डार्विन के मतानुसार अब तक जीव-जगत में पाशविक बल की ही प्रधानता रही है। जो जीव सबल थे, वे ही अपने अस्तित्व को बनाये रख सके, जो निर्बल थे वे नष्ट होगये। संसार परिवर्त्तन, शील है। परिवर्त्तन, संघर्ष द्वारा होता है। संघर्ष में शक्तिवान विजयी होते हैं और अशक्त पराजित होकर पीछे रह जाते हैं। अब तक पशु, पक्षियों की वे ही जातियाँ विद्यमान हैं जो जीवन के संघर्ष में अपने अस्तित्व को बनाये रही है। जो इस संघर्ष में नष्ट होगईं, उनका कोई चिन्ह भी शेष नहीं। अस्तित्व बनाये रखने की बात के अतिरिक्त, जो जीव अधिक सबल हैं, वे अपेक्षाकृत निर्बल जीवों के अधिक सुखी हैं।

वनस्पति-संसार में भी शारीरिक शक्ति के प्रभुत्व का

प्रतिपादन हो रहा है। दृढ़ और बड़े-बड़े वृक्ष छोटे वृक्षों की खुराक खींच लेते हैं। आप किसी बड़े वृक्ष के पास छोटे पौधे को लगा दीजिये, छोटा पौधा कभी अपने पूर्ण विकास की अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकता। यदि पृथ्वी में काफी नमी और खाद हुआ तो भले ही वह कुछ बढ़ जाय, अन्यथा सूख जायगा। आँधी के एक ही झोंके में कमजोर वृक्ष उखड़ जाते हैं, बड़े और दृढ़ वृक्षों का कुछ नहीं बिगड़ता। अधिक ताप अथवा अधिक शीत में निर्बल वृक्षों को हानि पहुँच जाती है, परन्तु बड़े वृक्ष सदैव ऐसे ही रहते हैं। तात्पर्य यह है कि पशु-पक्षियों की दुनिया में वनस्पति-संसार में न्याय अन्याय, धर्म, अधर्म की बात कोई नहीं उठाता। वहाँ निर्बलों की पुकार सुनने वाला कोई नहीं। जो शारीरिक दृष्टि से दृढ़ हैं, जो शक्ति सम्पन्न हैं, वे ही जीवित हैं और सुखी हैं। इस संसार में निर्बलों के लिये कोई स्थान नहीं।

मानव संसार में पशु-बल का प्रभुत्व—अब हम मानव संसार में आते हैं और देखते हैं कि 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' वाली कहावत, शारीरिक्त शक्ति के प्रभुत्व का औचित्य यहाँ किस सीमा तक लागू है। मानव-समाज के प्रारम्भिक इतिहास के अवलोकन से पता लगता है कि पाषाण युग और धातु-युग में केवल शारीरिक बल का ही राज्य था। उस समय सभ्यता का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। लोग जंगली थे। पशुओं को मार कर खाना, उनका एक मात्र काम था। उस समय भी जो मनुष्य शारीरिक बल में अधिक थे, वे ही अपने उदर का पालन कर सकते थे। निर्बलों द्वारा मारे गये पशुओं को सबल व्यक्ति छिना लेते थे, यहाँ तक कि उन्हें मार भी डालते थे। यह तो हुई बहुत पुराने समय की बात। जब लोग कुछ अधिक सभ्य हो गये, और खेती-बाड़ी करने

लगे तथा घर बना कर रहने लगे तब भी शारीरिक बल का ही प्रभुत्व रहा। सबल समुदाय, निर्बल समुदायों को अधिकार में कर लेते थे और उनसे काम करवाते थे। उस समय मुदायों के पारस्परिक युद्ध होते थे और जो विजयी होता था वही पराजित समुदाय का स्वामी होता था। इन युद्धों में उचित, अनुचित के सिद्धान्त की बात नहीं देखी जाती थी। न्याय, अन्याय को कोई नहीं जानता था। शारीरिक बल ही सबसे बड़ा सिद्धान्त था और उसी की तूती सर्वत्र बोलती थी।

सामन्त शाही के युग में आकर भी हम शरीरिक शक्ति का ही महत्व देखते हैं। एक राजा दूसरे राजा पर बिना किसी कारण के आक्रमण कर देता था। मुसलमानों ने भारतवर्ष पर अनेकों आक्रमण किये और अन्त में अपना राज्य भी स्थापित कर लिया। यह सब शक्ति के प्रयोग से ही हुआ। मुगलों के आक्रमणों के विषय में यह कोई नहीं कहता कि उन्होंने शारीरिक बल का अनुचित प्रयोग किया और भारतवर्ष पर आक्रमण करके अन्याय किया, क्योंकि ऐसा करने की तो उस समय प्रथा थी। सभी राजा, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्त को मानते थे। मुगलों के शासन काल में भारतवर्ष ने कई पहलुओं में उन्नति भी की और कुछ बादशाहों ने शान्ति स्थापना के भी बहुत से प्रयत्न किये। लोगों को सभी नागरिक अधिकार प्राप्त थे और वैयक्तिक रूप में कोई किसी पर बल के आधार पर अन्याय नहीं कर सकता था। यद्यपि सामाजिक जीवन में शारीरिक शक्ति की महत्ता का सिद्धान्त प्रचलित नहीं था, परन्तु निकटवर्ती राजाओं में अभी यही नियम चला आता था। निर्बल राज्यों को सबल राजाओं को कर भी देना पड़ता था।

आधुनिक युग में पाशविक बल प्रयोग—आधुनिक समय में सभ्यता का काफी विकास हो गया है और मसानता के सिद्धान्तों पर काफी जोर दिया जाने लगा है। शारीरिक बल के आधार पर किये गये अधिकार की बात अन्याय पूर्ण मानी जाती थी। उचित और अनुचित, न्याय और अन्याय सभी कुछ देखा जाता है। यह सब कुछ होते हुए भी, कभी-कभी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत घटित हो रही है। शक्तिशाली देश, अपने पड़ोसी निर्बल देश को हथियाने की कोशिश कर बैठता है। हिटलर का तो स्पष्ट ही यह कथन था कि जर्मन राष्ट्र, दूसरे राष्ट्रों पर शासन करने के लिये है। यही नीति मुसोलिनी की थी। अमेरिका और इंगलैण्ड जैसे प्रजातंत्रीय देश भी उच्च आदर्शों और सिद्धान्तों की आड़ लेकर एक या दूसरे रूप में इसी नीति पर कार्य कर बैठते हैं। आश्चर्य की बात है कि इस युग में भी लाठी और भैंस की कहावत चरितार्थ हो जाती है और जब सिद्धान्तों से स्वार्थ सिद्धि होती नहीं दिखाई देती तो सैन्य-बल का ही आश्रय लिया जाता है, शारीरिक बल ही न्याय, अन्याय का निर्णायक होता है। यदि सामाजिक जीवन में नहीं तो राजनीति में अब भी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की सत्यता कभी कभी सिद्ध हो जाती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि शारीरिक शक्ति की महत्ता प्राचीन युग से अभी तक स्थिर है। पशु-पक्षियों की तो बात ही क्या, मानव समाज में भी पाशविक बल को श्रेय प्राप्त है यद्यपि उसके प्रयोग का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। यदि खुले रूप में इस नीति को कार्यान्वित नहीं किया तो भिन्न-भिन्न उद्देश्यों और आदर्शों की आड़ में इसका व्यवहार देखने को मिलता है।

मानव समाज में पाशविक बल की आवश्यकता नहीं है—'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला नियम प्राकृतिक नियम नहीं है अपितु व्यावहारिक अथवा सांसारिक नियम है। इसका व्यवहार सदैव से होता आया है और हो रहा है, यह एक कटु सत्य है। परन्तु मानव संसार में किसी नियम के औचित्य का प्रतिपादन 'क्या होता आया है' के आधार पर नहीं होता, बल्कि 'क्या होना चाहिये' के आधार पर होता है। जो बात सदैव से होती आ रही है, यदि उसे ही ठीक मान लिया जाय तो सभ्यता के विकास अथवा सामाजिक उन्नति की चर्चा निरर्थक हो जाती है। मनुष्य सभी जीवों में श्रेष्ठ है। बुद्धि और भावों के लिहाज से मनुष्य का अस्तित्व निराला है। जिन परिस्थितियों में वह रहता है, उनमें लगातार सुधार करना और उन्हें अधिक से अधिक अपने अनुकूल बनाना उसका महान कर्त्तव्य है। उसे व्यवहारवाद के सिद्धान्त पर न चल कर आदर्शवाद पर चलना चाहिये।

मानव जीवन का आदर्श—मनुष्य में उच्च भावों का विकास हुआ है। दया, क्षमा, सहानुभूति, न्याय-प्रियता, उदारता आदि मानवोचित गुण हैं। मानव-समाज का कल्याण इन्हीं गुणों के आधार पर हो सकता है। सामूहिक हित भावना और समानता के सिद्धान्तों पर चल कर ही हम विश्व-शान्ति के लक्ष तक पहुँच सकते हैं। जब तक व्यक्तिगत स्वार्थ, झूठी मान-बड़ाई और पशुवत प्रवृत्ति का परित्याग नहीं किया जायगा, तब तक संसार में सुख स्थापित नहीं हो सकता। पाशविक बल को महत्व देकर शान्ति के स्वप्न देखना बड़ी भूल की बात है। इतिहास इसका साक्षी है। कोई भी व्यक्ति शारीरिक शक्ति अथवा

सैन्यवल के आधार पर शान्ति नहीं ला सका है। सभ्यता का जो कुछ विकास हुआ है वह उन्हीं महापुरुषों के प्रयत्न स्वरूप है जिन्होंने नैतिक वल का आश्रय लिया है। हिंसा से प्रति हिंसा को ही पैदा किया जा सकता है। आदर्शों पर चल कर ही आदर्श प्राप्त किये जा सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि बहुत से व्यक्तियों ने सैन्य वल के आधार पर शान्ति स्थापित करदी और शारीरिक दण्ड देकर अत्याचारियों को नष्ट कर दिया। परन्तु यदि कुछ गहराई के साथ इस पर विचार किया जाय तो इस बात का खोखलापन प्रकट हो जाता है। नैपोलियन, सिकन्दर महान, सीजर आदि महान कहे जाने वाले युद्धवीरों ने युद्ध द्वारा शान्ति लाने के प्रयत्न किये। क्या वे स्थायी शान्ति ला सके? क्या उन्होंने युद्धों को सदैव के लिये समाप्त कर दिया? नही, उन्हें अपने कार्य में सफलता नहीं मिली। युद्धों की अग्नि और भी अधिक भड़क उठी। सैन्य वल से ही अमेरिका और इँगलैण्ड विश्व-शान्ति के स्वप्न देख रहे हैं। परन्तु उनकी इस नीति की निरर्थकता अभी से प्रकट होने लगी है। दूसरी ओर हमारे सामने बुद्ध, ईसा और महात्मा गान्धी के उदाहरण मौजूद हैं। इन महापुरुषों ने नैतिक वल के आधार पर संसार में सुख और शान्ति लाने के प्रयत्न किये, और इन्हें कितनी सफलता मिली, यह भी किसी से छिपी नहीं है। वर्तमान समय में महात्मा गान्धी ने अहिंसा की नीति पर चल कर न केवल देश को स्वतंत्रता ही दिलादी वलिक संसार को इस नीति का महत्व भी स्वीकार करना पड़ा।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य—पशुओं की भाँति मनुष्य के जीवन का उद्देश्य उदरपूर्ति नहीं है। उसे तो सत्यम्, शिवं,

सुन्दरम् के लक्ष्य को प्राप्त करना है। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने में उसके जीवन की सार्थकता है। इस लक्ष्य तक 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के नियम द्वारा कदापि नहीं पहुँचा जा सकता। नैतिक बल के आधार पर ही हम अपने इस उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। शांति-मय प्रयत्नों से ही संसार में शांति का साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है।



हिन्दू समाज के दोष

भारतवर्ष सदैव से हिन्दुओं का देश रहा है। इसमें अन्य जातियों का आना जाना अवश्य बना रहा है परन्तु हिन्दू जाति की प्रधानता सदैव रही है। हिन्दुओं की अधिकता के कारण ही विदेशियों ने इसका नाम हिन्दुस्तान रख दिया था जो अब तक चला आता है।

हिन्दू समाज की प्राचीन सभ्यता—हिन्दू जाति की संस्कृति बहुत प्राचीन है। जब अन्य देशों में सभ्यता का अभ्युदय नहीं हुआ था, भारत की हिन्दू जाति अपने पूरे उत्कर्ष पर पहुँची हुई थी। कला, कौशल, ज्ञान और दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में भारतवर्ष संसार का गुरू था। विदेशों से आकर लोग यहीं शिक्षा ग्रहण करते थे और उसे अपने देशों में ले जाते थे। कविवर मैथिली शरण गुप्त ने लिखा है।

"आदर्श जन संसार में इतने कहाँ पर हैं हुए ?
सत्कार्य भूषण आर्य-गण जितने यहाँ पर हैं हुए।
हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे,
पर दूसरों के भी वचन साक्षी हमारे हो रहे।"

उस समय भारतवर्ष में हिन्दू जाति चार वर्णों में

विभाजित थी ! चारों ही वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने अपने निर्धारित कर्मों को मनोयोग से करते थे। विद्यार्थी २५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए, विद्याध्ययन करते थे। गृहस्थी अपने गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए सुख से जीवन यापन करते थे। स्त्रियों का समा में आदर था और उन्हें, पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे । उस समय पर्दा की प्रथा नहीं थी और स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ यज्ञादि कार्यों में पूरा हाथ बँटाती थीं। जाति भेद नहीं थे। चारों वर्णों के लोग एक दूसरे को अपना भाई समझते थे और पारस्परिक हितभाव के साथ एक दूसरे का सहयोग करते थे। पुरुष पत्नी धर्म का और स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पूर्ण रूप से पालन करते थे । उस समय में भारतवर्ष सभी प्रकार से सम्पन्न था। दूध दही की यहाँ नदियाँ बहती थीं। न कहीं चोर थे, न बदमाश। सभी लोग सुख पूर्वक लम्बी आयु प्राप्त करते थे। हिन्दू जाति की धर्म पर सब से अधिक श्रद्धा थी और उनके सभी कर्म धर्म की आधार शिक्षा पर टिके हुए थे। भारतवर्ष में हिन्दू जाति का वह स्वर्ण-युग था।

हिन्दू समाज की वर्त्तमान अवस्था—परन्तु वर्त्तमान काल में हिन्दू जाति अपने प्राचीन गौरव के ठीक विपरीत अवस्था को पहुँच गई है। जितना उत्कर्ष इसका हुआ था, अब उतना ही अपकर्ष हो गया है। विद्या, बुद्धि, वाणिज्य, ज्ञान, विज्ञान आदि सभी बातों में भारतवर्ष संसार के उन्नत शील देशों से पिछड़ा हुआ है। इसका कारण यहाँ के हिन्दुओं की हीनावस्था ही है। हिन्दू-जाति ने अपने सभी प्राचीन आदर्शों को त्याग दिया है और दिन प्रति दिन अवनति की ही ओर चली जा रही है। हिन्दू समाज में

बाल-विवाह, बहुविवाह, पर्दा अस्पृश्यता विधवा विवाह निरोध, साम्प्रदायिकता आदि कुरीतियाँ प्रचलित होगई हैं। विद्या का आदर नहीं रह गया और ब्रह्मचर्याश्रम के महत्व को पूर्णतः भुला दिया है। लोग विलासी और आलसी बन गये हैं। धर्म के आदर्शों पर चलना तो दूर रहा, उनकी हँसी उड़ाई जाती है। यही कारण है कि आज हिन्दू जाति को बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं और अपने कर्मों का प्रायश्चित करना पड़ रहा है। यहाँ हिन्दुओं के कुछ सामाजिक दोषों का ही उल्लेख किया जाता है।

बाल-विवाह और अनमेल विवाह—हिन्दू समाज में बाल विवाह और अनमेल विवाह की प्रथा चल गई है। जहा प्रचीन काल में २५ वर्ष से पूर्व कोई पुरुष विवाह नहीं करता था, वहाँ अब सात आठ साल के बच्चों के भी विवाह हो जाते हैं। सरकार की ओर से यद्यपि विबाह की अवस्था पुरुषों के लिये १८ वर्ष और लड़कियों के लिये १४ वर्ष नियत कर दी गई है। परन्तु इस नियम की अधिकांश में अवहेलना होती है। अपरिपक्व अवस्था में विवाह हो जाने से, लड़कियाँ कच्ची आयु में ही माँ बन जाती है। माता पिता के रज और वीर्य का सन्तान पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अतः कच्ची अवस्था के माता-पिता की संतान प्रथम तो जीवित ही नहीं रहती, और अगर रह भी गई तो जीवन भर उसे अनेक रोगों का शिकार बनना पड़ता था। ऐसी सन्तानों से किस प्रकार भीष्म, अर्जुन, भीम आदि जैसे शक्तिशाली पुरुषों की आशा की जा सकती है? कम उम्र में सन्तान प्रसव करने के कारण माताओं आ स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है और वे सदैव के लिये रोगिणी बन जाती हैं। प्रसव-काल में जितनी स्त्रियों की मृत्यु भारतवर्ष में होती है, उतनी संसार के किसी

देश में नहीं। वाल-विवाह की कुप्रथा के ही समान यहाँ अनमेल विवाह और वहु विवाह की प्रथायें प्रचलित हैं। साट-साठ वर्ष के वूढ़े १४ वर्ष की कन्याओं से विवाह कर लेते है। इससे उन कन्याओं के हृदय पर तो कुठाराघात होता ही है, साथ ही दो-चार वर्षों में वे विधवा हो जाती हैं और आजीवन उन्हें वैधव्य का घोर दुःख उठाना पड़ता है। वहु विवाह के भी ये ही दुष्परिणाम होते हैं। धनी लोग अपने रुपये के वल से कई-कई विवाह कर लेते हैं। एक ही व्यक्ति की कई स्त्रियाँ होने पर पारिवारिक जीवन वड़ा ही विषाद पूर्ण वन जाता है। वात-वात पर झगड़े होते हैं। और स्त्रियाँ आत्म-हत्या तक करने पर उतारू हो जाती हैं। कई स्त्रियाँ होने से दाम्पत्य-प्रेम नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और ऐसे पुरुष स्वयं तो दुखी रहते ही हैं, परन्तु उनके साथ स्त्रियों को भी जीवन भर दुःख झेलने पड़ते हैं। वाल-विवाह वहु विवाह अथवा अनमेल विवाह की पद्धति हिन्दू समाज के लिये अभिशाप सिद्ध हुई है।

विधवाओं की दुर्दशा—हिन्दू-समाज का दूसरा वड़ा दोष, उसमें होने वाले विधवाओं के साथ अन्याय और अत्याचार हैं। हिन्दू समाज में स्त्रियों को पुर्नविवाह करने की आज्ञा न हों। पति के मरजाने पर स्त्री विधवा कही जाती है और उसे अपने लिये दूसरा पति चुनने का अधिकार नहीं। विधवा स्त्रियों के लिये समाज ने अत्यन्त ही कठोर नियम वना दिये हैं। वे किसी शुभ कार्य में भाग नहीं ले सकतीं और न अच्छे वस्त्र अथवा आभूषण ही पहन सकती है। कैसे अन्याय और अनीति की वात है कि पुरुष तो कई-कई विवाह करले और वृद्धावस्था में भी किसी १६ वर्ष की कन्या को अपनी पत्नी वनाले, परन्त स्त्री, किशोरा-

वस्था में ही विधवा हो जाने पर, आजीवन दुःख भोगे। हिन्दू समाज में लाखों स्त्रियाँ ऐसी हैं जो बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई थीं, यहाँ तक कि बहुतों ने तो अपने पति के दर्शन तक नहीं कर पाये थे, परन्तु उनके निर्दयी समाज ने उन्हें दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं दी। कठोर धार्मिक और सामाजिक बन्धनों से जकड़ी हुई सभी प्रकार के सुखों से वंचित होकर वे अपने जीवन के दिन पूरे कर रही हैं। पुरुष जाति की स्वार्थ परता और हृदय हीनता का ऐसा उदाहरण हिन्दू समाज को छोड़ अन्यत्र नहीं मिल सकता। विधवाओं के साथ प्रतिदिन ही होने वाले इन अत्याचारों के कारण सहस्त्रों स्त्रियाँ आत्म हत्या कर लेती हैं, सहस्रों ही वेश्या बन जाती है और सहस्रों अन्य दुष्कर्मों में प्रवृत्त हो जाती हैं। आश्चर्य है कि अपनी बहू बेटियों को ऐसे कर्म करते देखकर भी हिन्दू-समाज की आँखें नही खुलतीं।

पर्दे की कुप्रथा—स्त्रियों को पर्दे के भीतर भी रखना हिन्दू-समाज का दोष है। एक समय में मुसलमानी बादशाहों के अत्याचारों के कारण पर्दे की प्रथा चला दी गई थी जिससे कि पापियों की कुदृष्टि से स्त्रियाँ बची रहें। परन्तु वह प्रथा अब तक हिन्दुओं में चली आती है। पर्दे के कारण स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल सकतीं और न वे किसी से बातें ही कर सकती हैं। हर समय घर के भीतर बन्द रहने से स्त्रियों का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और अनेक रोगों में वे फँस जाती हैं। तपैदिक का रोग अधिकतर पर्दे में रहने वाली स्त्रियों को ही होता है। पर्दे के कारण ही स्त्रियों में साहस और आत्म-रक्षा का लोप हो जाता है। जब कभी भूल से कोई स्त्री किसी गुंडे के पंजे में फँस जाती है तो

किसी प्रकार वह अपनी रक्षा नहीं कर सकती। अन्य देशों में जहाँ पर्दा नहीं होता, वहाँ की स्त्रियाँ अकेली ही घूमती फिरती हैं और पुरुषों को उनके कार्यों में सहायता पहुँचाती हैं। किसी गुंडे की हिम्मत नहीं कि उनसे आधी बात भी कह जाय। आये दिन ही समाचार पत्रों में दुलहिन बदलने के समाचार निकलते रहते हैं। पर्दे के पक्ष में बहुत से लोग यह तर्क देते हैं कि इससे स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा होती है और वे कुमार्ग से बचती हैं। परन्तु लोगों का यह तर्क नितान्त भ्रामक है। वास्तविकता तो यह है कि स्त्रियों को जितना ही अधिक बन्धन में रक्खा जायेगा, वे उतनी ही उच्छ्रंखल बन जाती हैं। जितना व्यभिचार पर्दे के अन्दर होता है उतना बाहर नहीं। पर्दे की प्रथा स्वरूप उत्पन्न हुई बुराइयों को हिन्दू-समाज प्रत्यक्ष देख रहा है परन्तु फिर भी उसे होश नहीं आता।

अस्पर्श्यता—हिन्दू-समाज में एक और बड़ा दोष, उसका संस्कार जन्य अस्पर्श्यता का भाव है। इस भाव अथवा छूआछूत के विचार से उच्चजाति के लोग शूद्र कहलाने वाले लोगों को अछूत समझते हैं और अनेक हाथ की छुई वस्तु को नहीं खाते। शूद्रों अथवा अछूतों पर समाज ने कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। उन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता, उत्सवों में भाग नहीं लेने दिया जाता। गाँव के सार्वजनिक कुँओं से वे पानी नहीं भर सकते। हिन्दू-समाज की इस घृणा के ही कारण प्रतिवर्ष सहस्रों अछूत अन्य धर्मों को स्वीकार करते रहते हैं और इस प्रकार हिन्दू जाति की संख्या घटती जा रही है। महात्मा गांधी ने अस्पर्श्यता-भाव के निवारण के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये हैं परन्तु हिन्दू-समाज इस विषय में एक सीमा से आगे नहीं

बढ़ सका है।

बहु जाति-प्रथा--हिन्दू-समाज अनेक जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों में भी बँटा हुआ है। एक सम्प्रदाय या धर्म के लोग दूसरे धर्मावलम्बियों के कट्टर विरोधी हैं। आर्य समाजी यदि सनातनियों को बुरा बतलाते हैं, तो नानकपंथी, कबीर पंथियों की खिल्ली उड़ाते हैं। धार्मिक विश्वासों के कारण ही सम्प्रदायगत भेद भाव और पक्षपात उत्पन्न हो गये हैं। एक धर्म वाले अपने धर्म के लोगों के साथ अनुचित पक्ष पात करते हैं। इस बातों से हिन्दू समाज अनेक शृंखलाओं में विभक्त हो गया है और आपसी घृणा तथा वैमनस्य बढ़ता जाता है। जब तक हिन्दू-समाज विभिन्न मत मतान्तरों को छोड़ कर एक नहीं होगा तब तक इसकी उन्नति के स्वप्न देखना कोरी कल्पना है।

अन्ध विश्वास--हिन्दुओं के धार्मिक अन्ध विश्वासों के कारण ही प्रतिवर्ष साधुओं, पंडों, पुजारियों, सिद्धों आदि बेकार रहने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जाती है। ये लोग भोले भाले लोगों को विशेष कर स्त्रियों को देवी, देवताओं और भूत प्रेतों का भय दिखा कर ठगते रहते हैं। बीमारी, विवाह शादी, विद्याध्ययन, व्यापार तथा अन्य सांसारिक कार्यों में पंडितों और सयानों की राय के बिना कोई काम ही नहीं होता। समाज में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ जाने से जहाँ जनता का धन व्यर्थ नष्ट होता रहता है, वहाँ बेकार और निठल्ले लोगों से राष्ट्र की कुछ भी भलाई नहीं होती। देश में साधू, संन्यासियों और भिखमंगों की संख्या एक करोड़ से भी अधिक है। यदि इतनी बेकारों की संख्या से उत्पादन का कार्य लिया जाय तो देश की कितनी अधिक आर्थिक बचत हो सकती है।

उपसंहार—अन्य भी बहुत से छोटे मोटे दोष हिन्दू-समाज में पाये जाते हैं। इन दोषों के रहते हुए हिन्दू-समाज की उन्नति के मार्ग रुके हुए हैं। वर्षों से समाज-सुधारक हिन्दू-समाज की बुराइयाँ दूर करने में संलग्न हैं परन्तु लोगों में रूढ़िगत विचारों और संस्कारों का इतना शक्तिशाली प्रभाव है, कि सुधार का काम निर्धारित सीमा से आगे नहीं बढ़ पाता। अब देश में जन-प्रिय सरकार की स्थापना हो गई है और वह भी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न कर रही है। परन्तु जब तक कानून द्वारा शक्ति-प्रयोग से हिन्दू-समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया जायगा, तब तक सफलत्ता नहीं मिलेगी। वर्त्तमान दोषों के दूर होने पर ही हिन्दू-समाज की उन्नति की आशा की जा सकती है।

मितव्ययता

परिभाषा—धन के सदुपयोग का दूसरा नाम ही मितव्ययता है। जो व्यक्ति अपनी आय से कम व्यय करता है और ऐसे कार्यों में व्यय करता है जो उसके सुख के साधनों में वृद्धि करते हों, जिनसे वह अपनी तथा अपने घर की आवश्यकताओं की भलीभाँति पूर्त्ति कर सकता हो, मितव्ययी कहलाता है। जो ऐसा नहीं करता, वह अमितव्ययी, अपव्ययी अथवा फिजूल खर्च कहलाता है।

मितव्ययता सभ्यता के साथ ही प्रारम्भ हुई है। इसकी नींव उस समय स्थिर हुई जब आज की आवश्यकता के साथ कल की आवश्यकता का भी विचार उदय हुआ। रुपयों के

आविष्कार से बहुत पूर्व इसका आरम्भ हुआ। मितव्ययता का अर्थ गृह-प्रबन्ध है। गृह-प्रबन्ध का यह अभिप्राय है कि व्यक्तिगत उन्नति और वृद्धि हो और सामाजिक तथा देश प्रबन्ध से यह तात्पर्य है कि सामाजिक धन-दौलत की वृद्धि हो। निजी और सार्वजनिक दोनों सम्पत्तियों का एक ही स्रोत है। धन श्रम से उत्पन्न होता है, मितव्ययता से सुरक्षित रहता है। और उद्योग से बढ़ता जाता है। व्यक्तिगत बचत का ही नाम संपत्ति है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह ही प्रत्येक समाज की भलाई का कारण है। परन्तु इसके विपरीत, व्यक्तिगत अपव्यय ही बड़े-बड़े समाजों की निर्धनता का कारण है और उनके पतन का कारण है। अतएव प्रत्येक मितव्ययी व्यक्ति को जन साधारण का हितैषी और उपकारी समझना चाहिये और प्रत्येक अपव्ययी को समाज का शत्रु।

मितव्ययी व्यक्ति परिश्रमी होता है—एक विद्वान का कथन है कि श्रम का परिणाम सुख है। श्रम से जो कुछ उत्पन्न किया जाय अथवा बचाया जाय वह केवल इसलिये नहीं कि उत्पन्न करना और बचाना हमारा धर्म है। पैदा करना और बचाना सुख के लिये होना चाहिये। हमें केवल अपने ही सुख का विचार नहीं होना चाहिये, अपितु अपने अधीन और अपने आश्रितों के सुख का भी विचार होना चाहिये। परिश्रमी व्यक्ति को यह अवश्य जानना चाहिये कि धन किस प्रकार पैदा किया जाता है, किस प्रकार व्यय किया जाता है और किस पकार बचाया जाता है। जो व्यक्ति इन बातों को जानता है वही वास्तव में विद्वान है।

मितव्ययता सभी गुणों की जननी है—प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्थिति सुधारने के लिये और सुख पूर्वक जीवन

व्यतीत करने के लिये श्रम करना चाहिये। इसके लिये उसका कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपनी आमदनी में से कुछ बचा कर रखता जाय। मनुष्य अपनी आजीविका श्रम से करता है। श्रम से ही उसे जानना चाहिये कि मैं किस प्रकार जीवन निर्वाह करूँ। मितव्ययता ही स्वावलम्बन की नीव और जड़ है। सत्यपरायणता, दयालता, उदारता, आत्म निर्भरता, दूरदर्शिता और मितव्ययता आदि जितने भी गुण हैं, वे सब रुपये के सदुपयोग से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं और इसके विपरीत, कृपणता, निर्दयता, अदूरदर्शिता, स्वार्थ, लोभ, मोह, आदि जितने अवगुण हैं वे सब रुपये के दुरुपयोग से सम्बन्ध रखते हैं।

मितव्ययता के लाभ—मितव्ययता स्वाभाविक गुण नहीं है। अभ्यास और उद्योग से इसे विकसित किया जाता है। मितव्ययी बनने के लिये इच्छाओं का दमन किया जाता हैं, वासनाओं को वश में रखना होता है। मितव्ययता आज की आवश्यकताओं को पूरा करती है और कल के लिये साधन इकट्ठा करती है। मनुष्य को सदैव भावी आवश्यकतओं का ध्यान रखना आवश्यक है। उसे सदा-परिणाम-दर्शी होना चाहिये। जो परिणाम-दर्शी होगा, उसे कभी दुखी न होना पडेगा भविष्य को जान लेना कोई महत्व की बात नहीं, परन्तु भविष्य के लिये तैयार रहना बड़े गुण की बात है। संसार में उन लोगों की संख्या अधिक है जो भविष्य का ध्यान न रखते हुए केवल वर्तमान की चिन्ता करते हैं। वे न तो अपने लिये ही धन संग्रह करते हैं और न अपने कुटुम्ब के लिये ही। जितना पैदा करते हैं, सब खर्च कर डालते हैं उनकी आय अधिक भी है परन्तु आय से अधिक व्यय कर डालते हैं अतः सदैव निर्धन बने रहते हैं।

किसी विद्वान ने कहा है कि धनवान वे लोग नहीं जिनकी आय अधिक है अपितु वे हैं जिनका खर्च आय से कम है। मितव्ययता की व्यक्तिगत जीवन में ही आवश्यकता नहीं होती, बल्कि समाज और देश के लिये भी इसकी आवश्यकता है। जो देश अथवा समाज जितना अधिक मितव्यय होता है, वह उतना ही अधिक समृद्ध और सम्पन्न होता है।

धन का अपव्यय—किसी समाज को धन के अभाव से उतनी हानि नहीं पहुँचती जितनी धन के नष्ट करने से पहुँचती है। धन का पैदा करना सरल है, परन्तु उसका व्यय करना कठिन है। व्यय की ओर ध्यान न देते हुए, आय का कोई महत्त्व ही नहीं। यदि कोई व्यक्ति एक हजार रुपये महीने में पैदा करे और डेढ़ हजार खर्च कर डाला करे तो उसे सदैव ही ऋणी रहना पड़ेगा और ऋणी कभी सुखी नहीं रह सकता। अतः धन के उपार्जन का मूल्य तभी है जब आय से व्यय कम हो और भविष्य के लिये कुछ बचत हो जाया करे।

मितव्ययी बनने के उपाय (समय का सदुपयोग)—मितव्ययी बनने के लिये कई बातों की आवश्यकता है समय का सदुपयोग मानो धन का सदुपयोग है। जो व्यक्ति समय का मूल्य नहीं जान सकता वह कभी मितव्ययी भी नहीं हो सकता, फ्रेंकलिन ने कहा है कि यदि कोई धन पैदा करना चाहता है तो उसे उचित है कि समय को व्यर्थ नष्ट न करे। ज्ञान, विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य इत्यादि अनेक कार्यों में समय का सदुपयोग किया जा सकता है। नियम पूर्वक चलने से बहुत कुछ समय बच सकता है और मनुष्य बहुत काम कर सकता है। किसी ने कहा कि जिस मनुष्य के पास बीस कार्यों के लिये समय है, उससे यह आशा की जा सकती

है कि वह इक्कीसवाँ कार्य भी कर देगा, परन्तु जिसके पास एक भी काम नहीं है, उससे किसी साधारण काम की भी आशा नही करनी चाहिये। अतः प्रत्येक काम के लिये नियत समय होना चाहिये।

आवश्यक वस्तुएँ ही खरीदो—मितव्ययी व्यक्ति को फिजूल खर्ची से बचना चाहिये। जिस वस्तु की आवश्यकता न हो, उसे ले लेना ही फिजूल खर्ची है। यह न सोचना चाहिये कि यह वस्तु कभी न कभी काम आयेगी ही। यदि अपने पास आवश्यकताओं से अधिक धन हो तो उसे ऐसे कार्यों में लगाना चाहिये जिससे उसकी वृद्धि हो। आवश्यकताओं को जितना बढ़ाया जाय उतनी ही बढ़ जाती हैं और जितना घटाया जाय उतनी ही घट जाती हैं। वास्तव में सच्चा सुखी व्यक्ति वही हो सकता है जिसकी आवश्यकताएँ कम से कम हों। किसी व्यक्ति को यह भी नहीं कहना चाहिये कि वह मितव्ययी नहीं बन सकता क्योंकि उसकी आय कम है। यदि सप्ताह में एक रुपया भी बचाया जावे तो २० साल में लगभग १००० रु० हो जायेंगे और अगले बीस वर्षों के सूद लगाकर कई हजार हो जायेंगे। यदि कोई सप्ताह में एक रुपया भी नहीं बचा सकता तो न सही, आठ आने, चार आने, दो आने ही बचाने चाहिये। सेविंग बैंक सब जगह मौजूद हैं। बचत का रुपया मौजूद हैं, बचत का रुपया उन में भी जमा किया जा सकता है चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो। इससे मितव्ययता का अभ्यास होने लगेगा और अभ्यास हो जाने पर अधिक रुपया भी बचाया जा सकता है।

छोटी छोटी वस्तुओं को तुच्छ मत समझो—मितव्ययी व्यक्ति के लिये यह भी आवश्यक है कि वह छोटी से छोटी

वस्तु की भी पर्वा करे। किसी साधारण वस्तु को यह समझ कर कि यह हमारे क्या काम आ रही है, फेंक नहीं देना चाहिये क्योंकि जो वस्तु अपने पास है वह न मालूम कब काम आजाय। दूसरे जिस वस्तु से जितना अधिक काम लिया जा सके उससे उतना ही लेना चाहिये। घर की बहुत सी साधारण कही जाने वाली वस्तुओं को अधिकांश लोग समय से पहिले ही फेंक देते हैं और नई ले लेते हैं। परन्तु यदि हिसाब लगाया जाय वर्ष में सैकड़ों रुपये का इस प्रकार अपव्यय हो जाता है। अतः यह बहुत ही आवश्यक है कि उपयोगी वस्तुओं को बहुत ही सावधानी से वरता जाय और उनका अधिक से अधिक उपयोग किया जाय।

मितव्ययता और गृह प्रबन्ध—मितव्ययता का वास्तविक अर्थ गृह प्रबन्ध है। इसका यह तात्पर्य है कि हम अपनी आमदनी का ठीक ठीक हिसाब रक्खें, उसको उचित रूप से व्यय करें, फिज़ूल खर्ची से बचें, विवेक और दूर दर्शिता से कामलें, किसी भी वस्तु को व्यर्थ न समझें प्रत्येक वस्तु से जहाँ तक हो सके लाभ उठावें और रुपये को केवल बचाने के ही उद्देश्य से न बचावें किन्तु इसलिये बचावें कि वह आवश्यकता के समय अपने और दूसरों के काम आजाय। जिन लोगों ने इस उद्देश्य से थोड़ा थोड़ा भी बचाना आरम्भ किया है उन्होंने थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ धन इकट्ठा कर लिया है और उससे उन्होंने अपने कुटुम्बियों, सम्बन्धियों तथा देश वासियों का बहुत उपकार किया है। दूसरों पर दया दिखलाने, दान करने तथा ग़रीबों की सहायता करने से आज तक कोई निर्धन नहीं हुआ है। हाँ स्वार्थ और विषय वासनाओं में फँस कर सैकड़ों और हजारों नष्ट हो गये।

धन बचाने के नियम—लोग पूछ सकते हैं कि जिनकी

आय कम है, वे किस तरह धन बचा सकते हैं। परन्तु बचाने के नियम बड़े सरल हैं और वे अधिक आय वालों तथा कम आय वालों पर समान रूप से लागू होते हैं। सबसे पहिला नियम यह है कि आमदनी से कम खर्च करना चाहिये और भविष्य के लिये कुछ न कुछ बचा कर अवश्य रखना चाहिये। दूसरा नियम यह है कि प्रत्येक वस्तु नकद दाम देकर खरीदनी चाहिये और उधार कोई वस्तु न लेनी चाहिये। तीसरा नियम यह है कि आशा के ऊपर कोई खर्च नहीं करना चाहिये। चौथे आय और व्यय का पूरा पूरा हिसाब रखना चाहिये। पहिले से ही आय और व्यय का ऐसा हिसाब बना लेना चाहिये जिसमें व्यय कभी भी आय से अधिक न बैठे। पाँचवां नियम यह है कि सदा इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि कोई वस्तु व्यर्थ न जाने पावे। हर एक वस्तु का ठीक ठीक उपयोग होना चाहिये, और प्रत्येक के लिये नियत स्थान होना चाहिये तथा प्रत्येक कार्य नियमानुसार तथा समय पर होना चाहिये। जो व्यक्ति इन नियमों के अनुसार चलेगा वह जीवन में कभी दुखी नहीं हो सकता चाहे उसकी आमदनी कम ही क्यों न हो। वही वास्तव में सच्चा सुखी और मितव्ययी कहलायेगा। ऐसा ही व्यक्ति अपनी, अपने कुटुम्ब की तथा समाज और देश की भलाई कर सकता है। संक्षेप मे कहा जा सकता है कि सुखी और और आदर्श जीवन की कुंजी मितव्ययता है

समय का सदुपयोग

प्रस्तावना—बहुत से लोगों ने समय की तुलना धन या सोने से की है परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो समय धन से कहीं अधिक मूल्यवान है। मानव-जीवन में धन तो केवल साधन मात्र है परन्तु समय, जीवन का सब कुछ है, वह स्वयं जीवन है। जीवन से यदि धन को निकाल दिया जाय तब भी जीवन बना रह सकता है क्योंकि प्राचीन युग में जब धन का अस्तित्व नहीं था, तब भी लोग सुखी थे और जीवित रहते थे। परन्तु यदि जीवन से समय को निकाल दिया जाय तो जीवन में कुछ नहीं रहता। जीवन समय से बना है। अतः समय की तुलना धन से करना, उसके महत्त्व को घटाना है। दूसरे, धन को एक बार नष्ट कर देने से उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है परन्तु समय फिर कभी लौट कर नहीं आता। फ्रैंकलिन महोदय ने कहा है कि "क्या तुम्हें अपने जीवन से प्रेम है? तब समय को व्यर्थ नष्ट मत करो, क्योंकि जीवन इसी से बना है।" शेक्सपियर ने लिखा है कि "मैंने समय को नष्ट किया और अब समय मुझे नष्ट कर रहा है।"

समय का महत्व—समय का कितना महत्त्व है, यह समझ लेने पर उसके सदुपयोग का प्रश्न उठता है क्योंकि समय तो ऐसी वस्तु है जो बराबर आगे ही बढ़ती रहती है चाहे उसका सदुपयोग किया जाय अथवा दुरुपयोग। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने जीवन के समय को इस भाँति व्यय करें जिससे हमारे सुख की वृद्धि हो, हमारी आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति हो। हमारे जीवन की सफलता और असफलता समय के सदुपयोग और

दुरुपयोग पर ही निर्भर है। संसार में जितने भी महान् व्यक्ति हुए हैं उन्होंने अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं होने दिया है। जो व्यक्ति समय के एक क्षण का मूल्य जानता है वही वास्तव में जीवन के मूल्य को समझता है।

समय का दुरुपयोग—खेद की वात है कि हम में से अधिकांश, समय के मूल्य को नहीं जानते। हमारे सामने घन्टों की तो कोई कीमत ही नहीं। दिन और महीनों तथा वर्ष एक के वाद एक चले जाते हैं ;और हम उनसे कोई लाभ नहीं उठा पाते। प्रत्येक सुन्दर प्रभात, सुन्दर चीजें लेकर उपस्थित होता है पर यदि हमने कल तथा परसों के प्रभात की कृपा से लाभ नहीं उठाया तो आज के प्रभात से लाभ उठाने की हमारी शक्ति क्षीण होती चली जायेगी और यही गति रही तो एक दिन यह शक्ति विल्कुल नष्ट हो जायेगी। किसी विद्वान ने कहा है कि खोई हुई सम्पत्ति कम खर्ची और परिश्रम से प्राप्त की जा सकती है, भूला हुआ ज्ञान, अध्ययन से प्राप्त हो सकता है, गँवाया हुआ स्वास्थ्य दवा और संयम से लौटाया जा सकता है परन्तु नष्ट किया हुआ समय सदा के लिये चला जाता है। माइकेल फैरेडे किताबों की जिल्द वाँधा करता था। उसने अपने समय के सदुपयोग से विज्ञान-संसार में कितनी ख्याति प्राप्त करली। उसने अपने मित्र को एक वार लिखा था, "मुझे समय की आवश्यकता है। क्या ही अच्छा होता यदि मैं सस्ते भाव पर वर्त्तमान महाशयों की वचत के घण्टों—नहीं, नहीं, दिनों को खरीद सकता।"

यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से एक घण्टा प्रति दिन पढ़े तो कुछ ही वर्षों में वह विद्वान हो जाय। एक घण्टा प्रति दिन २० पृष्ठ पढ़ने वाला व्यक्ति एक वर्ष में कई हजार पृष्ठों को पढ़ लेगा। एक घण्टा प्रति दिन उपयोग करने से

साधारण व्यक्ति महान हो सकता है। प्रति दिन १ घण्टा जो व्यक्ति कमाने में खर्च करेगा वह काफी धन इकट्ठा कर सकता है। जब एक घण्टे के समय में इतनी शक्ति है तो हमारे नवयुवक चार छः घण्टे प्रति दिन व्यय करके कितनी भूल करते हैं। यदि वे अपने इतने समय को नष्ट न होने दें तो वे संसार में क्या करके नहीं दिखला सकते।

समय का सदुपयोग—कुछ लड़के समय के इधर-उधर के क्षणों को बचा कर अच्छा अध्ययन कर लेते हैं। चार्ल्स फ्रास्ट नामक चमार एक घण्टा प्रति दिन पढ़ कर संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका का सबसे बड़ा गणितज्ञ बन गया था। जान हण्टर और नैपोलियन केवल चार घण्टे सोते थे। टामस एडीसन केवल तीन घण्टे सोता था। आज के दिन ही हम अपने भविष्य को बनाते हैं, अपने भाग्य को निर्धारित करते हैं। हमें एक मिनट का समय भी व्यर्थ न जाने देना चाहिये। समय नष्ट कर देने का अर्थ है शक्ति का नाश, सामर्थ्य का नाश और अपने चरित्र का पतन। हम फिर फ्रैंकलिन के कथन को दुहरा देना चाहते हैं, "क्या तुम्हें अपने जीवन से प्रेम है? तब समय को व्यर्थ नष्ट न करो, क्योंकि जीवन उसी से बना है।"

प्राचीन समय में जब यातायात के अधुनिक साधन नहीं थे, तब भी लोग समय के मूल्य को अच्छी तरह समझते थे। चिट्ठी पत्री और सरकारी कागज आदि ले जाने के लिये डाकिये रहा करते थे, जो पैदल ही यात्रा करते थे। उन्हें आदेश था कि यदि वे देर से डाक बाँटेंगे या मार्ग में बिना किसी उचित कारण के ठहरेंगे तो मृत्यु-दण्ड पायेंगे। इस प्रकार उन्हें समय के व्यर्थ खोने का भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता था। आज जब हमारे पास यातायात के इतने

सुलभ साधन प्राप्त हैं और जब हम महीनों की यात्रा को कुछ ही घण्टों में पूरा कर लेते हैं तो भी क्या लाभ हुआ। जो समय बचता है उसे व्यर्थ ही नष्ट करते रहते हैं। इस वैज्ञानिक सभ्यता से हमने क्या लाभ उठाया ? समय की पाबन्दी के विषय में हम अपने पूर्वजों से कहीं अधिक गये बीते हैं। अब यदि हमें समय अधिक मिलने लगा तो उसका दुरुपयोग भी बढ़ गया।

समय के सदुपयोग में यह बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक काम ठीक और नियमित समय पर हो। संसार की बड़ी-बड़ी भयानक घटनाएँ समय की देरी के कारण हो गई हैं। सीजर राज-सभा में एक समाचार सुनाने के लिये कुछ विलम्ब से पहुँचा और इसके लिये उसे अपने प्राण देने पड़े। नैपोलियन बौनापार्ट समय के मूल्य को भली भाँति समझता था। अनुकूल अवसर को वह कभी हाथ से न जाने देता था। समय के सदुपयोग से ही उसने बड़ी-बड़ी विजयें प्राप्त की थीं। परन्तु उसके पतन और वाटरलू के युद्ध में उसकी हार का कारण कुछ घड़ियों की देरी थी। नैपोलियन के आदेशानुसार उसका एक सेनापति ग्रूशी ठीक समय पर एक मोर्चे पर न पहुँचा और इसी एक घटना से नैपोलियन हार गया और बन्दी बना लिया गया।

समय की पाबन्दी—अधिकांश लोग काम को टालते रहते हैं और यह सोच लेते हैं कि अभी तो बहुत समय है कल कर लेंगे। परन्तु एक बार काम को टाला कि फिर वह पूरा होता ही नहीं। जो काम आज करने का है वह आज ही पूरा होना चाहिये। यदि आज उसे कल के लिये छोड़ दिया तो कल वह अच्छी तरह पूरा हो ही नहीं सकता क्योंकि उसके साथ कल के कामों के बोझ की चिन्ता होगी।

जो बात आज बड़े आनन्द और सुख के साथ की जा सकती है वह कल हमें दुख पहुँचाने वाली हो जायगी। पत्रों का उत्तर जितनी अच्छी तरह आज दिया जा सकता है, वह कल नहीं दिया जा सकता है। बड़े बड़े कारखाने वाले और सफल कहलाने वाले व्यवसायी पत्रों का उत्तर कल पर नही टालते। अतः प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह व्यवसायी हो या नौकर हो, विद्यार्थी हो अथवा किसी भी कोम को करता हो यह नियम बना लेना चाहिये कि आज के काम को कल के लिये नहीं छोड़ा जायगा।

शरीर जब स्वस्थ होता है तो आलस्य पास नहीं आता और काम कभी भारी नहीं लगता। टाल देने का अभिप्राय लगभग छोड़ देने का होता है। ग्रामीण कहावत है कि अपाढ़ का चूका किसान और डाल का चूका बंदर कहीं का नहीं रहता। काम करना भी एक प्रकार का बीजा-रोपण ही है। यदि वह ठीक समय पर नहीं बोया जायगा तो उससे अच्छे फलों की आशा व्यर्थ है। मेरिय एजवर्थ ने कहा है कि वर्त्तमान के समय के समान कोई समय नहीं, कोई घड़ी नहीं। कोई व्यक्ति यदि अपने निश्च ों को तुरन्त ही पूरा नहीं करता तो बाद में उनके पूरे होने की कोई आशा नहीं। वे नष्ट भ्रष्ट हो जायँगे और संसार के जन-रव में लुप्त हो जायँगे अथवा आलस्य के दल दल में फँस जायँगे। सरवाल्टर रेले से एक व्यक्ति ने पूछा—"आप इतना अधिक काम इतने कम समय में कैसे कर डालते हैं?" रेले ने उत्तर दिया—"मुझे जो कुछ करना होता है उसे मैं उसी समय कर डालता हूँ।"

आलस्य—प्रायः जब एक काम समाप्त हो जाता है

तो लोग विश्राम करने लगते हैं। परन्तु यह विश्राम बड़ा घातक होता है। उस विश्राम से आलस्य घर दबाता है और फिर काम करने को जी नहीं करता। काम करना भी एक प्रकार का नशा होता है जो एक बार उतर गया तो फिर आसानी से नहीं चढ़ता। जो कुछ समय का सदुपयोग होता है वह नष्ट हो जाता है। अतः जीवन में प्राकृतिक विश्राम के अतिरिक्त अन्य किसी विश्राम के लिये स्थान नहीं। रस्किन का कहना है कि युवावस्था का सारा समय एक प्रकार की रचना, एक प्रकार के सुधार और शिक्षण का काल है। उसका एक भी घण्टा ऐसा नहीं जो भाग्य-निर्माण के लिये उपयोगी न हो। ऐसी एक भी घड़ी नहीं जाती जिसका कार्य फिर से किया जा सकता हो। लोहा ठंडा होने पर घन पटकने से क्या लाभ।

प्रातःकाल की घड़ियाँ—बहुत से लोग प्रातः काल के समय को व्यर्थ नष्ट कर देते हैं। परन्तु यह समय बहुत मूल्यवान होता है। इस समय की बड़े बड़े लेखकों और विद्वानों ने प्रातःकाल की घड़ियों की बड़ी प्रशंसा की है। वास्तव में संसार के महान् व्यक्ति प्रातःकाल ही उठा करते थे। रूस का महान् बादशाह 'पीटर दि ग्रेट' सूर्योदय से काफी पहिले उठा करता था। कोलम्बस ने अमेरिका की यात्रा की योजना प्रात.काल के ही घंटों में तैयार की थी। नैपोलियन अपने बड़े बड़े युद्धों का कार्य-क्रम प्रातःकाल के समय में ही बनाया करता था। अमेरिका का प्रकांड विद्वान वेब्स्टर कलेवा करने से पहिले तीस तीस पत्रों के उत्तर लिख लिया करता था। विद्यार्थियों के लिये तो प्रातःकाल के समय से अच्छा कोई समय ही नहीं। इस समय स्मरणशक्ति जितनी तीव्र रहती है उतनी दिन में किसी समय नहीं। यही

समय होता है जिसमें कि वे अपने दिन भर के पाठ को याद कर सकते हैं।

उपसंहार—प्रत्येक व्यक्ति को समय पर कार्य करने का अभ्यास डालना चाहिये। बिना इसके समय का सदुपयोग नहीं हो सकता। जो आदमी नियमित रूप से कार्य करता है उसी में लोगों का विश्वास हो जाता है और उसकी बात का भरोसा होता है। नियमपूर्वक काम करने से स्वयं अपने हृदय को भी बड़ी शान्ति रहती है और आत्म-विश्वास भी उत्पन्न हो जाता है जो जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये सबसे आवश्यक वस्तु है।



हम दीर्घजीवी किस प्रकार हो सकते हैं ?

दीर्घ-जीवन की स्वाभाविक इच्छा—दीर्घजीवी बनने की इच्छा सभी लोगों को होती है। निर्धन हो या धनी, शिक्षित हो अथवा अशिक्षित हो, साधारण हो या महान् प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक जीवित रहना चाहता है। बड़े-बड़े महान् पुरुष और दार्शनिक भी जो इस जीवन को खेल समझते हैं और संसार को मिथ्या समझते हैं, अधिक दिन जीवित रहने की इच्छा रखते हैं। अत्यन्त दुखी व्यक्ति भी जिसे संसार में कोई दुख नहीं, मरना नहीं चाहता। लोग, अक्सर यह कहते सुने जाते हैं कि हमें जीवित में कोई सुख नहीं, ससार से हम ऊब रहे हैं और मरकर हम सब दुखों से छुटकारा पाजायेंगे। परन्तु जब वे लोग बीमार हो जाते हैं और मरणासन्न हो जाते हैं, तो बीमारी से छुटकारा पाने के लिये और मृत्यु के बचने के लिये जी-जान एक कर

देते हैं। ६० वर्ष का बुड्ढा भी जो पैरों से चल नहीं सकता आँखों से देख नहीं सकता, इन्द्रियाँ जिसकी सब शिथिल पड़ गई हैं, मरना नही चाहता। तात्पर्य यह कि सभी व्यक्तियों की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वे अधिक से अधिक दिन जीवित रहें।

वर्तमान समय का अल्प जीवन—दुर्भाग्य का विषय है कि मनुष्य चाहते हुए भी आज दीर्घजीवी नहीं हो सकता। यदि हम चाहें और दीर्घ जीवी होने के नियमों का पालन करें तो १०० वर्ष की आयु पाना कोई बात नहीं। पहले समय में लोगों की आयु अब से अधिक होती थी। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में एक हजार वर्ष की आयु पाने वाले ऋषियों का उल्लेख मिलता है। कोई व्यक्ति यदि युवावस्था में मर जाता था, अथवा सौ वर्ष से पहिले मर जाता था तो वह एक असाधारण घटना समझी जाती थी। आज भारतवर्ष के पुरुषों की औसत आयु २० वर्ष है। लाखों की ही संख्या में वालक और युवा प्रतिवर्ष मरते रहते हैं। साठ वर्ष की आयु तक पहुँचजाने वाला तो वड़ा भाग्यशाली माना जाता है। २५ वर्ष की आयु में ही युवकों के गाल वैठ जाते हैं, वाल पकने लगते हैं और शक्ति क्षीण होने लगती है। ३० वर्ष से ऊपर तो बुढ़ापे के सभी चिन्ह प्रकट हो जाते हैं।

अल्प जीवी होने के कारण—इन सब वातों का क्या कारण है? क्यों हम अधिक आयु प्राप्त नहीं कर पाते? क्यों शीघ्र ही बुढ़ापा हमे घेर लेता है? और क्यों हमारी युवावस्था क्षणिक होती है। कारण यह कि हमने प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करदी है। प्रकृति से हम दूर होते जा रहे हैं। हमारे जीवन में कृत्रिमता आगई है। स्वास्थ्य के

मूल्य को हम नहीं समझते। अपनी इन्द्रियों के दास हो गये हैं स्वाद और काम के वशीभूत हो गये हैं। भोग विलास के आदी हो गये हैं। शारीरिक सुख और इन्द्रिय-लिप्सा ही हमारा सिद्धान्त बन गया है। सात्विक जीवन का कोई महत्व हमारे लिये नहीं रहा। यदि हम दीर्घजीवी होना चाहते हैं तो इन सब बातों से हमें विमुख होना पड़ेगा। स्वास्थ्य के सभी नियम पालन करने होंगे। स्वास्थ्य लाभ और दीघजीवी होने के कुछ आवश्यक नियम यहाँ संक्षेप में दिये जाते हैं।

ब्रह्मचर्य की आवश्यकता—सबसे प्रथम हम ब्रह्मचर्य को लेते हैं क्योंकि विना इसके किसी भी नियम का पालन नही हो सकता। ब्रह्मचर्य की महिमा को सभी ने स्वीकार किया है। विज्ञान भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। हमारे प्राचीन ऋषि और पूर्वज ब्रह्मचर्य का पालन करके ही दीर्घ-जीवी होते थे। किसी ने कहा है कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है। वर्त्तमान समय में जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना तो एक प्रकार से असंभव ही है और न इसकी आवश्यकता ही है। परन्तु २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहना तो नितान्त आवश्यक है। इसके पश्चात् गृहस्थ में प्रवेश करके संयम से रहना चाहिये। आज हमारे नवयुवकों की युवावस्था के शीघ्र बीत जाने का एक मात्र कारण अत्यधिक वीर्य का नाश ही है। यह अवस्था ऐसी होती है कि यदि इसमें वीर्य की रक्षा की जायगी, तो रूखा सूखा खाकर भी मनुष्य स्वस्थ बना रहेगा। आँखों में ज्योति, कपोलों पर लाली चाल में अकड़ और छाती का उभार, ये सब बातें ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से आती हैं। कवि ने ठीक ही कहा है कि :—

"जिस ब्रह्मचर्याश्रम नियम का ध्यान जब से हट गया,
सम्पूर्ण शारीरिक तथा वह मानसिक बल घट गया"

यदि वैवाहिक जीवन में मनुष्य ब्रह्मचर्य का साधारण रूप से पालन करता रहे और साथ ही स्वास्थ्य के अन्य नियमों का पालन करे तो वह दीर्घ जीवी हो सकता है। महात्मा गाँधी ने दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिये सबसे पहिला नियम ब्रह्मचर्य ही को बतलाया है।

उत्तम भोजन— दीर्घजीवी होने में भोजन का भी बहुत हाथ है। मनुष्य जो कुछ परिश्रम करता है, उसमें शक्ति का क्षय होता है। भोजन से यह शक्ति आती है। अतः हमें ऐसा भोजन करना चाहिये जो शक्ति वर्द्धक हो और सुपाच्य हो। भोजन का मुख्य उद्देश्य उससे शक्ति प्राप्त करना है न कि स्वाद लेना। परन्तु आजकल भोजन स्वाद के लिये किया जाता है। भोजन के स्वाभाविक गुणों को तो मिर्च. मसाले डाल कर नष्ट कर दिया जाता और उसे गरिष्ट बना दिया जाता है। ऐसा भोजन जहाँ देर से पचता है, वहाँ उससे कोई लाभ भी नहीं होता। भोजन सात्विक होना चाहिये। भोजन में प्राकृतिक तत्वों की प्रधानता रहनी चाहिये। यदि देखा जाय तो फल और दूध सबसे उत्तम खाद्य पदार्थ है। मानव-शरीर के लिये जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे सब फल और दूध में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अधिक गर्म करने से शाक भाजियों के पोपक तत्व नष्ट हो जाते हैं अतः वस्तुओं को अधिक पकाना भी नहीं चाहिये। कच्चे शाकों का जितना प्रयोग किया जाय उतना ही अच्छा है। गर्म मसाल से भोजन उत्तेजक बन जाता है और उसके प्राकृतिक गुण नष्ट हो जाते हैं। यदि मनुष्य मसालों का प्रयोग छोड़ दें तो प्रारम्भ में कुछ कठिनाई तो अवश्य प्रतीत

होगी परन्तु धीरे-धीरे उसी में स्वाद आने लगेगा। दूसरी बात भोजन के सम्बन्ध में यह भी ध्यान देने की है कि कभी भी भूख से अधिक भोजन न करना चाहिये। जो लोग भूख न होने पर भी खाते हैं अथवा भूख से अधिक खाते हैं वे ही बीमार होते हैं। यदि भोजन कम किया जाय तो आदमी बीमार ही न हो। जो व्यक्ति अपनी स्वाद इन्द्रिय पर अधिकार रख सकता है वही अपने मन पर भी अधिकार रख सकता है। स्वास्थ्य और भोजन का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है।

स्वच्छता—दीर्घजीवी होने के लिये तीसरी बात यह है कि मनुष्य स्वच्छता का ध्यान रक्खे। स्वच्छ हवा और स्वच्छ पानी स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। गन्दी हवा में साँस लेने से अनेकों रोग पैदा हो जाते हैं। प्रातःकाल की ठंडी हवा स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक होती है। वस्त्रों की सफाई भी रखनी चाहिये और प्रतिदिन स्नान करना चाहिये। वास्तव में गन्दगी से ही रोग के कीटाणु फैलते हैं। स्वच्छता से शरीर तो नीरोग रहता ही है, इससे मन पर भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास हो सकता है।

व्यायाम—ब्रह्मचर्य, भोजन और स्वच्छता के पश्चात् दीर्घजीवी होने के लिये व्यायाम भी बहुत आवश्यक है। बिना व्यायाम के शरीर में आलस्य बना रहता है और शरीर की पूरी सफाई नहीं होती। भोजन चाहे कितना ही सादा क्यों न हो, परन्तु उसे पूरी तरह पचाने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है। नियमित रूप से शारीरिक परिश्रम करने को ही व्यायाम कहते हैं। व्यायाम से भोजन भली भाँति पच जाता है और उसके सभी पोषक तत्वों को आमाशय

ग्रहण कर लेता है। भोजन को पचाने के अतिरिक्त, व्यायाम से शरीर के अवयव सुडौल और हृष्ट पुष्ट होते हैं। रुधिर का संचार तीव्र हो जाता है। पसीना के रूप में शरीर का मल बाहर निकल जाता है और शरीर की आन्तरिक सफाई हो जाती है। यह बात ध्यान देने की है कि व्यायाम नियमित रूप से प्रतिदिन करना चाहिये और खुली हवा में करना चाहिये। किसान दिन भर अपने खेत में परिश्रम करता है और लुहार हथौड़ा चलाता है परन्तु इस प्रकार का परिश्रम व्यायाम की श्रेणी में नहीं आता। भोजन के तुरन्त पश्चात् और भूख में भी व्यायाम करना हानिप्रद होता है। अपनी शक्ति के अनुसार ही व्यायाम होना चाहिये। युवावस्था में दण्ड बैठक, तैरना, मुगदर हिलाना आदि व्यायाम किये जा सकते हैं परन्तु वृद्धावस्था में इस प्रकार के व्यायाम से शक्ति क्षीण होती है। इस अवस्था में तो केवल खुली हवा में घूमना ही काफी है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक दीर्घजीवन के आकांक्षी व्यक्ति को अपनी अवस्था और शक्ति के अनुसार एक या दूसरे प्रकार का व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

विश्राम—दीर्घ जीवन के लिये जिस प्रकार व्यायाम की आवश्यकता है उसी प्रकार विश्राम की भी। परिश्रम करने से शक्ति क्षय होती है, भोजन और विश्राम से उसकी पूर्त्ति होती है। अत्यधिक शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम से बचना चाहिये। प्रकृति ने दिन काम करने के लिये बनाया है और रात विश्राम के लिए अतः रात्रि को अधिक देर तक नहीं जगना चाहिये। जिस प्रकार बिल्कुल परिश्रम न करने से शरीर आलसी और निकम्मा बन जाता है उसी प्रकार अत्यधिक परिश्रम से शरीर दुर्बल हो जाता है। दिन में कठोर परिश्रम करने वालों को रात्रि में जल्दी ही सो जाना

चाहिये देर तक जागते रहने से निद्रा भर पूर नहीं आती और शरीर को पूरा विश्राम नहीं मिलता। गहरी निद्रा स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़ मनुष्य के लिये सात घण्टे की निद्रा काफी होती है। आठ घन्टे से अधिक सोना भी हानिकारक है। प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व ही जग जाना चाहिये।

मनोरंजन-- मानसिक परिश्रम करने वालों को विश्राम के साथ ही मनोरंजन की भी आवश्यकता है। मनुष्य को हर समय गंभीर ही नहीं बना रहना चाहिये। कोई चित्त को प्रसन्न करने वाला साधन ऐसा होना चाहिये जिसमें मनुष्य अपने सब कामों की चिन्ता भूल कर खूब प्रसन्न हो सके। स्वास्थ्य की दृष्टि से मनोरंजन के साधन का चुनाव करना चाहिये। बागवानी, नौका विहार, उद्यान की सैर आदि उच्चकोटि के मनोरंजन हैं। चिन्ता से सदैव बचना चाहिये। यह बहुत बुरी वस्तु है। कहावत है कि चिता तो मरे हुए को ही जलाती है परन्तु चिन्ता से जीवित ही मनुष्य जलता रहता है। मन की प्रफुल्लता पर भी मनुष्य का स्वास्थ्य बहुत कुछ निर्भर करता है।

मादक पदार्थों से बचाव—दीर्घजीवन के लिये यह भी बहुत आवश्यक है कि मादक पदार्थों से बचना चाहिये। भाँग, गाँजा, तम्बाकू, शराब, अफीम आदि सभी मादक वस्तुएँ हैं। यह भी देखा जाता है कि मनुष्य उक्त वस्तुओं में किसी एक या दूसरी का सेवन करता हुआ भी बाहर से स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट दिखलाई देता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि इन वस्तुओं से कोई हानि नहीं पहुँचती। अधिक परिमाण में मादक पदार्थों के सेवन से तो हानि स्पष्ट ही दिखलाई देती है, परन्तु थोड़ी मात्रा का सेवन भी

अन्त में हानिप्रद होता है। विप चाहे अधिक हो, चाहे थोड़ा, आखिर वह है तो विप ही। प्रारम्भ में तो ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हानि नहीं हुई परन्तु धीरे-धीरे उसका प्रभाव स्पष्ट होने लगता है और बुढ़ापे में तो बात खुल ही जाती है। मादक पदार्थों के सेवन से शरीर की स्नायु-प्रणाली जर्जर हो जाती है और मस्तिष्क विकृत हो जाता हैं। दुर्भाग्य से आज कल बीड़ी और सिगरेटों का बहुत ही प्रचार हो गया है और अधिकांश व्यक्ति इनकी मादक पदार्थों में गणाना नहीं करते। परन्तु अब यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुकी है कि तम्बाकू में निकोटीन नामक एक बहुत ही हानि कारक विप होता है। तम्बाकू का सेवन किसी भी रूप में अच्छा नहीं। सारांश यह है कि र के नशों से मनुष्य को दूर रहना चाहिये।

सारांश—संक्षेप में कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य, सात्विक भोजन, स्वच्छता, व्यायाम, उचित विश्राम और मादक पदार्थों का निपेध आदि ही ऐसे साधन हैं जिनके पालन से मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है। उपर्युक्त नियमों पर चलने से जहाँ मनुष्य अपनी युवावस्था के सच्चे आनन्द का अधिक से अधिक उपभोग कर सकता है, वहाँ वृद्धावस्था को भी सुख पूर्वक व्यतीत कर सकता है।

मनुष्य-जीवन में परिश्रम का महत्व

उ० प्र० १९५०

प्रस्तावना—संसार के बड़े बड़े कार्य प्राय: साधारण योग्यता रखने वाले व्यक्तियों ने साधारण साधनों द्वारा

संपादित किये हैं। हमारे दैनिक जीवन में प्रतिदिन ही खाने पीने, चलने फिरने और साधारण कार्यों को करते हुए ही ऐसे अवसर आते हैं जिनके उपयोग से हम महान बन सकते हैं, बड़े बड़े कार्य कर सकते हैं और प्रतिभावान कहला सकते हैं। महान कार्यों के करने वाले साधारण व्यक्तियों में से ही होते हैं। प्रकृति की ओर से उन्हें कोई असाधारण योग्यता नहीं मिली होती और न उनके पास दूसरों से अधिक साधन ही होते हैं। केवल परिश्रम द्वारा ही वे उन्नति करते हैं और अन्त मे महान कहलाये जाते हैं।

परिश्रम-क्षमता ही प्रतिभा है—बहुत से मनुष्य कहते हैं कि सफलता प्राप्त करने के लिये, उन्नति के सर्वोच्च शिखिर पर पहुँचने के लिये तथा महान बनने के लिये प्रतिभा की आवश्यकता होती है। परन्तु ऐसा विचार नितान्त भ्रामक है। संसार के सबसे अधिक महान कहलाये जाने वाले व्यक्तियों ने कभी भी प्रतिभा (genius) में विश्वास नहीं किया। कुछ ने तो सहज-बुद्धि (common sense) के घनत्व को ही प्रतिभा कहा है। एक विद्वान् ने परिश्रम करने की शक्ति को ही प्रतिभा माना है। एक ने धैर्य को प्रतिभा कहा है।

न्यूटन वास्तव में उच्च मस्तिष्क-धारी था परन्तु जब उससे पूछा गया कि तुम्हारी असाधारण खोजों का क्या कारण है तो उसने उत्तर दिया कि मैं सदैव ही उनके विषय में सोचता रहता हूँ। एक बार उसने कहा था कि यदि मैंने कोई सार्वजनिक सेवा की है तो वह केवल अपने परिश्रम और धैर्य के कारण। महान कहे जाने वाले व्यक्तियों के परिश्रम को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि उनके कार्यों का कारण उनकी प्रतिभा नहीं थी, अपितु असाधारण परि-

श्रम था। वाल्टायर का मत है कि प्रतिभावान और साधारण व्यक्तियों की विभाजक रेखा अत्यन्त ही सूक्ष्म है। जो कार्य एक व्यक्ति कर सकता है, कोई कारण नहीं कि उसे दूसरा व्यक्ति न कर सके। अन्तर केवल योग्यताओं के कार्यान्वित करने का होता है। चाहे राजनीतिज्ञों के जीवन को उठा लीजिये चाहे, वैज्ञानिकों के जीवन को, चाहे कलाकार को ले लीजिये चाहे दार्शनिक या साहित्यकार को, यह बात सभी के जीवन में मिलेगी कि वे असाधारण रूप में परिश्रमी थे और कष्टों को सहन करने में वे सर्व साधारण से अधिक थे। तभी तो कारलाइल ने कहा है कि असाधारण रूप से कष्ट सह सकने की क्षमता ही प्रतिभा है। अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि बड़े बड़े कार्यों की जड़ प्रतिभा अथवा कोई अन्य प्रकृति-प्रदत्त योग्यता नहीं, बल्कि परिश्रम और साधारण योग्यता ही है और जो कि सामान्यतः सभी मनुष्यों को प्राप्त हैं।

अवसर——व्यवस्थित रूप से किये गये श्रम के लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं और विना इसके कोई वस्तु प्राप्य नहीं। गारफील्ड ने कहा है,—"कोई भी आदमी जब तक किसी वस्तु के लिये परिश्रम नहीं करेगा तब तक वह वस्त उसे मिल नहीं सकती।" प्रायः लोग सफलता प्राप्ति के लिये असाधारण अवसरों की बाट जोहा करते हैं। साधारण अवसर उनके लिये उपयोगी नहीं होते। परन्तु वास्तव में अवसर कोई वस्तु नहीं। परिश्रमी व्यक्ति साधारण बातों में ही अवसर ढूँढ लेते हैं। अवसर ढूँढने की शिकायत तो सदैव आलसी और निकम्मे आदमी ही किया करते हैं। दिन की प्रत्येक घटना एक अवसर है। स्कूल का प्रत्येक पाठ एक अवसर है। परीक्षा एक अवसर है। किसी व्यक्ति की अस-

द्वाय अवस्था एक अवसर है। तुम्हारे विश्वास पर छोड़ा हुआ प्रत्येक कार्य एक अवसर है। जीवन अवसरों से भरा पड़ा है। परन्तु कठिनाई तो यह है कि हम बिना परिश्रम के ही विद्वान बनना चाहते हैं, जुए के दाव के समान हम बिना प्रयत्न के ही विजयी और धनवान बनना चाहते हैं, उधार के धन पर श्रीमन्त कहलाना चाहते हैं और किसी अवसर द्वारा क्षण भर में ही महानता प्राप्त करना चाहते हैं। कैसा कपटपूर्ण व्यापार है ?

यदि वास्तव में तुम कुछ बनना चाहते हो, यदि सचमच तम उद्योगी हो तो एक मिनट भी व्यर्थ मत जाने दो। जो कुछ तुम्हारे सामने है उसी में परिश्रमपूर्वक लग जाओ। जिस बात को तुम कर सकते हो अथवा जिसका तुम स्वप्न देख सकते हो, उसे शुरू कर दो। सफलता तम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

अवगुणों की जड़ आलस्य—परिश्रम से ही मनुष्य, मनुष्यता प्राप्त करता है, उसी से वह स्वावलम्वी बनता है और उसी से वह चरित्रवान कहलाता है। सारी बुराइयों की जड़ आलस्य और निकम्मापन है। दुर्व्यसनों में ग्रसित आलसी व्यक्ति ही देखे जाते हैं। परिश्रमी को इतना समय ही नहीं मिलता। किसी ने कहा है कि यदि किसी व्यक्ति को सबसे अधिक कठोर दण्ड देना हो तो उसे एकान्त में बन्द कर दो और कुछ काम न करने दो। वास्तव में यदि देखा जाय तो आलसी और बेकार आदमी बहुत दुखी रहता है। उसकी सारी मानसिक शान्ति नष्ट हो जाती है और समय काटना कठिन हो जाता है। सिसेरो ने कहा है कि बेकारी को मैं एक प्रकार की आत्मा हत्या समझता हूँ।

कार्य का चुनाव—वही व्यक्ति भाग्य शाली है जिसे

कोई कार्य कैसा भी क्यों न हो यदि वह करने योग्य है और उसे किया जा सकता है तो अवश्य करना चाहिये। कोई भी कार्य वड़ा नहीं और कोई छोटा नहीं। परिश्रमी व्यक्ति छोटे से छोटे कार्य को ही वड़ा कर देते हैं। जिस काम में तुम सच्चा आनंद ले सकते हो, जिसमें तुम्हारा तन और मन एक हो सकते हैं जिसमें तुम अपने को और संसार को भूल सकते हो, वही कार्य तुम्हारे योग्य है और उसी के करने से तुम महान वन सकते हो। मनुष्य को अपने जीवन में ऐसा ही कार्य ढूँढना चाहिये जिसमें धन प्राप्ति के अतिरिक्त, उसे आनन्द भी मिले। जिस कार्य के करने में प्रसन्नता न होगी, उसमें कभी भी उन्नति नहीं हो सकती एक वार सुनिश्चित कार्य आरम्भ कर देने पर उसे अपनी सारी शक्तियों का क्रीड़ा स्थल बना देना चाहिये। दृढ़ निश्चय, परिश्रम और एकाग्रता से किया हुआ काम कभी असफल नहीं होता। किसी आरम्भ किये हुए कार्य को उत्तमता पूर्वक समाप्त करने और उससे यथेष्ट लाभ उठाने का ही नाम सफलता है। सफलता जूते वनाने में भी हो सकती है और करोड़ों रुपये का व्यापार करने में भी अथवा वड़े से वड़ा राज्य चलाने में भी। एक वार विवाह करते हुए एक वकील ने अपने प्रति पक्षी वकील से गर्म होते हुए कहा कि "मुझे मालूम है कि एक समय तुम्हारा पिता जूतों की मरम्मत किया करता था।" दूसरे ने वड़ी शान्ति से उत्तर दिया कि 'महोदय। हाँ यह वात पूर्णतः सत्य है, परन्तु क्या मेरे पिता जूतों की मरम्मत अच्छी तरह नहीं करते थे?' इस उत्तर से सभी लोग अप्रतिभ हो गये और उस वकील की तभी से वहुत ख्याति फैल गई। तात्पर्य यह है कि काम कोई बुरा नहीं। अकर्मण्य विद्वान से परिश्रमी वोझा ढोने वाला

कहीं अधिक अच्छा है। विश्व विजयी सम्राट नैपोलियन एक बार अपनी स्त्री के साथ घूमने जा रहे थे। सामने से एक बोझा लिये हुए एक मज़दूर आ रहा था। नैपोलियन ने स्वयं रास्ता छोड़ दिया और अपनी स्त्री से कहा कि 'श्री मती जी ! बोझे का सम्मान कीजिये और मार्ग छोड़ दीजिये"।

संसार के इतिहास में अनेकों उदाहरण हैं कि साधारण से साधारण व्यक्ति केवल परिश्रम द्वारा ही उन्नति के सर्वोच्च शिखिर पर पहुँच गये। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम कौन भारत वासी नहीं जानता। एक साधारण से परिवार में जन्म लेकर, ग़रीबी में पड़ कर और एक छोटी सी नौकरी करके उन्होंने अपने परिश्रम द्वारा ही इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया। जार्ज वाशिंगटन, अब्राहिम लिंकन, नैपोलियन, हिटलर इत्यादि सभी बहुत साधारण स्थिति से इतने ऊँचे, केवल अपने परिश्रम से ही उठे।

संसार कर्म क्षेत्र है—जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये सबसे प्रथम विधि यही है कि हम कोई न कोई काम करें। संसार कर्म-क्षेत्र है। यदि हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे तो कोई भी हमारी सहायता को नहीं आवेगा। फ्रैंकलिन का कहना है कि "जिसके पास व्यवसाय है उसके पास एक रियासत है, जिसके पास धन्धा है उसके पास सम्मान और लाभ है। अपने पैरों पर खड़ा रहने वाला घुटने टेकने वाले से अच्छा है।" इस कथन में कितनी सत्यता है। संसार नहीं चाहता कि तुम राजनीतिज्ञ ही बनो, अथवा वैज्ञानिक, या वकील। वह तो केवल यही चाहता है कि जिस काम को तुम करो उसे पूर्णता से करो। यदि तुम अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लोगे तो संसार

तुम्हारी प्रशंसा करेगा और तुम्हारे लिये सभी मार्ग खुल जायँगे। परन्तु स्मरण रहे, कि संसार अपूर्णता और असफलता को बहुत बुरी दृष्टि से देखता है।

परिश्रम ही स्वावलम्बी बनाता है—परिश्रमी व्यक्ति ही आत्म निर्भर और स्वावलम्बी बन सकता है। किसी दूसरे के बल पर हमें इन्द्रिय-जन्य सुख भले ही प्राप्त हो जायँ परन्तु हृदय की शान्ति और सच्चा सुख बिना परिश्रम के प्राप्त नहीं हो सकते। वास्तविक उन्नति प्राप्त करने के लिये, मनुष्यों में मनुष्य कहलाने के लिये तथा आत्मिक शान्ति के लिए स्वावलम्बन ही सबसे बड़ी वस्तु है और यह अपने परिश्रम से प्राप्त होती है। किसी स्वावलम्बी को इस बात से हर्ष नहीं होता कि उसे राज्य-मुकुट मिल गया है बल्कि इस बात से होता है कि उसमें राज्य-मुकुट पाने की शक्ति है। जीवन में सच्चे परिश्रम से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है।

चित्त की एकाग्रता

परिभाषा—मन की दृढ़ इच्छा-शक्ति को किसी एक कार्य में केन्द्रित कर देने को चित्त की एकाग्रता कहते हैं। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जो एकाग्र होने पर पूरा न किया जा सके। अँग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् इमरसन ने एकाग्रता के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है—"यदि जीवन में बुद्धिमानी की कोई बात है तो वह एकाग्रता है और यदि कोई बुरी बात है तो वह है अपनी शक्तियों को बखेर देना।"

एकाग्रता की आवश्यकता—वास्तव में यदि देखा जाय तो चाहे छोटे से छोटा काम हो या बड़े से बड़ा, जब तक कोई व्यक्ति उसे एक चित्त होकर नहीं करेगा, तब तक वह

पूरा नहीं हो सकता। सफल और असफल व्यक्तियों में अन्तर क्या है? क्या कारण है कि एक ही काम को दो व्यक्ति करते हैं परन्तु एक उसे पूरा कर लेता है और दूसरा अधूरा छोड़ देता है, एक को उसमें लाभ हो जाता है और दूसरा हानि उठा लेता है? इसका कारण यह है कि सफल व्यक्ति ने अपना काम एकाग्रता से किया था और असफल व्यक्ति ने उसमें अपने चित्त को नहीं लगाया था। सफल मनुष्य ने अपने कार्य में तन और मन को एक कर दिया था जब कि असफल ने उसे बोझा समझ कर किया था। कहने के लिये तो लोग कह देते हैं कि हम क्या करें, हमने तो खूब परिश्रम किया था परन्तु भाग्य ने हमारा साथ नहीं दिया। परन्तु भाग्य का आश्रय हमेशा निकम्मे और आलसी व्यक्ति ही लिया करते हैं। साहसी और परिश्रमी आदमी अपने भाग्य-विधाता स्वयं होते हैं। कहावत है कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं और किसी अन्य की सहायता नहीं चाहते। जो व्यक्ति किसी कार्य का दृढ़ संकल्प कर लेता है और उसमें अपना तन, मन, धन सब कुछ जुटा देता है तो कोई शक्ति नहीं जो उसके कार्य में बाधा पहुँचा सके। एकाग्र व्यक्ति जिस कार्य को पकड़ लेता है उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ता। दृढ़-संकल्पता और एकाग्रता मिले जुले गुण हैं। जो दृढ़ संकल्पी हो सकता है वह एकाग्र भी हो सकता है। ऐसे मनुष्यों के कार्यों पर प्रारम्भ में संसार हँसता है, उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है और यहाँ तक कि लोग बाधा भी पहुँचाते हैं। परन्तु लगन वाला व्यक्ति इन सब बातों की कंचितमात्र भी पर्वा नहीं करता। वह अपने चारों ओर के वातावरण से उदासीन हो जाता है, सब बाधाओं का डट

कर सामना करता है और एक दिन अवश्य ही ऐसा आता है जब कि संसार को झुकना पड़ता है। सब बाधायें स्वतः ही दूर हो जाती हैं। जिस कार्य की लोग खिल्ली उड़ाते थे, उसी को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगते हैं और उस दृढ़ संकल्पी, दृढ़ निश्चयी तथा एकाग्र व्यक्ति के भक्त हो जाते हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। महात्मा गांधी का जीवन दृढ़-संकल्पता और लगन का साक्षात् स्वरूप है। प्रारम्भिक जीवन में उनके उद्देश्यों के विरुद्ध केवल विदेशियों ने ही आवाज नहीं उठाई अपितु, उनके देशवासी भी उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। पग पग पर उनके मार्ग में बाधायें पहुँचाई गईं। परन्तु गांधीजी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। अपने लक्ष्य, स्वतन्त्रता, सत्य और अहिंसा की ओर वे बढ़ते ही चले गये और अन्त में उन्हें सफलता मिली। आज महात्माजी के उद्योग से देश स्वतन्त्र ही नहीं हो गया है बल्कि उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को संसार के सभी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया है।

बहुचित्तता—जो व्यक्ति अपने जीवन में केवल एक बात ढूँढ़ता है वह आशा कर सकता है कि जीवन समाप्त होने से पहिले उसे वह प्राप्त हो जायेगी। किसी कवि ने कहा है कि "एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय"। बहु चित्तता बुरी वस्तु है। जब किसी व्यक्ति का चित्त एक काम में नहीं लगता तो वह दूसरा काम ढूँढ़ने लगता है और दूसरा काम मिलने पर तीसरा। इस प्रकार वह अपनी शक्तियों को केन्द्रित नहीं कर पाता और परिणाम यह होता है कि उसे किसी काम में सफलता नहीं होती और तब वह अपने भाग्य को कोसने लगता है। बहुत से मनुष्य योग्य होते हैं, उनके पास साधन भी होते हैं परन्तु उन्हें सफलता किसी

काम में नहीं मिलती। क्या कारण है? इसका कारण सिवाय इसके और कुछ नहीं कि वे किसी एक कार्य में अपना मन नहीं लगा पाते। परीक्षा के समय जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन से पूछा कि तुम्हें अपने सामने क्या क्या वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं तो उस एकाग्री ने उत्तर दिया कि मुझे इस समय अपने वाण की नोंक और चिड़िया के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं दिखलाई देती। गुरु ने उसी समय भविष्यवाणी करदी थी कि अर्जुन अवश्य ही लक्ष्य को वेध सकेगा और ऐसा ही हुआ।

एकाग्रता से दृढ़ निश्चयता आती है—जब कोई दृढ़-निश्चयी पुरुप किसी काय का संकल्प कर लेता है तो उसकी प्रत्येक गति-विधि से उसके कार्य की गन्ध आने लगती है। उस कार्य में और कर्त्ता में कोई अन्तर नहीं रह जाता। करने वाला अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है और आत्म-सम्मान तथा आत्म-संतोष की चाल से चलता है। चिथड़े उसके रूप को नहीं छिपा सकते और आभूपण उनकी सुन्दरता को बढ़ा नहीं सकते। कुतुबनुमा की सुई की भाँति उसका एक ही लक्ष्य होता है जिसकी ओर वह दिन-रात टकटकी लगाये देखता रहता है और अपना कार्य करता रहता है। जब संसार सोता है और आमोद-प्रमोद में व्यस्त होता है, वह अपने कार्य में जुटा होता है। ऐसा भी समय आता है जब प्रलोभन उसके सामने आते हैं, वासनाएँ अपना प्रभाव दिखलाने लगती हैं और इन्द्रियाँ शिथिल होने लगती हैं परन्तु सच्चा एकाग्री इन सब का समना करता है और इन सब परविजयी होता है। भला ऐसे व्यक्ति को कौन पथ-भ्रष्ट कर सकता है? वह अपना कार्य पूरा करके ही साँस लेता है।

कार्लाइल का कथन——कार्लाइल कहता है कि सबसे निर्बल प्राणी भी अपनी शक्तियों को केन्द्रित करके कुछ न कुछ कर सकता है और सबसे बलवान भी अपनी शक्तियों को बखेर कर कुछ नहीं कर पाता। लगातार गिरने वाली बूँद से पत्थर में भी छिद्र हो जाता है और शीघ्रता से बहने वाले पानी की धारा भयंकर शब्द करती हुई निकल जाती है, उसका कोई चिन्ह पीछे नहीं रहता।

एकाग्रता से समय शीघ्र कट जाता है——जब मनुष्य किसी कार्य में एकाग्र हो जाता है तो उसे समय का भी बोध नहीं रहता। उसका समय कटते देर नहीं लगती। वास्तव में एकाग्र होने की यही बड़ी अच्छी पहिचान है। न्यूटन जब कार्य करता था तो उसकी नौकरानी को कई बार उससे कहना पड़ता था कि भोजन ठंडा हो रहा है पहिले इसे खा लीजिये। नैपोलियन कहा करता था कि जब मैं युद्ध क्षेत्र में खड़ा होता हूँ तो मुझे अपनी तलवार और शत्रु की गर्दन के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं दिखलाई देती यहाँ तक कि मैं अपने शरीर को भी भूल जाता हूँ। पुस्तक पढ़ते समय आँखों के सामने विषय का सारा चित्र-सा खिच जाय तभी समझना चाहिये कि हम एकाग्र हो गये हैं। उस समय यदि आपका मित्र भी आपके पास आकर खड़ा हो जायगा तो आपको उसकी उपस्थिति का आभास नहीं होगा। एकाग्रता इसी को कहते हैं।

नौकरी की तलाश में घूमने वाले व्यक्तियों से पाश्चात् देशों में उनसे शिक्षा के विषय में कुछ नहीं पूछा जाता और न उनके कुटुम्ब तथा सम्बन्धियों के बारे में पूछताछ की जाती है। उनसे केवल एक ही प्रश्न किया जाता है और वह

यह कि तुम क्या काम कर सकते हो ?

एकाग्रता की शक्ति—वैज्ञानिकों का कहना है कि एक एकड़ भूमि की घास में इतनी शक्ति होती है जिससे संसार-भर की मशीनें चलाई जा सकती हैं। परन्तु यह शक्ति बिखरी पड़ी हुई है। इसका उपयोग तभी किया जा सकता है जब कि उसे किसी प्रकार केन्द्रित किया जा सके। इसी प्रकार संसार में हजारों पुरुष ऐसे हैं जो ज्ञानी हैं, उनमें योग्यता है और शक्ति है परन्तु उनमें यह सामर्थ्य नहीं कि उस शक्ति और ज्ञान को स्थान पर केन्द्रित कर सकें। इसी कारण उन्हें प्रत्येक कार्य में असफलता उठानी पड़ती है बल्कि मनुष्य निरुत्साही भी हो जाता है।

सफलता के लिये केवल कल्पना और लगन पर ही कार्य करना अच्छा नहीं एकाग्रता के अर्थ केवल अन्धे होकर, बिना विचार किये काम करना नहीं। यदि कोई व्यक्ति पहाड़ पर दिन-रात एकाग्र होकर खोदता चला जाय और यह आशा करे कि पानी निकाल लेगा तो उसे निराश ही होना पड़ेगा। जो काम करना हो, पहिले उस पर अच्छी तरह सोच विचार कर लेना चाहिये। उसके हानि, लाभ का हिसाब लगा लेना चाहिये और अपने साधनों की ओर भी देख लेना चाहिये। यदि ये बातें अपने अनुकूल हों तो फिर उस कार्य में लग जाना चाहिये और धीरे-धीरे अपने कदमों को दृढ़ता और साहस से आगे बढ़ाना चाहिये। निश्चय ही सफलता होगी। विद्यार्थियों को चाहिये कि परीक्षा के विषय की पुस्तकों को पढ़ने से पहिले, यह देख लेना चाहिये कि ये हमारे विषय की हैं या नहीं और उनके आधार पर हम उत्तर दे सकते हैं या नहीं। परीक्षा के लिये चाहे जो पुस्तकें खरीद कर पढ़ने से कोई लाभ नहीं। जो हो रहा है, उस पर

ध्यान न देकर, भविष्य की मीठी कल्पना पर वर्त्तमान को संकटपूर्ण बना लेना बहुत भूल की बात है।

संक्षेप—संक्षेप में कहा जा सकता है कि एकाग्रता ऐसा गुण है जिसके सदुपयोग से मनुष्य कठिन से भी कठिन कार्य को पूरा कर सकता है। विवेक और बुद्धि एकाग्रता के अभाव में जहाँ पंगु हैं वहाँ इसके सहचर्य से इसके द्वारा संसार के असम्भव कहे जाने वाले कार्य भी सम्भव करके दिखलाये जा सकते हैं।

मित्रता

३० प्र० १९४२

मित्रता की आवश्यकता—मनुष्य एक भावुक प्राणी है। अन्य जीव-धारियों और मनुष्य में यही भेद है। न्यूनाधिक रूप में सभी मनुष्य भावुक होते हैं। कुछ व्यक्ति जल्दी भावुक हो जाते हैं और कुछ पर भावों का प्रभाव देर में होता है। मनुष्य की यह भी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने मनोभावों को दूसरों पर प्रकट करना चाहता है। वह चाहता है कि उसके हर्ष पर दूसरे हर्षित हों, और उसके दुख में दूसरे सहानुभूति प्रकट करें। यही नहीं अपनी विजय को वह दूसरों पर प्रकट करना चाहता है और पराजय को छिपाना चाहता है। हमारे दैनिक जीवन में प्रायः ऐसे अवसर आते रहते हैं जो हमारे भावों को उत्तेजित कर देते हैं और उस समय उनका बखान हम दूसरों पर करना चाहते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि संसार के सभी लोग हमारे दुख में दुखी और सुख में सुखी होना नहीं

जानते, अपितु इसके विपरीत अधिकांश व्यक्ति हमारे सुख से ईर्ष्या करते हैं और दुख से प्रसन्न होते हैं। दुनियां की ऐसी मनोवृत्ति देखकर ही रहीम कवि कह गये हैं कि:—

"रहिमन निज मन की व्यथा मन ही रखिये गोय,
सुनि इठलैहैं लोग सब, बाँटि न लै है कोय।"

ऐसे समय में हम किसी न किसी पर अपने भाव प्रकट करना चाहते हैं। जिसके सामने हम खुलकर हँस सकें, जिसके सामने हम निःसंकोच अपनी प्रशंसा कर सकें, जिसके सामने हम आँसू बहा सकें, जिसके सामने हम अपनी कमजोरियों का बखान कर सकें और जिसको हम अपने हृदय का कोना कोना दिखा सकें, वही हमारा मित्र होता है। ऐसे व्यक्ति के साथ हमारा सम्बन्ध ही मित्रता है।

बाल्यावस्था में मित्रता—प्रायः देखा जाता है कि बचपन के साथियों में से ही हमारे मित्र बनते हैं। यह समय ऐसा होता है कि जब कि सांसारिक अनुभवों से मनुष्य शून्य होता है। बाल्यावस्था में हृदय निष्कपट होता है और अत्यन्त भावुक होता है। इस समय में बालक सभी के सामने अपने हृदय को खोलकर रख देना चाहता है। सभी सम-वयस्क साथियों को वह अपना मित्र समझता है। परन्तु कुछ और अधिक अवस्था बढ़ने पर, अर्थात किशोरावस्था में बालक के मित्रों की संख्या घटने लगती है, वह अधिक एकांत प्रेमी बन जाता है और अपने बहुत से साथियों में से एक या दो को ही अपना मित्र समझने लगता है। यदि इन किशोरावस्था के मित्रों का साथ बना रहा, उनके साथ संयोग के अधिक अवसर आते रहे तो यही उसके जीवन के मित्र बन जाते हैं और यही मित्रता अधिक घनिष्ट एवं मधुर होती है।

मित्रता कैसी होती है—मित्रता समान अवस्था और समान विचारों के होने पर ही होती है। दो ऐसे व्यक्तियों में मित्रता कदापि नहीं हो सकती जिनके विचार और स्वभाव एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हों। विचारों और स्वभाव में जितनी अधिक समानता होगी, मित्रता उतनी ही अधिक घनिष्ट होगी। अतः मित्रका चुनाव करते समय यह भली-भाँति देख लेना चाहिये कि हमारे मित्र की प्रकृति हम से मेल खाती है या नहीं। एक बार किसी से मित्रता हो जाने पर फिर उसमें शिथिलता न आने देना चाहिये और हर प्रकार से उसे दृढ़ करने का प्रयत्न करना चाहिये। जिस किसी को सच्चा मित्र मिल गया है उसे अपने को वहुत भाग्य शाली समझना चाहिये। मित्रता हो जाने पर उसे आजीवन निभाना कोई हँसी खेल नहीं। मित्र के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है, इस पर यहाँ प्रकाश डाला जाता है।

मित्रता में विश्वास—सबसे प्रथम तो हमें अपने मित्र पर पूरा पूरा विश्वास होना चाहिये। उससे अपने सभी भेदों और गुप्त वातों को कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिये। मित्रता में संदेह के लिये विलकुल स्थान नहीं है। जहाँ आपस में संदेह हुआ, वहीं मित्रता में कमी आ जाती है। अतः विश्वास का भाव दोनों ओर से बरावर होना चाहिये मित्र के सामने अपनी कमजोरियों को खुले रूप से प्रकट कर देना चाहिये। मित्र का यह कर्त्तव्य है कि वह हमारी कमजोरियों पर न हँसे वल्कि उन्हें दूर करने का प्रयत्न करे। सच्चे और विश्वासपात्र मित्र के थोड़े से सहानुभूति पूर्ण शब्दों से मनुष्य अपनी वड़ी से वड़ी बुराई को छोड़ देता है। घनिष्ट मित्रता के लिये पारस्परिक विश्वास

सबसे पहिली वस्तु है।

मित्र के प्रति कर्त्तव्य—अपने मित्र के लिये हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि उसके दुखों और कष्टों में हम उसकी पूरी सहायता करें। यदि मित्र को आपत्ति के समय ही सहायता न मिली तो हमारी मित्रता उसके किस दिन काम आयेगी। जीवन में सभी पर एक न एक समय दुख का पहाड़ टूट पड़ता है। इस समय में मनुष्य चारों ओर से निराश हो जाता है। सभी सम्बन्धी विमुख हो जाते हैं। कहे जाने वाले मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। ऐसे समय में हमारा यह कर्त्तव्य है कि अपने मित्र की जी-जान से सहायता करें। उसे सान्त्वना दें। उसके कष्टों के निवारण के लिये जो कुछ हमसे हो सके उसमें कमी न करें। यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी बाजी लगानी पड़े तब भी कोई बात नहीं। सच्ची मित्रता इसी को कहते हैं। कृष्ण और सुदामा की मित्रता के आज तक गीत गाये जाते हैं। बचपन में सुदामा, कृष्ण के मित्र थे परन्तु भाग्य से उनका साथ छूट गया और कृष्ण तीन लोक के स्वामी हो गये तथा सुदामा निर्धन ही रह गये। अपनी निर्धनावस्था से दुखी होकर जब सुदामा, कृष्ण के पास पहुँचते हैं तो कृष्ण का हृदय अपने मित्र की दयनीय अवस्था को देखकर द्रवी-भूत हो उठता है। वे अपना सिंहासन छोड़ कर उठ बैठते हैं और अपने मित्र से लिपट जाते हैं। तीनों लोकों के स्वामी कृष्ण को परात के पानी से सुदामा के पैर धोना नहीं रुचता। अपनी आँखों के जल से अर्थात् आँसुओं से ही कृष्ण अपने मित्र के पैर धो डालते हैं। "पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैननि के जल सों पग धोये"। कृष्ण, अपने मित्र का केवल स्वागत करके ही नहीं रह जाते हैं। वे सुदामा के मनोभावों को समझ

लेते हैं और संकोच के साथ सुदामा द्वारा दिये हुए अक्षतों को चबाते हुए, उन्हें तीनों लोकों का राज्य देने का संकल्प कर लेते हैं।

हाथ गह्यौ प्रभु को कमला, यह नाथ कहा तुमने चित धारी,
तन्दुल खाय मुठी दुइ, विप्र कियौ तुमने दुइ लोक विहारी।
खाय मुठी तिसरी अब नाथ, कहा निज वासकी आस बिसारी,
रंकहि आप समान कियो तुम, आपहि चाहत होन भिखारी॥

यदि उस समय लक्ष्मीजी दूरदर्शिता से काम न लेतीं तो कृष्ण अपने बाल-सखा सुदामा को तीनों ही लोकों का राज्य दे डालते और स्वयं भिखारी होकर निकल पड़ते। धन्य हैं कृष्ण के अपने मित्र के प्रति ऐसे भाव और धन्य है यह भारत-भूमि जिसमें ऐसे ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया। मित्रता का ऐसा आदर्श संसार मे अन्यत्र कदाचित ही मिलेगा।

रामायण में भी राम और सुग्रीव की मित्रता का उल्लेख आया है। सुग्रीव से मित्रता हो जाने के पश्चात्, श्रीरामचन्द्र, सुग्रीव के लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं यहाँ तक कि वे उचित अनुचित को भी नहीं देखते। जब सुग्रीव अपने भाई बालि के अत्याचारों का वर्णन श्रीराम के सम्मुख करता है तो उनका हृदय पसीज उठता है और वे प्रतिज्ञा करते हैं कि—

सुनि सुग्रीव मैं मारि हौं, बालिहि एक हि बान।
ब्रह्म, रुद्र सरनागतहिं, तऊ न उबरहिं प्रान॥

राम ने सुग्रीव के साथ अपनी मित्रता को पूरा-पूरा निभाया।

अपने मित्र के प्रति हमें इसी प्रकार कर्त्तव्य-निष्ठ होना चाहिये। मित्र के दुखों को अपना दुख और उसके सुख को अपना सुख समझकर ही हम मित्रता के आदर्श को प्राप्त कर

सकते हैं।

मित्र के प्रति हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि उसे सन्मार्ग पर चलावें। यदि हमारा मित्र किसी कारणवश कुमार्ग में गिरता हो, अपने कर्त्तव्य से विमुख होता हो अथवा किसी अनुचित कार्य के करने पर उतारू हो तो शान्तिपूर्वक उसे समझाने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे समय पर मित्र की आलोचना करना और उसे घटिया दिखाना भारी मूर्खता है। हमारे सहानुभूति पूर्ण थोड़े से शब्द ही उस पर जादू जैसा कार्य करेंगे। मीठे शब्दों में यदि हम अपने मित्र को हिता-हित और उचित-अनुचित का बोध कराने की कोशिश करेंगे तो कोई कारण नहीं कि हमारे प्रेम-वाक्यों का उस पर प्रभाव न पड़े। अवश्य ही वह पतन के मार्ग से विमुख हो जायगा। तात्पर्य यह है कि हमें अपने मित्र को सभी तरह से आदर्श व्यक्ति बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

मित्र से कभी भी छोटी-मोटी बातों को लेकर वादविवाद नहीं करना चाहिये क्योंकि व्यर्थ के विवाद से लाभ तो कोई होता नहीं, उल्टी हानि ही होती है। व्यर्थ का मनमुटाव पैदा होता है। इसके अतिरिक्त व्यवहार में मित्र के साथ उदार होना चाहिये। उदारता ऐसा गुण है जिससे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। आप अपने मित्रों के साथ जितने ही उदार होंगे, वे आपको उतना ही विश्वास पात्र समझेंगे।

झूठे मित्रों से बचाव—आज कल झूठे मित्रों से बचना चाहिये। चिकनी चुपड़ी बातें करके यह प्रकट कर देते हैं कि वे हमारे घनिष्ट मित्र हैं और शुभचिन्तक हैं। परन्तु वास्तव में वे किसी न किसी स्वार्थ की सिद्धि करना चाहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर धोखा देकर बहुत हानि भी पहुँचा सकते हैं। अतः किशोरावस्था में मित्रों के चुनाव में बड़ी

सावधानी से काम लेना चाहिये और झूठे और सच्चे मित्रों की परख भली भाँति कर लेनी चाहिये।

एक कवि ने चार ही पंक्तियों में मित्र की परिभाषा कितने सुन्दर ढंग से करदी है।

व्यसन, उत्सव, हर्ष, विषाद में,
विपद, विप्लव, द्रोह दुकाल में।
मनुज जो रहता नित साथ है,
सुहृद के वह उत्तम मित्र है॥

चरित्र-निर्माण

मनुष्य की विशेषता उसके चारु-चरित्र में है। मनुष्य का आदर पद, धन वा आभिजात्य के कारण भी होता है किन्तु कुछ ही समय तक और वह भयजन्य होने के कारण श्लाघनीय नहीं समझा जाता। धनी का आदर भी स्वार्थ वश ही होता है। विद्या का आदर हाँ! अपने ही कारण से होता है। लेकिन वह भी विनय और चरित्र के विना चिरस्थायी नहीं होता। रावण पण्डित-पुङ्गव था। इन्द्र और कुवेर उसके द्वार पर खड़े रहते थे। उसके बल-वैभव पर आज भी लोग आश्चर्य कर उठते हैं लेकिन उसको आदर नहीं मिल सका क्योंकि उसमें चरित्र का अभाव था। इस कारण मनुष्य की महत्ता चरित्र में है। मनुष्य की आत्मा के खरे-खोटे का निर्णय चरित्र की कसौटी के सहारे ही किया जा सकता है।

संसार में जितने प्रकार के यश हैं वे अवश्यमेव ईर्ष्याजन्य भावनाएँ पैदा करते हैं। विद्वान् को सम्मानित देखकर सब किसी की इच्छा होती है कि मैं भी यह आदर प्राप्त कर संसार को विस्मय-विमुग्ध कर दूँ। लेकिन शान्ति के एकमात्र

आधार चारु-चरित्र वाले में इस स्पृहा को नहीं देखा जाता। वह यह कभी नहीं चाहता है कि चरित्र के मूल्यांकन एवं चरित्र-पालन में कोई उससे आगे न निकल सके। उसकी हृदयकली तो सब में चरित्र-पालन की इच्छा देखकर खिल उठती है।

मनुष्य का मन उद्यान-भूमि की भाँति है। अगर उसकी पूरी तरह चौकसी नहीं की जावेगी तो लम्बी-लम्बी घास और कटीले पेड़ आपसे-आप उग आने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार अगर चरित्र-पालन का ध्यान नहीं रक्खा जावेगा तो उसके बिगड़ जाने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। टीले पर चढ़ने में कठिनाई मालूम होती है लेकिन उतरने में कोई कठिनाई सामने नहीं आती। चरित्र के अभाव में मनुष्य शव बन जाता है। 'अक्षीणः वित्ततः क्षीणो वृत्तातस्तु हतोहतः' अर्थात् धन से हीन निर्धन नहीं है बल्कि सद्वृत्त के ही अभाव में मनुष्य मरा हुआ है।

अब यह जान लेना आवश्यक है कि यह चरित्र है क्या वस्तु जो इतना महत्त्व रखती है। चरित्र उन गुणों का समूह है जो हमारे व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। विनय, उदारता, धैर्य, ईमानदारी, सचाई, दृढ़ता आदि सब गुण चरित्र में आते हैं। यद्यपि चरित्र के बनाने में और अनेक गुण स्पृहणीय हैं तथापि इन गुणों का विशेष महत्त्व है।

विनय विद्या का भूषण है। विनयाभाव में विद्या अपनी शोभा खो बैठती है। श्रीमद्भगवत्गीता में ब्राह्मण का 'विद्या विनय सम्पन्ने' विशेषण देकर श्रीकृष्ण भगवान् ने विद्या का विनय के साथ आवश्यक सम्बन्ध बतलाया है। विनय से केवल विद्या की शोभा नहीं है। वह धन

और वल की शोभा बढ़ाती है। विनय के आजाने पर अभिमान का अन्त हो जाता है। अभिमान के अभाव में व्यक्तित्व की परिमितता मिटने लगती है और मनुष्य में जाति के प्रति आदर एवं सहानुभूति के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। सहनशीलता आदि अनेक सद्भाव भी विनय से लगे हुए हैं। इस कारण इसके अभ्यास से इसके सहचर अनेक मुख्य-मुख्य गुणों का भी अभ्यास हो जाता है।

उदारता के अन्तर्गत वे भाव आते हैं जिनमें अपने क्षुद्र आत्मभाव का परित्याग करना पड़ता है। दूसरों के प्रति समता भाव रखना, दूसरों के विचारों का आदर करना, स्वयं श्रेय न लेकर दूसरों को श्रेय देना आदि गुण उदारता की सीमा में आते हैं। उदारता का अर्थ धनराशि को 'दोनों हाथ उलीचिये जो घर वाढ़ै दाम' के आदर्श के अनुसार विना उद्देश्य के नष्ट करना नहीं है वरन् पात्र को ही देना है। उपकृत पुरुष तक के साथ आदर भाव रखना चाहिए। अपने से छोटे लोगों के अपराधों को स्वयं ही व्याख्या करके क्षमा कर देने में उदारता है। जो लोग दूसरों की छोटी से छोटी वात को भी महत्त्व देने को तैयार रहते हैं वे ही उदार कहलाने के भागी हैं।

मानव जीवन कण्टकाकीर्ण है। इसमें पद-पद पर कठिनाइयों के जाल विछे हुए हैं। कठिनाइयों के रहते हुए भी स्थिर चित्त में चंचलता उत्पन्न न होना ही धीर का गुण है। वैभव-विलास में हँसना-खेलना कोई महत्त्व की वात नहीं है क्योंकि उस परिस्थिति में तो सभी ऐसा कर सकते हैं लेकिन आपत्तिकाल में हँसना, प्रसन्न रहना सच्चा महत्त्व रखता है। कठिन से कठिन स्थिति में प्रसन्न रहना आत्मा की उच्चता का सूचक है। राजा हरिश्चन्द्र पुत्र-शव को देखकर

भी धैर्य से नहीं विचलित हुए और अपना कर्तव्य करते गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी को राज्य के स्थान पर वनवास मिला लेकिन उनके मुख पर दुख की सिकुड़न नहीं पड़ी। इसी कारण ये लोग जगद्वन्दनीय हुए।

सत्य तो चरित्र की सच्ची कसौटी है। मनुष्य में अपने कुछ वास्तविक विश्वास होते हैं; उन्हें प्रकट करने में वह हिचकता है लेकिन उन विश्वासों को व्यक्त करने का साहस ही तो सत्य का निर्वाह है। लोग खुशामद में झूठ बोला करते हैं। जब किसी की आत्मा को आघात पहुँचाना हिंसा है तो अपनी आत्मा का गला घोंटना भी तो हिंसा ही है और लोग झूठ बोलकर ऐसा करते रहते हैं जिसके कारण अनेकानेक दुर्गुणों के लिए मन का द्वार खुल जाता है। इसीलिए कहा गया है 'साँच बरोबर तप नहीं झूँठ बरोबर पाप'। सत्य पालने वाला ही संसार में आदर पाता है। उपनिषदों में सत्यकाम जाबाली की कथा आती है। वह गुरुकुल में पढ़ने गया। वहाँ उससे उसका गोत्र और पिता का नाम पूछा गया। उसने अपनी माता से अपना गोत्र पूछा। माँ ने कहा कि मैंने चाकर वृत्ति करते हुए तुझे प्राप्त किया था। इसलिए तेरे कुल-गोत्र का मुझे पता नहीं। बालक ने वैसा ही अपने गुरु से कह दिया। गुरु ने बड़े हर्ष के साथ कहा कि ऐसा सत्य ब्राह्मण ही बोल सकता है तू अवश्य ब्राह्मण का बालक होगा। गुरु ने उसका संस्कार कर उसे गुरुकुल में पढ़ाया।

लोग लालच में पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट कर डालते हैं। बड़े-बड़े मनीषी भी इसी लालच में पड़कर अपने त्याग-तपस्या को खो बैठे और जैसे आये थे वैसे ही चले गये। आजकल 'पण्डित सोई जो गाल बजावा' लेकिन सच्चा असर उसी की

बात का होता है जो लालच में नहीं फँसता। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' लेकिन 'जे आचरहिं ते नर न घनेरे'। संसार में सुन्दर-सुन्दर उपदेश तो बहुत से दे लेते हैं लेकिन कर्तव्य परायणों की संख्या अँगुली पर गिनने लायक ही है। इसी कारण संसार की सुन्दर से सुन्दर योजनाएँ निष्फल हो जाती हैं। जो लोग आपत्ति आने पर विचलित नहीं होते, प्रलोभनों के जाल में नहीं फँसते और अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अपने हानि-लाभ का विचार नहीं करते वे ही सच्चे कर्तव्य-परायण कहे जाते हैं, उन्हीं का समाज में आदर होता है और वे ही आत्म-सन्तोष के हक़दार हैं। 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः' विकार के कारण उत्पन्न होने पर जिनके चित्त विचलित नहीं होते हैं वे ही धीर हैं।

आत्म-निर्भरता निम्न अवगुणों का संहार करती है—आत्म-निर्भर मनुष्य को दूसरे के पैरों के तलवे नहीं चाटने पड़ते और न चापलूसी-चाटुकारी में हीं उसे समय व्यतीत करना पड़ता है। उसकी सैद्धान्तिक दृढ़ता बढ़ती जाती है। उसको गौरव और महत्त्व स्वतः ही प्राप्त होता है। 'दैव दैव आलसी पुकारा' न कि दृढ़ कर्तव्य। ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता कर लेते हैं—'God helps those who help themselves'।

चरित्र से शील और आत्म-गौरव का भी विशेष सम्बन्ध है। चरित्रवान् शीलवान् हो सकता है लेकिन सब शीलवान् चरित्रवान् नहीं होते। तो भी शील की चरित्र-निर्माण में विशेष आवश्यकता है। आत्म-गौरव भी मनुष्य को निम्न कार्य करने से रोकता है।

चरित्रवान् पुरुष को छल-कपट हीन और ईमानदार होने

की भी आवश्यकता है। उसमें अविकत्थना का भाव अवश्य रहना चाहिए। अपने मुँह मियाँ सिट्ठू बनने से भारी उन्नति का द्वार बन्द हो जाता है।

ये सब गुण अभ्यास से प्राप्त हो सकते हैं। बाल्यावस्था चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त समय है। इस समय जो सद्-भ्यास बन जाते हैं वे सारी उम्र काम देते हैं। बालकपन में सीखा हुआ तैरना मनुष्य उम्र भर नहीं भूलता है। स्वनाम धन्य गोखले के सच बोलने के संस्कार बालपन से ही बन गये थे। एक बार उन्होंने किसी लड़के की सहायता से एक सवाल निकाल लिया था उसके कारण उनके मास्टर ने दर्जे में अव्वल बैठाया। वे रो पड़े और कहने लगे कि वे अव्वल बैठने के अधिकारी नहीं। अव्वल बैठने का वही लड़का अधिकारी है। ऐसे ही संस्कार आदमी को बड़ा और चरित्रवान् बनाते हैं। यदि अपना जीवन सार्थक करना है तो हमको सद्भ्यास द्वारा चरित्रवान् बनने का प्रयत्न करना चाहिए। भारत का भविष्य भारत के नवयुवक समाज के चरित्रवान् बनने पर ही निर्भर है। चरित्रवान् पुरुष ही देश को उन्नति के पथ दिखला सकते हैं, नव-जागरण का शंख फूँक सकते हैं और जाति के सुधारने में समर्थ होते हैं। चरित्रवान् पुरुष ही देश का गौरव हैं। चरित्रहीन मनुष्य देश के कलंक हैं और वे दिन-प्रति-दिन उसी प्रकार बिगड़ते जाते हैं जिस प्रकार मैले कपड़े वाला मनुष्य हर स्थान पर बैठ जाता है।

यथाहि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्रतत्रोपविश्यते
एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति।

—बाबू गुलाबराय एम० ए०

विश्व-प्रेम और मानवता

'उदार चरितानांतुवसुधैव कुटुम्बकम्'

'जहाँ दैन्य-जर्जर, अभाव-ज्वर पीड़ित
जीवन यापन हो न मनुज को गर्हित।
युग-युग के छाया-भावों से त्रासित
मानव प्रति मानव-मन हो न सशंकित ॥
मुक्त जहाँ मन की गति जीवन में रति
भव-मानवता में जन जीवन-परिणति।
संस्कृत वाणी भाव संस्कृत मन
सुन्दर हो जनवास वसन सुन्दर तन ॥'

—सुमित्रानन्दन पन्त।

राष्ट्रीयता हमको प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता से ऊँची उठाती है किन्तु मानव के इस उत्थान में उससे भी ऊँची वस्तु है विश्व-प्रेम और मानवता। राष्ट्रीयता जहाँ हमको एकसूत्रता में बाँधती है, हमारे संकुचित स्वार्थों को दूर करती है वहाँ हमको कभी-कभी राष्ट्र-राष्ट्र में भेद और पार्थक्य का पाठ पढ़ाकर हमको विश्व-व्यापी संघर्ष के वात्याचक्र में घसीट ले जाती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाकर रखना चाहता है और उस पर अपनी तथाकथित उच्चतर संस्कृति को लादने का प्रयत्न करता है। संस्कृति और सभ्यता का प्रसार स्वार्थ-साधन का दूसरा नाम है। ऐसे भव्य नामों से अपने देशवासियों को काम मिलता है व्यापारियों का व्यापार मिलता है और राष्ट्र का प्रभुत्व और शक्ति बढ़ती है।

राष्ट्रीयता जहाँ तक पारस्परिक प्रेम बन्धन का सूत्र है वहाँ तक सराहनीय गुण है किन्तु जहाँ वह दूसरे राष्ट्रों

पर प्रभुत्व जमाने या उनके प्रति घृणा का प्रचार करने में सहायक होती है वहीं वह निन्दनीय हो जाती है।

आत्मा के विस्तार की सीमाएँ नहीं हैं। उसका वृत्त बढ़ता ही रहता है। व्यक्ति को केन्द्र बनाकर पहला वृत्त कुटुम्ब का है उसके बाद जाति या सम्प्रदाय का। आत्मा के अनन्त विस्तार का वहाँ पर अन्त नहीं हो जाता। सम्प्रदाय के पश्चात् देश आता है और देश के आगे सारा विश्व है।

आत्मा का संकोच और विस्तार मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर रहता है। संकुचित मनोवृत्ति के मनुष्य के लिये उसका निकटतम स्वार्थ ही सब कुछ है। उसको चुपड़ी और दो-दो मिलती रहें अन्य लोग चाहे भूखे मरें उसे कुछ नहीं। चाहे बङ्गाल का अकाल हो और चाहे क्वेटा का भूकम्प, उसकी सुख-निद्रा भङ्ग नहीं होती। बहुत से स्वार्थी लोग तो अपने बाल-बच्चों की भी परवाह नहीं करते। सद्गृहस्थ अपने बाल-बच्चों के स्वार्थ के हित अपनी भूख-प्यास को भूल जाता है। उदारता के सोपान में एक सीढ़ी वे ऊँचे चढ़े हुए हैं जो अपनी जाति बिरादरी के हित में संलग्न रहते हैं। वे जाति विशेष के लोगों को ही अपना समझकर उनको हर तरह का उचित या अनुचित लाभ पहुँचाना चाहते हैं। कुछ लोग कुटुम्ब से ऊँचे उठकर सम्प्रदाय तक जाते हैं। उनके लिए देश चाहे परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहे किन्तु हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के लिए अपने स्वार्थों का एक कण का भी बलिदान न करेंगे। एक तरफ हिन्दुत्व की रक्षा की पुकार उठती है तो दूसरी ओर इस्लाम ख़तरे में है— का नारा लगता है। वे लोग भी उदार हैं। हिन्दुत्व और इस्लाम के लिए अपने को क़ुरबान करने को तैयार रहते हैं अपने को ही क़ुरबान करने की बात नहीं रहती, वे धर्म की

रक्षा के लिए दूसरों को भी बलि-वेदी पर चढ़ाने में संकोच नहीं करते।

राष्ट्रीय लोग अपने धर्म में दृढ़ रहते हुए भी (बहुत से क्या अधिकांश नहीं भी रहते किन्तु अपने धर्म की दृढ़ता और राष्ट्रीयता का विरोध नहीं है। महामना मालवीय जैसे कट्टर धर्म-निष्ट भी राष्ट्रीय थे) दूसरों के प्रति उदार रह सकते हैं। वे भारतीय पहले हैं, साम्प्रदायिक पीछे। ऐसे उदार-चरित—गान्धी, जवाहरलाल, मौलाना अब्दुलक़लाम आज़ाद, खान अब्दुलगफ्फार खाँ आदि अनेकों हैं जो राष्ट्र की दत्तचित्त होकर सेवा कर रहे हैं।

हमारे भारत में तो राष्ट्रीयता दूषित हद तक नहीं पहुँची है किन्तु पिछले महायुद्ध में जर्मनी, जापान, रूस, इङ्गलैण्ड, अमरीका सभी इस दूषित राष्ट्रीयता के चक्र में फँस कर एक दूसरे का गला घोंटने को तैयार हो गये थे। सभी न्याय और सभ्यता की दुहाई देते थे (इसमें कुछ लोग क्रूरता की सीमा को पार कर गये और कुछ थोड़ी-बहुत मर्यादा के भीतर रहे। मानवता का व्यवहार हमको सभी स्थानों में करना चाहिए। मानवता का प्रारम्भ घर में हो किन्तु घर में सीमित न रहे। Charity begins at home but it should not end there.

हमारे कहने का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नाते घर के लोग सम्प्रदाय के लोग या देशवासी भूखों मरें। जिनकी हम तक सहज पहुँच है, जिन पर हमारा विशेष उत्तरदायित्व है उनकी अवहेलना करना पाप है। पारिवारिकता और सामाजिकता का समन्वय कठिन नहीं है। मनुष्य अपने परिवार की देख-भाल और रक्षा करता हुआ भी समाज की और राष्ट्र की

सेवा कर सकता है। अपनी जाति और देश की सेवा मनुष्य का धर्म है किन्तु उस सेवा को वहीं तक सीमित नहीं रखना चाहिए।

मनुष्य राष्ट्रीय होकर भी दूसरे राष्ट्रों से अविरोध रख सकता है और किसी देश को अपने से नीचा न समझता हुआ और अपने देश की हानि न करते हुए उसके उत्थान में सहायता होना, यही राष्ट्रीय मानवता है।

राष्ट्रीय मानवता से पहले मनुष्य को वैयक्तिक मानवता का अभ्यास करना चाहिए। जो मनुष्य अपने निकट वासियों के प्रति उदार नहीं है उसका दूर देशों के लोगों के प्रति उदार होना बिडम्बना मात्र है। मानवता के कुछ लक्षण नीचे के श्लोक में दिये गये हैं, देखिए:—

> ये दीनेषु दयालवः स्पृशति वानल्पोऽपि न श्रीमदो।
> व्यग्रा ये च परोपकारकरणे हृष्यन्ति ये याचिताः॥
> स्वस्था सन्त च यौवन्मदमहाव्याधिप्रकोपेऽपि ये।
> तैर्स्तम्भैरिव सुस्थिरै किलभारक्लान्ता धरा धार्यते॥

अर्थात् जो दीनों के प्रति दयाल हैं और जिनको जरा-सा भी धन का मद स्पर्श नहीं करता है, जो लोग परोपकार करने के लिए व्यग्र रहते हैं और जो माँगे जाने पर प्रसन्न होते हैं। (याचक हमारे ऊपर उपकार करता है कि वह स्वयं हमको सेवा करने का अवसर देता है, वे लोग उनमें से नहीं होते जो कुछ माँगने पर मुँह बना लेते हैं) जो कि यौवन-मद की महाव्याधि के प्रकोप होने पर भी स्वस्थ बने रहते हैं, उन्ही सुदृढ़ स्तम्भों के सहारे यह भाराक्रान्त पृथ्वी सधी रहती है। विरले ही मनुष्यों में यह गुण होता है कि जो परोपकार उत्साह के साथ करते हैं और जो उपकृत पर अहसान न जताकर उसके मान की रक्षा करते हैं। उदार

वही है जो बिना माँगे टेर-बुलाकर दे और दूसरे की गरज को अपनी गरज समझे। जो परोपकार करके अभिमान न करे, वही सच्चा वैष्णव है।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड पराई जाणे रे।
पर दुखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥

जो व्यक्ति इन गुणों का अनुशीलन अपने वैयक्तिक जीवन में करते हैं, वे बड़े होने पर विस्तृत क्षेत्र में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में भी अपनी नैसर्गिक उदारता का परिचय देते हैं। दूसरी जातियों का उपकार करके भी उन पर प्रभुत्व की कामना न करना यही मानवता है। इसके लिए वह उदार दृष्टि-कोण चाहिए जो प्राचीन वैदिक मनीषियों का था जो नित्य नीचे की प्रार्थना विश्व-कल्याण के लिए किया करते थे—

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भागभवेत्

मनुष्य का जितना वैज्ञानिक बल बढ़ा है युद्ध उतना ही अधिक संहारक हो गया है। कल के बल से वर्षों का कार्य घंटों में समाप्त हो जाता है। युद्ध की प्रचण्डज्वाला में दोनों ओर से धन-जन का स्वाहा होता है। देश का सारा उत्पादन कार्य जन संहार के अर्थ किया जाता है। युद्ध की विभीषिका के कारण कोई सुख की नींद नहीं सोने पाया है। यद्यपि युद्ध की प्रखर ज्वालाएँ भारत से कुछ दूरी पर प्रज्वलित रहीं तथापि महार्घता के रूप में उनकी झुलस भारत को अब भी व्याकुल कर रही है।

जिन देशों में युद्ध का ताण्डव नृत्य हुआ है उनके हाहाकार और करुणा क्रन्दन से विश्व गूँज रहा है। कोई ऐसा घर न होगा जहाँ अपने प्रिय-जनों के लिए शोक

न हो। शोक मनाने की भी किसी को फ़ुर्सत नहीं रही। श्री सियारामशरणजी ने अपने 'उन्मुक्त' नाम के खण्ड-काव्य में एक काल्पनिक युद्ध का वर्णन करते हुए वर्तमान युद्ध के भीषण संहार का बड़ा हृद-यद्रावक चित्र खींचा है, देखिए:—

बरस पड़े विध्वंस पिण्ड, सौ-सौ यानों से।
सुना सभी ने बधिर हुए जाते कानों से॥
उनका,—क्या मैं कहूँ—घोष दुर्घोष भयङ्कर।
प्रेतों का-सा अट्टहास, शत-शत प्रलयङ्कर॥
उल्काओं का पतन, वज्रपातों का तर्जन।
नीरव जिनके निकट—हुआ ऐसा कटु गर्जन॥
कुछ ही क्षण उपरान्त एक अर्द्धांश नगर का।
युग-युग का श्रम साध्य साधना फल वह नर का॥
ध्वस्त दिखाई दिया चिकित्सालय, विद्यालय।
पूजालय, गृह-भवन, कुटीरों के चय॥
गिरकर अपनी ध्वस्त चिताओं में थे जलते।
कहीं उजलते, कहीं सुलगते, धुआँ उगलते॥

इन रोमाञ्चकारी दृश्यों के अस्तित्व में भी युद्ध की शृङ्खला अटूट बनी हुई देखकर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह ध्वंस अनिवार्य है? क्या युद्ध जन समाज की, अदम्य आवश्यकता है? कोई भी इस ध्वंस के पक्ष में नहीं हो सकता किन्तु करना सभी को पड़ता है। जिन राष्ट्रों के पक्ष में नीति और न्याय है जो केवल आत्म-रक्षा के लिए ही युद्ध में शामिल हैं, उनको भी नीति और न्याय की रक्षा के लिए जन-संहार का आश्रय लेना पड़ता है। नीति और न्याय की अन्तिम विजय अवश्य होती है, किन्तु उसके लिए जितना बलिदान और जन-संहार हो रहा है। क्या यह

अनिवार्य है ? क्या विश्व शान्ति का कोई उपाय है ?

युद्ध रोकने के लिए जितने उपाय सोचे गये वे सब निष्फल हुए। राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई किन्तु उसका अधिकार किसी ने न माना। उसके अस्तित्व में आते ही उसके शासन से बाहर भागने का उद्योग हुआ। निःशस्त्रीकरण एक सुख स्वप्न ही रहा। इस सम्बन्ध में यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य का नैतिक विकास उसके बौद्धिक विकास के अनुपात में ही नहीं हुआ है। साहित्य भी नीति की उपेक्षा करता है। साहित्य ने राष्ट्रीयता का प्रचार किया है अन्तर्राष्ट्रीयता का नहीं। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नेशनेलिज्म (Nationalism) आदि पुस्तकों में अन्तर्राष्ट्रीयता के पक्ष में अवश्य लिखा गया है किन्तु यह उद्योग समुद्र में बूँद क बराबर है। जो नीति वैयक्तिक सम्बन्ध में बरती जाती है वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में नहीं बरती जाती। शक्ति के कम करने की आवश्यकता नहीं वरन् उसके संतुलन की आवश्यकता है। संतुलन स्थापित करने के लिए बल-प्रयोग अवश्य करना पड़ेगा किन्तु उसका आधार नीति और न्याय होना चाहिए। विजय के लिए पूरा प्रयत्न किया जाय किन्तु विजय प्राप्त होने पर दबे को इतना न दबाया जाय कि उसमें प्रतिक्रिया उत्पन्न हो। विजित के साथ उदारता का व्यवहार किया जाय, तभी विश्व में शान्ति का स्वप्न देखा जा सकता है। जिन बन्धनों से विजित बाँधा जाय उनका स्वयं न तिरस्कार किया जाय। दानव की-सी शक्ति का होना बुरा नहीं किन्तु उसका दानवी प्रयोग न होना चाहिए। संहार की अपेक्षा रक्षा का अधिक महत्व है। मनुष्य में प्रभुत्व की भावना अवश्य है किन्तु आत्म-रक्षा की भावना उस से कम प्रबल नहीं है। संहार भी रक्षा के लिए होता है।

रक्षा के कारण विष्णु भगवान को देवताओं में सर्वोच्च स्थान मिला है। क्षति या हानि से जो परित्राण करे वही सच्चा क्षत्रिय है। राष्ट्रों में सच्चे क्षत्रिय की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। इसके लिए सत् शिक्षा और सत् प्रचार की आवश्यकता है।

हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए। राष्ट्रीयता वहीं तक क्षम्य है जहाँ तक कि अपने को दूसरे राष्ट्रों के बराबर लाने का प्रयत्न हो। अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए उन्नत राष्ट्रों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे पिछड़े हुए राष्ट्रों को अपने बराबर लाने में सहायक हों। दूसरों की कमज़ोरी दूर करना शक्तिशाली राष्ट्रों का धर्म है। कमजोर जब तक कमजोर रहेंगे तब तक वे दूसरो की राज्य-लिप्सा के केन्द्र बने रहेंगे और जब तक वह लिप्सा रहेगी तब तक विश्व-शान्ति एक सुख स्वप्न ही रहेगी।

मनुष्य को अपने मनुष्य होने का गौरव होना चाहिए। मनुष्यता इस बात में नहीं कि हमने अपना या अपनों का कितना भला किया वरन् यह कि हमने दूसरों को कितना उठाया। गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है:—

> आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोई कोई।
> तुलसी सब कहँ भलो, सुजन सराहिअ सोइ॥

दूसरों को उठाने से हम स्वयं भी उठेंगे और हमारा नैतिक मान बढ़ेगा। आजकल शक्ति की उपासना बेनसी की उपासना समझी जाती है। उसका नैतिक मूल्य नहीं होता। नीति की उपासना स्वातन्त्र्य की उपासना है। राष्ट्रों में भय की प्रीति न होकर प्रीति का भय होना चाहिए। संसार और भौतिक बल का संघर्ष तो जानवरों में होता है। मनुष्य

जानवरों से इसीलिए ऊँचा है कि वह विना संहार के भी विज्ञान के सहारे उन्नति करता है। मनुष्य को अपना यह गौरव अक्षुण्ण रखना चाहिए। यदि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उसी न्याय और नीति का व्यवहार होने लगे जिसका वैयक्तिक नीति में होता है तो युद्ध अनिवार्य नहीं है। यदि न्याय की स्थापना के लिए संहार का आश्रय न लेकर पारस्परिक समझौते से काम लिया जाय तो मनुष्य जाति का गौरव स्थापित होगा। विज्ञान के चमत्कारों को यदि मानव हित सम्पादन के काम में. लाया जायगा तो विज्ञान का नाम सार्थक होगा और मनुष्य अपने बुद्धि-बल पर वास्तविक गर्व कर सकेगा।

मनुज का जीवन है अनमोल,
साधना है वह एक महान।
सभी निज संस्कृति के अनुकूल,
एक हो रचें राष्ट्र-उत्थान ॥
इसलिये नहीं कि करें सशक्त,
निर्बलों को अपने में लीन—
इसलिये कि हो विश्व-हित-हेतु,
समुन्नति-पथ पर सब स्वाधीन ॥

(बाबू गुलाबराय एम० ए०)



नागरिक के कर्त्तव्य और अधिकार

नागरिक—नगर में रहने वाले को नागरिक कहते हैं। नगर में रहने के करण नागरिक पर कुछ उत्तरदायित्व आ जाता है। क्योंकि मनुष्य नगर में रहने के कारण एक जन-समुदाय के सम्बन्ध में आ जाता है। यदि मनुष्य अकेला रहे तो सिवाय पेट भर लेने के उसका कोई कर्तव्य न होगा अथवा वह अपना समय ईश-भजन व प्रकृति के निरीक्षण में व्यतीत करेगा। परन्तु समाज में रहने के साथ कर्त्तव्य बढ़ जाता है। जिस समाज में मनुष्य उत्पन्न हुआ है, उसकी उन्नति करना उसका परम कर्त्तव्य है।

नागरिकता बड़े शहर में रहने वालों के लिए ही आवश्यक नहीं हैं वरन् प्रत्येक मनुष्य के लिए जो किसी प्रकार के सभ्य समाज में रहता है। नागरिकता एक प्रकार से मानवता और सभ्यता का पर्याय बन जाता है। अच्छे नागरिक को अपने सभी सम्बन्धों में अच्छा मनुष्य बनना होगा क्योंकि मनुष्य के पारिवारिक, व्यापारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सम्बन्ध सामाजिक दृढ़ता और संगठन में सहायक होने हैं। इन सब सम्बन्धों के पारस्परिक अविरोध के साथ निर्वाह में ही सच्ची नागरिकता है। लोक-तंत्र राष्ट्र की भी सफलता के लिए जनता में नागरिकता के भावों का मान आवश्यक है।

मनुष्य की उत्पत्ति समाज से हुई है। समाज से भरण-पोषण, शिक्षा, आदि प्राप्त कर वह पुष्ट हुआ है। समाज ही में उसकी आजीविका है। अतः समाज की उन्नति में बाधक होना घोर कृतघ्नता ही नहीं वरन् आत्म-हत्या है। समाज की उन्नति के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं, जो बातें

सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं उनका साधन करना और उनके सम्पादित होने में यो॥ देना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

सफाई और स्वास्थ्य—शरीर-रक्षा को शास्त्रों में पहला धर्म-साधन बतलाया है—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"; यदि शरीर ही नहीं तो धर्म कहाँ मनुष्य-शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन माना गया है। यदि वह स्वस्थ नहीं है तो सब साधन विफल हो जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'तन्दुरुस्ती हजार नियामत'। मनुष्य को स्वयं स्वस्थ रह कर दूसरों के स्वस्थ रहने में सहायक होना चाहिए। यदि हमारे पड़ोसी स्वस्थ नहीं हैं और यदि हमारा जलवायु शुद्ध नहीं, तो हमारे स्वास्थ्य को भी आघात पहुँचता है। हमारे बिगड़ने से समाज बिगड़ता है और समाज के बिगड़ने से हम बिगड़ते हैं। इस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया रूप से बिगाड़ का रोग बढ़ता रहता है और मनुष्य की हानि होती है। इसीलिए मनुष्य सबसे पहले आप स्वस्थ रहने का प्रयोग करे।

स्वस्थ रहने के लिए अपने शरीर, अपने वस्त्र और अपने घर की सफाई अत्यन्त आवश्यक है। अधिकतर रोग सफाई के अभाव से होते हैं। सफाई रखने से केवल शरीर ही स्वस्थ नहीं रहता वरन् मन भी प्रसन्न रहता है, और आत्म-गौरव बढ़ता है। स्वयं अपने को स्वच्छ कर अपने मुहल्ले तथा सारे नगर को स्वच्छ और आलोकित रखने में सहायक होना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। मतदाता गण म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरों पर जोर डाल कर इस कार्य में सहायक हो सकते हैं। चुनाव के समय वे लोग व्यक्तिगत सम्बन्ध आकर्षणों और प्रलोभनों को छोड़कर सच्चे कार्यकर्त्ताओं को ही अपना

मत (Vote) दें। अस्पतालों के सुचारु-रूप से चलाने और गरीबों को यथावत् दवाई पहुँचाने में सहायक होना भी परम वाञ्छनीय है।

शिक्षा—शिक्षा के लिए जितना लिखा जावे उतना ही थोड़ा है। शिक्षा से मनुष्य मनुष्य बनता है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इस बात को देखे कि उसके बालकों, और नगर व मुहल्ले के अन्य बालक-बालिकाओं की ठीक-ठीक शिक्षा होती है या नहीं, यदि नहीं होती तो किस कारण ? यदि पाठशालाओं में सुधार की आवश्यकता हो तो उस सुधार के लिए यत्न करे और यदि लोगों की शिक्षा में अरुचि हो तो उनको शिक्षा के लाभ बतलाने और उनके बालकों के लिए शिक्षा सुलभ करवाने का प्रयत्न करे। शिक्षा का कार्य स्कूल और कॉलेज की शिक्षा में ही समाप्त नहीं हो जाता वरन् वह जीवन भर चलता है। जनता को नागरिकता की शिक्षा देना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। हाँ यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की शिक्षा देने में किसी प्रकार का दम्भ न आने पावे। शिक्षा सेवा-भाव से दी जाय।

सामाजिक संगठन और धार्मिक उदारता—सामाजिक उन्नति सहकारिता और संगठन पर निर्भर है। प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह स्वयं अपने सद्व्यवहार से लोगों में प्रेम का व्यवहार बढ़ावे, और दूसरों से घृणा-भाव को कम करे। लोग वर्णाश्रम-धर्म का पालन करें, किन्तु उनका धर्म दूसरों को अपमानित न करे, कोई अपमानित होकर समाज में नहीं रहना चाहता। धर्म को सेवा का साधन, उसके द्वारा परस्पर प्रीत-भाव और भ्रातृ-भाव बढ़ाना ही सच्ची धार्मिकता है। नागरिक को चाहिए कि वह सांप्रदा-

थिकता और मतभेद से उठने वाले झगड़ों को कम कर समाज को अंग-भंग होने से बचावे। स्वयं दूसरों के मत का आदर कर लोगों में उदारता के भावों की उत्पत्ति करे। परस्पर उदारता और आदान-प्रदान से ही समाजिक संगठन पुष्ट होता है।

आर्थिक उन्नति—जिस प्रकार व्यक्ति का धन-हीन जीवन निरर्थक है वैसे ही समाज का भी। जो नागरिक सभ्यक आजीविका द्वारा धनोपार्जन नहीं करता वह समाज का घातक है। नागरिक को चाहिए कि स्वयं बेकार न हो और दूसरों को बेकारी से बचावे। जो बेकार हों उनके लिए बेकारी दूर करने के साधन उपस्थित करे। नगर में उद्योग-धन्धों की वृद्धि में सहायता दे। जो लोग विद्या या अनुभव के अभाव से अपना व्यवसाय या व्यापार नहीं बढ़ा सकते उनको अपनी विद्या और अनुभव से सहायता करे।

रक्षा और शान्ति—यद्यपि रक्षा और शान्ति पुलिस और मैजिस्ट्रेटों का कार्य है, तथापि इसमें नागरिकों का सहयोग आवश्यक है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधियों का पता लगाने में सहायता दे और इसी प्रकार बेगुनाहों को पुलिस के अत्याचार से बचाने का उद्योग करे न्याय में व्यक्तिगत सम्बन्धों और प्रलोभनों को स्थान देना उचित नहीं। नागरिक को चाहिए कि वह देश की रक्षा के लिए फौजी स्वयं-सेवकों अथवा सेवा-समतियों मे काम करे क्योंकि नगर की रक्षा देश की रक्षा पर आश्रित है। अच्छा नागरिक जो कुछ काम करे—चाहे मेंम्बरी हो, चाहे आनरेरी मैजिस्ट्रेटी हो और चाहे कलक्टरी हो सब सेवा भाव से करे केवल आत्म-गौरव बढ़ाने के लिए नहीं। नागरिक को चाहिये कि वह समाज को केवल चोर-डाकुओं

से ही रक्षित न रक्खे, वरन् उन लोगों से भी रक्षित रक्खे जो सभ्यता के आवरण में लोगों को ठगते हैं। उसको यह भी चाहिये कि आपस के लड़ाई-झगड़े के कारणों को उपस्थित न होने दे। यदि नगर में शान्ति-भंग होती है तो दुर्जन तो आपस में लड़ते हैं और सज्जनों की हानि होती है। जो व्यक्ति लड़ाई के कारण उपस्थित होते हुए देखकर उपेक्षा-भाव से मौन रहता है, वह उस लड़ाई में सहायक होता है। हाँ, विरोध के शमन के लिए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके लिए ऐसे उपाय काम में न लाये जावें, जिनसे विरोध बढ़े, वरन् शान्ति और प्रेम के साथ, शान्ति स्थापित की जाय।

राजनीतिक उन्नति—राजनीति के सम्बन्ध में बड़ी सावधानी और धैर्य की आवश्यकता है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह नेता बने। जहाँ बहुत से नेता होते हैं वहाँ विनाश के साधन उपस्थित हो जाते हैं। धर्य, दृढ़ता और निश्चय के साथ किया हुआ कार्य सफल होता है। सत्य का अवलम्बन लेकर निर्भयता से कार्य करना चाहिए। जहाँ पर मताधिकार का प्रश्न हो, जहाँ उसकी राय ली जावे, वह स्वतन्त्रता पूर्वक दे, उसमें किसी का पक्ष-पात न करे। धन और मान के प्रलोभनों से विचलित न हो और न बन्धुत्व, जाति और साम्प्रदायिकता का ख़याल करे। मताधिकार का सदुपयोग ही लोक-तंत्र राज्य की सफलता का मूल साधन है। राजनीतिक उन्नति के लिए वह इस बात का ध्यान रक्खे कि वही राजनैतिक व्यवस्था उत्तम है जिससे समाज में शान्ति और साम्य स्थापित रहे; सब को समान अधिकार रहें; कोई अपनी जाति व मत के कारण समाज के किसी लाभ से वंचित न रहे; सबको अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के विकास और उनके उपयोग से न्यायानु-

कूल लाभ उठाने के लिए समान अवसर मिलें; उचित कार्य करने में किसी की स्वतत्रता में बाधा न आवे; सबका चाहे, वह पदाधिकारी हो और चाहे साधारण पुरुष—मान और गौरव रहे; लोग भूखे न मरें, किसानों का भार हलका हो; बेकारों की बेकारी कम हो; संपत्ति की रक्षा हो, धर्म के शान्ति-पूर्वक आचरण में बाधा न पड़े; देशवासी देश की उन्नति के साधनों का स्वयं निर्णय कर सकें; और देश के सुचारु रूप से शासन का और उसकी रक्षा का स्वयं अपने ऊपर भार लेने की योग्यता प्राप्त कर सकें। जिस प्रकार देश में उपर्युक्त रीति की व्यवस्था स्थापित होने की दृढ़तापूर्वक माँग करना और उस माँग की पूर्ति में सहायक होना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है उसी प्रकार राज्य-व्यवस्था का मान करना, करों का देना और न्यायपूर्ण शासन में राष्ट्र का सहायक बनना भी नागरिक धर्म के अन्तर्गत समझना चाहिए।

अधिकार—नागरिक अपने कर्तव्य का पूर्णतया पालन करता हुआ अपने शरीर, सम्पत्ति और वैयक्तिक, पारिवारिक एवं जातीय स्वाभिमान की रक्षा, गमनागमन विचार और भाषण की स्वतन्त्रता, व्यापारिक सुविधाओं, अस्पताल, पुस्तकालय आदि सार्वजनिक संस्थाओं और नौकरियों में समानता का व्यवहार व राजकीय न्याय विधान में अभेद, बच्चों को शिक्षा आदि नागरिक अधिकारों के लिए झगड़ सकता है अपने अधिकारों के लिए उदासीन रहना अपने प्रति अन्याय है। जो अपने को प्राप्य अधिकारों से वञ्चित रखता है वह अन्याय को प्रोत्साहन देता है और दूसरों के लिए बुरा उदाहरण उपस्थित करता है। अधिकारों के लिए जब झगड़ना हो तब वैयक्तिक लाभ की भावना से नहीं वरन् सामाजिक लाभ को अपने सामने रखना चाहिए। संक्षेप में

हम कह सकते हैं कि दूसरों से मनुष्योचित व्यवहार करते समाज को उन्नतिशील बनाने में सहायता देना नागरिक का कर्तव्य है और अपने साथ मनुष्योचित व्यवहार की माँग उसका अधिकार है।

(बाबू गुलाबराय एम० ए०)

सद्‌व्यसन

व्यसन शब्द प्रायः बुरे अर्थ में ही आता है। जुआ, चोरी शराब पीना आदि व्यसन अवश्य बुरे हैं किन्तु व्यायाम, कुश्ती, पर्यटन, साहसी कार्य, संगीत, कविता करना, चित्र-कारी, बढ़ई गीरी, मूर्ति-संग्रह आदि व्यसन अच्छे कहे जा सकते हैं।

हमारा मन विश्राम और विषय का परिवर्तन चाहता है। एक ही विषय पर मन लगे रहने से जी ऊब जाता है। मनुष्य को आवश्यक कार्य, जैसे ईश्वराराधन, आजीविका-उपार्जन अथवा समाज-सेवा कर लेने पर भी कुछ समय बचता है। उसके सदुपयोग का प्रश्न रहता है कि वह उस समय क्या करे। खाली बैठता है तो दूसरों की बुराई-भलाई करता है या कोई षड्यन्त्र रचता है। खाली दिमाग़ शैतानी कारखाना बन जाता है। (An idle man's mind is the devil's workshop) इस कारण उस खाली समय के लिए मन को व्यस्त रखने के अर्थ कुछ गोरख-धन्धा चाहिए।

इसके अतिरिक्त मनुष्य को बुरे व्यसनों से बचाने के लिए कोई दूसरा व्यसन ही वाञ्छनीय है। वे व्यसन कौन से होना चाहिए? इन व्यसनों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात तो यह है कि इनका अनुशीलन इस हद तक न पहुँच जाय

कि ये धर्म और अर्थ के उपार्जन में बाधक हों। कविता कर रहे हैं तो दिन रात कागज, पेन्सिल लिये बैठे ही रहते हैं, न जीविका-उपार्जन की फिक्र है न बाल-बच्चों की खबर है। बिचारी गृहणी गार्हस्थिक आवश्यकताओं के अभाव के कारण अपने भाग्य को कोसती है, ऐसी स्थिति में कविता करना या चित्रकारी करना दुर्व्यसन बन जाता है। समाजोपकारी कार्यों में भी, जैसे समाज-सेवा, राजनीतिक कार्य अथवा वैज्ञानिक अनुसन्धान में घर की चिन्ताओं को भूल जाना एक सीमा तक क्षम्य माना जाता है; किन्तु जिसने अपने ऊपर गृहस्थी का भार ले लिया है उसको अपने उत्तर-दायित्व का निर्वाह करना ही पड़ता है। समाज के सभी लोग ब्रह्मचारी नहीं रह सकते हैं।

जो व्यसन अपनाये जायँ उनमें यथासम्भव कुछ उप योगिता भी हो तो अच्छा है। (जैसे बढ़ईगीरी के काम को एक कला के रूप में अपनाना) वैसे तो बहुत सी चीजें ऐसी हैं जिनका भौतिक उपयोग नहीं है; किन्तु मानसिक उपयोग है; उनको भी हम सुविधा पूर्वक अपना सकते हैं। संगीत ऐसा ही व्यसन है। संगीत से मानसिक प्रसन्नता और शान्ति मिलती है। कहीं-कहीं तो संगीत का प्रयोग मानसिक रोगों के अच्छा करने में भी होता है। कविता करना भी संगीत की कोटि में आता है। उसका प्रभाव संगीत की अपेक्षा दूर तक पहुँचाता है और चिरस्थायी भी होता है। रेडियो की बदौलत संगीत का प्रभाव भी दूर व्यापी हो गया है, फिर भी उसमें इतना स्थायित्व नहीं (जब तक उसकी रिकार्ड न बना ली जायें) जितना कि कविता में। कविता का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही हो सकते हैं। हम शृङ्गार का बहिष्कार तो नहीं चाहते हैं किन्तु उसमें संयम और मर्यादा की

आवश्यकता है। शुद्ध कला की दृष्टि से भी कविता प्रसन्नता का साधन बन सकती है किन्तु उपयोगिता की दृष्टि से देश-प्रेम को प्रोत्साहित करनेवाली कविताएँ तथा शोषितों और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने वाल रचनाओं का अधिक महत्त्व है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि कला की दृष्टि से कविता का अनुशीलन बिलकुल छोड़ ही दिया जाय।

चित्रकारी और फोटोग्राफी भी ऐसे व्यसन हैं जिनको उपयोगी बनाया जा सकता है। फोटोग्राफी द्वारा हम अपने दूसरे भाइयों को जो यात्रा करने में असमर्थ हैं यात्रा का लाभ दे सकते हैं। चित्रकारी का उपयोग पोस्टर आदि बनाने में हो सकता है, लेकिन हमारा यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य हर समय उपयोगिता का ही ध्यान रक्खे। मन की प्रसन्नता भी एक सबसे बड़ा उपयोग है। फोटोग्राफी अच्छा व्यसन है किन्तु ख़र्चीला अवश्य है। सीमित आय के लोगों के लिए यदि वे उसे उपयोगी न बना सके तो इस व्यसन को अधिक प्रोत्साहन न देना चाहिए।

बाग़वानी के व्यसन में उपयोगिता और सौन्दर्य दोनों का समन्वय हो सकता है। बाग़वानी में फूल और शाक-भाजी तो उत्पन्न किये जाते ही हैं किन्तु उसमें हाथ से काम करने और थोड़े मृदु व्यायाम का भी अवसर मिल जाता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए कुछ न कुछ हाथ से काम करना आवश्यक है। बाग़वानी ख़र्चीला व्यसन भी है और बिना ख़र्च का भी। हाथ से काम करने वाले लोगों के लिए वह अल्प व्यय साध्य हैं। इसमें प्रकृति बहुत कुछ सहारा दे सकती है। जिसके पास थोड़ी-सी भी ज़मीन है यानी दस-बीस गज मुरब्बा ज़मीन भी है वह भी अपने लिए कुछ न

कुछ उत्पादन कर सकता है। सेम, तोरई, घीया, काशीफल आदि बेल की तरकारियाँ कम स्थान घेरती हैं। जड़ के लिए थोड़ी ज़मीन चाहिए फिर वे दीवाल या छप्पर पर चढ़ जाती हैं।

बीजों को भी समस्या बहुत कठिन नहीं है। बहुत-सी चीजों के बीज तो घर ही में उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे पक्के टमाटरों में से टमाटर के बीज निकल आते हैं। पपीते का भी बीज खाने के पपीतों में से सहज में मिल जाता है। आम के आम और गुठली के दाम की बात सार्थक हो जाती है। कभी-कभी करेलों में से भी जब वे रक्खे-रक्खे पक जाते हैं बीज प्राप्त हो जाते हैं। सरसों का बीज गेहूँ के छानन-बीनन में से मिल जाता है।

जो बीज इस प्रकार नहीं मिल सकते वे सहज में ख़रीदे जा सकते हैं। बीज बहुत सस्ते मिलते हैं। पालक, मूली, गाजर, लौकी, काशीफल आदि के बीज प्रायः मामूली पंसारियों से सस्ते मिल जाते हैं—हर एक बड़े शहर में बीज बेचनेवाले भी होते हैं, नहीं तो बाहर से भी मँगाये जा सकते हैं।

धनिए, मेथी आदि के बीज घर के मसालों में मिल जाते है। खाद और पानी की समस्या रह जाती है। जिन लोगों के यहाँ जानवर होते हैं उनके यहाँ गोबर का खाद सहज में ही बन जाता है। सूखी पत्तियों, छिलकों आदि का भी खाद उनको ज़मीन में गाड़ कर बनाया जाता है। बरसात में तो पानी की प्रायः ज़रूरत नहीं होती (जहाँ बरसात कम होती है वहाँ की दूसरी बात है) और स्नानादि में जो पानी खराब जाता है उसका बाग़बानी में सदुपयोग किया जा सकता है। पानी अगर सब्जी को मिलता

रहे तो बाक़ी काम प्रकृति स्वयं कर लेती है। प्रकृति की देन बहुत बड़ी है। उसकी व्याज बनिए की व्याज से कहीं अधिक होती है। बनिए की व्याज सोते जागते दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती है, किन्तु प्रकृति की देन थोड़ा जागरण चाहती है।

सब्जी-भाजी उत्पन्न हो जाने पर उनके संचयन में बड़ा आनन्द आता है। उनका महत्व बाज़ार की ख़रीदी हुई शाक-भाजी से अधिक होता है। उनमें अपने परिश्रम से उत्पन्न किये हुए का भाव लगा रहता है और उन पर हम गर्व भी कर सकते हैं। इधर-उधर पत्तों में छिपी हुई फलियों और सब्जियों की तलाश में मनुष्य की खोज-वृत्ति का भी तोष हो जाता है। जो आनन्द शिकारी को शिकार खेलने में आता होगा वह शाक-भाजी की खोज और संचयन में बाग़वानी करने वाले को आता है।

ऐतिहासिक वस्तुओं, अजूबा चीजों आदि का संग्रह भी बड़ा रोचक व्यसन है। मूर्तियाँ, पत्थर, बर्तन, कपड़े, शंख, घोंघे आदि का संग्रह घर की शोभा ही नहीं बढ़ाते वरन् उनसे इतिहास, भूगोल और प्रकृति का ज्ञान भी बढ़ता है। इस प्रकार के संग्रहों के लिए यात्रा अपेक्षित है। यात्रा भी स्वयं एक प्रकार का व्यसन बन जाता है। भूगोल का व्यावहारिक ज्ञान यात्रा द्वारा ही होता है। यदि यात्राओं में पैदल चलने का भी काम हो तो उनसे स्वास्थ्य और साहस की भी वृद्धि होती है और प्रकृति का निकटतम परिचय मिलता है। साहसी यात्राओं का करना हर एक मनुष्य का काम नहीं किन्तु जो लोग शारीरिक बल और हृदय का साहस रखते हैं वे इन यात्राओं द्वारा न केवल अपना गौरव बढ़ाते हैं वरन् देश का भी गौरव बढ़ाते हैं।

वे संसार के ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धान या ऐतिहासिक अनुसन्धान भी व्यसन के विषय बनाये जा सकते हैं। हम लोग परीक्षा समाप्त करने के बाद अपनी शिक्षा को समाप्त सी समझ लेते हैं। जो लोग शिक्षा-विभाग में काम करते हैं वे लोग तो ऐसे अनुसन्धान सहज में कर सकते हैं किन्तु बहुत से अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों को केवल परीक्षा पास कराना ही जानते हैं। अनुसन्धान के कार्यों में न स्वयं रुचि लेते हैं और न अपने विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देते हैं। वे अपने व्यवसाय को लज्जित करते हैं।

व्यायाम और खेल ऐसे निरापद और उपयोगी व्यसन हैं जिनको हर एक आदमी को स्वास्थ्य के हित अपनाना चाहिए। टहलना सबसे मृदुलतम व्यायाम है। इसको बच्चे और बूढ़े भी अपना सकते हैं इसको भी यथा सम्भव एकाकी होने से बचाये रखना चाहिए। यदि दो-चार आदमी साथ टहलने जाते हैं तो उसमें व्यायाम-सा नहीं मालूम होता है और चित्त भी अधिक प्रसन्न रहता है। अतः पर्यटन में हमको प्रकृति की अपूर्व रंग-बिरंगी जटाओं के देखने का अवसर मिलता है साथ ही धूल और गन्दगी से साफ़ और शुद्ध वायु मिल जाती है।

कुश्ती, लेजन आदि व्यायाम शरीर-गठन और स्फूर्ति के लिए उपयोगी हैं किन्तु इनके सम्बन्ध में 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का ध्यान रखना आवश्यक है। इनको भी एकान्त में न करके बग़ीची आदि में सामूहिक रूप से करना अधिक वाञ्छनीय है।

टेनिस, फुटबॉल, क्रोकेट आदि का अनुशीलन समय और आय के अनुकूल होना चाहिए। फुटबॉल तो अल्प व्यय

साध्य है किन्तु टेनिस में कुछ खर्च अधिक है। इन खेलों की विशेषता यह है कि इनमें सामाजिकता कुछ बढ़ती है। कबड्डी आदि देशी खेलों को प्रोत्साहन देकर अधिक सुव्यवस्थित बनाया जा सकता है।

मनुष्य को परिवार का पालन करना भी आवश्यक है उसी के साथ सामाजिक सम्बन्धों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इन खेलों द्वारा मनुष्य की सामाजिकता बढ़ सकती है और सहनशीलता, परिश्रमशीलता, उदारता आदि गुणों का अनुशीलन भी हो सकता है।

(बाबू गुलाबराय एम० ए०)

मिष्ट भाषण और शिष्टाचार

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहँ सीतल होय॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक॥
मधुर बचन है औषधी कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर॥

—कबीर

तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी च सूनृता
एतां सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन्।

अर्थात् आसन भूमि जल और सत्य और मीठी वाणी की सज्जनों के घर में कभी कमी नहीं रहती है।

भाषा मनुष्य का विशेष अधिकार है। भाषा के कारण ही मनुष्य इतनी उन्नति कर सका है। जानवर हजारों वर्ष से

जहाँ के तहाँ बने हुए हैं; किन्तु मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता चला आया है। अन्य जानवरों की अपेक्षा मनुष्य भौतिक बल में न्यून होता हुआ भी अपनी बुद्धि और भाषा के सहारे सबसे अधिक सबल हो गया है। उसने पंचमहाभूतों को अपने वश में कर लिया है; यह सब भाषा द्वारा प्राप्त सहकारिता के बल पर ही हो सका है। भाषा द्वारा हमारे ज्ञान और अनुभव की रक्षा होती है।

भाषा ही द्वारा मनुष्य की सामाजिकता कायम है; किन्तु भाषा का दुरुपयोग ही उसे छिन्न-भिन्न भी कर देती है। एक मधुर शब्द दो रूठों को मिला देता है और एक ही कटु शब्द दो मित्रों के मन में वैमनस्य उत्पन्न कर देता है।

अब प्रश्न यह होता है कि मधुर वा मिष्ट भाषण किसे कहते हैं। साधारणतया जो वस्तु मनोनुकूल होती है, जिससे चित्त द्रवित होता है, वही मधुर कहलाती है। माधुर्य भाषा का भी गुण है। साहित्य-दर्पणकार ने भी कहा है कि चित्त को पिघलाने वाला जो आनन्द होता है उसे माधुर्य कहते हैं। 'चित्रद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते'।

वचनों का माधुर्य हृदय-द्वार के खोलने की कुंजी है। मधुर वचनों का आकर्षण न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण और चुम्बक के आकर्षण से भी बढ़कर है। तभी तो तुलसीदास ने कहा है—

> कोयल का को देत है कागा का सो लेत।
> तुलसी मीठे वचन ते जग अपनो करि लेत॥

एक ही बात को हम कर्ण-कटु शब्दों में कहते हैं और उसी को हम मधुर बना सकते हैं। बाणभट्ट जब मरने वाला था तो यह प्रश्न हुआ कि उसकी अधूरी कादम्बरी को कौन पूरा करेगा। उसने अपने दोनों लड़कों को बुलाया और उनसे

बुलाकर पूछा कि सामने जो सूखा वृक्ष पड़ा है उसको तुम किस प्रकार अपनी भाषा में व्यक्त करोगे ? बड़े लड़के ने कहा 'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे' दूसरे ने कहा 'नीरस तरुवर विलसति पुरतः' बात एक ही थी कहने-कहने में फरक था। बाणभट्ट ने अपने छोटे लड़के को ही पुस्तक पूरी करने का भार सौंपा।

यह तो रही साहित्य के शब्द-संयोजन की बात! साधारण बोल-चाल में भी बड़ा अन्तर हो जाता है। भाव का प्रभावशाली भाषा में व्यक्त कर देना ही साहित्य है। जो मनुष्य एक किसी गलतफहमी को दूर करे अथवा जो रूठे हुए किसी मित्र को मना लेता है वह सच्चा साहित्यिक है।

वार्तालाप की शिष्टता मनुष्य को आदर का भाजन बनाती है और समाज में उसकी सफलता के लिए रास्ता साफ कर देती है। मनुष्य का जो समाज में प्रभाव पड़ता है वह बहुत अंश में पोशाक और चाल-ढाल पर निर्भर है; किन्तु विष भरे कनक घटों की संसार में कमी नहीं है। यह प्रभाव ऊपरी ही होता और पोशाक का मान जब तक भाषण से पुष्ट नहीं होता है तब तक स्थायी नहीं होता। मधुर भाषी के लिए करनी और कथनी का साम्य आवश्वक है; किन्तु कर्म के लिए वचन पहली सीढ़ी है। मधुर वचन ही विश्वास उत्पन्न कर भय और आतंक का परिमार्जन कर देते हैं। कटु भाषी अधिकारियों से लोग हृदय खोल कर बात करने मे डरते हैं। सामाजिक व्यवहार के लिए विचारों का आदान-प्रदान आवश्यक है और वह भाषा की शुद्धता और स्पष्टता के बिना प्राप्त नहीं होता है। भाषा की सार्थकता इसी में है कि वह दूसरों पर यथेष्ट प्रभाव डाल सके। जब बुरे वचन आदमी को रुष्ट कर सकते हैं तो मधुर वचन

दूसरे को प्रसन्न भी कर सकते हैं। शब्दों का जादू बड़ा ज़बरदस्त होता है।

मधुर वचनों के साथ यह भी आवश्यक है कि उनके पीछे टकसाली भाव भी हों नहीं तो मुलम्मे के सिक्कों की भाँति बेकार रहेंगे। हृदय की मलिनता और मधुर वचनों का योग नहीं हो सकता। वचन के अनुकूल जब कर्म भी होते हैं तभी मनुष्य वन्द्य बनता है।

मनुष्य के चरित्र के असली परिचायक उसके कर्म होते हैं; किन्तु बिना माधुर वचनों के लोग दूसरों के सद्व्यवहार का भी लाभ नहीं उठाना चाहते हैं। 'मानोहिमहतां धनम्' मान ही बड़े आदमियों का धन होता है। जो लोग बिना मान के दान देते हैं उनका दान स्वीकार नहीं होता है। मान का पान भी बहुत होता है और रहीम के शब्दों में 'अमी पियावै मान बिनु सो नर हमें न सुहाय' मिष्ट भाषण समाज-सेवक का एक आवश्यक गुण हो जाता है। नीति में कहा है कि जिन मनुष्यों के मुख प्रसन्नता के घर हैं, हृदय दया से परिपूर्ण हैं, वचन अमृतमय और काम परोपकार की भावना से प्रेरित हों वे किसके वन्दना योग्य नहीं होते हैं अर्थात् वे सभी के आदर-भाजन बन जाते हैं।

> वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
> करणं परोपकरणं एषां केषां न ते वन्द्याः॥

ये गुण जन्म से तो प्राप्त होते ही हैं; किन्तु शिक्षा द्वारा भी ऐसे शुभ अभ्यास और संस्कार बनाये जा सकते हैं। मन वाणी और कर्म का सामंजस्य ही मनुष्य को श्रेष्ठता के पद पर पहुँचाता है। फिर भी वचनों का विशेष महत्व है क्योंकि एक कटु वचन सारे किये-धरे पर पानी फेर सकता है। यद्यपि यह ठीक है कि दुधार गाय की दो लातें भी सहन की

जाती हैं फिर भी दूसरे के स्वाभिमान का हनन कर उसके साथ उपकार करना कोई महत्व नहीं रखता। वाणी की मधुरता के साथ विनयपूर्ण व्यवहार ही शिष्टाचार है। लोग शिष्टाचार का अर्थ दिखावा या तकल्लुफ करते हैं; लेकिन वास्तव में उसका अर्थ हे सज्जनोचित व्यवहार। मधुर भाषा के साथ इसका भी मूल्य है। इसके द्वारा मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा और कुल की परम्परा और मर्यादा का परिचय मिलता है।

शिष्टाचार वाणी का भी होता है और व्यवहार का भी। वाणी के शिष्टाचार में अपनों से बड़े से आप कहना, आप क्या कहते हैं के स्थान में आपकी क्या आज्ञा होती है आदि वाक्य अधिक वाञ्छनीय समझे जाते हैं। किसी काम को कराने के लिए कृपया शब्द का प्रयोग शिष्टता का परिचायक होता है। काम हो जाने के पश्चात् धन्यवाद कहना भी जरूरी है। जो अपने से नीचे हैं उनसे कोई ऐसी बात न कही जावे कि उससे यह प्रकट हो कि हम उनको नीच समझते हैं। अपने से कम स्थिति के लोगों के स्वाभिमान की रक्षा करना सज्जन का पहला कर्त्तव्य है।

जो काम करना है उसको प्रसन्नता से करना चाहिए और उसके सम्बन्ध में कोई ऐसे शब्द भी न कहना चाहिए जिनसे प्रकट हो कि यह काम नाखशी से किया जा रहा है या उस काम के करने से दूसरे के साथ अहसान किया जा रहा है। या तो दे न और यदि कोई चीज दे तो पूर्ण उदारता से और प्रसन्नता के साथ। कम से कम जहाँ क्रिया में उदारता हो वहाँ 'वचने दरिद्रता' न आने देना चाहिए।

यदि इन्कार ही करना पड़े तो उसमें अधिकार और अभिमान की गन्ध न आनी चाहिए। इन्कार मजबूरी के ही कारण होना चाहिए, चाहे वह सैद्धान्तिक मजबूरी हो या

आर्थिक। इन्कार अशिष्टता के साथ भी हो सकता है और शिष्टता के साथ भी। प्रायः लोग अशिष्टता से यह कह देते हैं जाओ! अमुक वस्तु यहाँ कहाँ से आई: तुम्हारा कोई देना आता है? घरवालों को तो जुड़ता ही नहीं तुम्हारे लिए कहाँ से लायँ? इन्कार करने में जो बातें कही जायँ उनमें परायेपन का भाव न आने देना चाहिए। इन्कार करते समय खेद प्रकट करना शिष्टाचार की माँग है। कहना चाहिए कि मुझे बड़ा खेद है कि आपके लिए इन्कार करना पड़ता है। आपने यहाँ आने का या माँगने का कष्ट किया और मैं इस विषय में आपकी सेवा न कर सका।

वार्तालाप में हमको व्यापारिक या जाब्ते की बातचीत और निजी बातचीत में थोड़ा अन्तर करना होगा। व्यापारिक बातचीत भी अशिष्ट न होनी चाहिए किन्तु वह नपी-तुली हो सकती है। निजी सम्बन्ध की बातचीत में आत्मीयता का अभाव न रहना चाहिए और थोड़ा-सा कष्ट उठाकर बात को पूरी तौर से समझा देना अपना कर्तव्य हो जाता है। कुछ लोग सब के साथ निजी सम्बन्ध की-सी ही वार्तालाप करते हैं, यह भी बुरा नहीं है किन्तु बात उतनी ही कही जाय जितनी निभाई जा सके।

बात-चीत के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना वाञ्छनीय है।

१—बातचीत पात्रानुकूल तो होना ही चाहिए किन्तु वह न इतनी भावुकता पूर्ण हो कि उसकी सचाई में सन्देह होने लगे और न इतनी शुष्क हो कि वक्ता में अभिमान की गन्ध आवे।

२—बात उतनी ही कही जाय जितनी का निर्वाह हो सके। झूठे वायदे न किये जायँ और न पृथ्वी पर स्वर्ग उतार

कर रख दिया जाय।

३—बात करने में विनय और शिष्टाचार का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। जिससे बात कही जाय उसके पद और गौरव के अनुकूल होना वाञ्छनीय है।

४—बात आवश्यकता, अवसर और अवकाश के अनुकूल होनी चाहिए। सुनने वाले के समय का ध्यान रखना आवश्यक है।

५—बातचीत का पूरा सूत्र अपने हाथ में रखना उचित नहीं है। सुनने वाले को भी बात करने का मौका दिया जाना सामाजिकता का तक़ाज़ा है।

६—बात-चीत में यथासम्भव अविश्वास प्रकट न होने देना चाहिए।

७—बात-चीत में 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियं' का ध्यान रखना आवश्यक है। जहाँ अप्रिय या विरुद्ध बात करना हो वहा भी पूर्ण शिष्टता के साथ कहना चाहिए। शिष्टता में भी दृढता रह सकती है।

८—किसी शब्द या वाक्यांश को तकिया-कलाम बना लेना या बात-बात में अश्लील शब्दों का व्यवहार करना या कसम खाना ये सब बातें शिक्षा की कमी की द्योतक हैं।

९—बात को स्पष्ट कहना चाहिए। द्वयर्थक बात कहना उचित नहीं है। जहाँ दो अर्थ लगाये जाने की सम्भावना हो वहाँ अपना अभिप्राय स्पष्ट कर देना आवश्यक है। 'अश्वत्थामोहत: नरो वा कुञ्जरो वा' की दुविधा मूलक युधिष्ठिरी सत्य से यथासम्भव बचना चाहिए।

१०—आवेश में भी कोई ऐसी बात न कहना चाहिए जिसके लिए पीछे पछताना पड़े जबान से निकली हुई बात तीर के समान है जो एक बार छूट जाने पर वापस नहीं

आती। बात को पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ कहना चाहिए। वह ऐसी हो जो साधारणतया प्रमाणित की जा सके।

यद्यपि शिष्टाचार का प्रश्न बड़ा पेचीदा है और पद पद पर ग़लती हो सकती है तथापि हमको ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने से दूसरे को अधिक महत्ता दें। दूसरों के आने पर उठ खड़े होना, जाने पर दरवाज़े तक पहुँचा देना (विशेष कर अपने से बड़ों को) पहले से प्रणाम-नमस्कार करना, मुस्कराहट से जान-पहचान का परिचय देना, बड़ों से आगे न चलना, बड़ों के साथ चलने में उनके हा से सामान ले लेना, रेल या गाड़ी में पहले दूसरों को बैठने का अवसर देना, द्वार में होकर पहले अपने बड़ों को निकलने का अवसर देना; पान, इलायची, पानी, भोजन का थाल आदि पहले दूसरों के सामने रखना ये सब शिष्टाचार और सद्व्यवहार के अंग हैं। सब लोगों के साथ एक-सा शिष्टाचार तो नहीं दिखाया जा सकता है, किन्तु बोल-चाल में यथासम्भव सब से मिष्ट भाषण करना चाहिए और उसके अनुकूल व्यवहार में भी मधुरता रहना वाञ्छनीय है। सद्व्यवहार निष्फल नहीं जाता है। प्रत्येक स्थान के शिष्टाचार में कुछ न कुछ विशेषता होती है। वाचनालय में मौन ही सबसे बड़ा शिष्टाचार है और कोई मनुष्य अख़बार पढ़ रहा हो तो जब तक वह उसे पढ़ न ले उसके हाथ से अख़बार ले लेना अशिष्टता का द्योतक होगा। अख़बार का यदि कोई पन्ना ख़ाली हो तो उसको विनयपूर्वक माँग सकते हो।

सभा-सोसाइटियों में ठीक समय पर पहुँचना, समय से अधिक न बोलना, दूसरों की शान्ति भंग न करना, बोलने वाले का उत्साह भंग न करना, सावधानी से दूसरों को

सुनने देना; ये सब शिष्टाचार के अंग हैं।

किसी को दूर से न पुकारना, आवश्यकता से अधिक ज़ोर से बात न कहना राह चलती स्त्रियों की ओर न ताकना, उनसे कोई ऐसी बात न कहना जो अपमान जनक हो या शिष्टा के विरुद्ध हो, किसी के पत्र को चोरी से न पढ़ना, मकान में प्रवेश करने से पूर्व द्वार खटखटा देना या उसे सावधान कर देना; ये सब छोटी-छोटी परन्तु आवश्यक बातें शिष्टता की माँग है।

खाने-पीने के शिष्टाचार में देशी और विदेशी ढंग में थोड़ा अन्तर है फिर भी ये बातें साधारणतया ध्यान में रखने योग्य हैं। खाते समय मुँह में इतना बड़ा ग्रास न देना चाहिए कि मुँह चलाना कठिन हो जाय, अपने पास किसी चीज़ के आने के लिए अधीर न हो जाना, दूसरों से पहले खाना न आरम्भ कर देना, व्यर्थ जूठा न छोड़ना, खाते समय पंक्ति से पहले न उठ बैठना, पानी आदि को न फैलाना, ऐसी बातों का उल्लङ्घन करना अशिष्टता का परिचायक होता है।

कपड़े पहनने में भी समय और अवसर का ध्यान रखना पड़ता है। प्रीति-भोज में फुटबॉल की पोशाक काम न देगी। सभा-सोसाइटी में केवल बनियान पहन कर पहुँच जाना शिष्टता न होगी। (महात्मा गांधी की दूसरी बात है) मैले कपड़े जो दूसरों को अरुचिकर हो स्वयं अपना ही अपमान कराते हैं और आत्मग्लानि उत्पन्न करते हैं। शिष्टाचार की माँग यह है कि कपड़े साफ़ हों और यथासम्भव मौसम को ध्यान में रखते हुए सारा या अधिकांश शरीर ढक जाय।

सभ्य समाज में शिष्टाचार का विशेष महत्व है। शिष्टाचार सभ्य समाज का प्रवेश-पत्र है। उसका अभाव व्यक्ति

को ही नहीं बदनाम करता है वरन उसकी संस्था, उसके शिक्षालय और कुल पर भी लाञ्छन का विषय बन जाता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को शील और शिष्टाचार का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जपी, तपी, धनवान्, दाता और सूर लोगों की कमी नहीं है। संसार में शीलवान पुरुष विरले ही होते हैं।

ज्ञानी ध्यानी संयमी दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवंत कोई एक॥

—लेखक बाबू गुलाबराय एम० ए०

वीरता

वीरत्व संसार में एक अमूल्य रत्न है। इसका आविर्भाव उत्साह से होता है। साहित्य-शास्त्र में उत्साह ही इसका स्थायी भाव माना गया है, अर्थात् बिना उत्साह के यह कभी स्थिर नहीं हो सकता। पुरुष में किसी प्रकार का उत्साह नहीं है, वह किसी भी बात में कभी वीरता नहीं दिखला सकता। यह एक ऐसा गुण है कि जिसे न केवल वीर, वरन् कादर भी सम्मान की दृष्टि से देखता है। वीर से बढ़कर सर्वप्रिय कोई भी नहीं होता और संसार पर वीरता का जितना प्रभाव पड़ता है उतना प्रायः और किसी गुण का नहीं पड़ता। सत्य आदि भी बड़े अनमोल गुण हैं किन्तु जितना आकस्मिक और रोमांचकारी प्रभाव वीरत्व का पड़ेगा उतना सत्य आदि का कभी नहीं पड़ेगा। इसीलिये वीरत्व में जगन्मोहिनी शक्ति सभी अन्य गुणों से श्रेष्ठतर है और यह कीर्त्ति का सबसे बड़ा वर्धक है। कादरता और भय से इसका सहज विरोध है। कादरता में तिलमात्र

आकर्षण शक्ति तथा भय में कुछ भी प्रीति-योग्य नहीं है। क़ादरता का कोई भी अंश किसी का चित्त अपनी ओर आकृष्ट नहीं करेगा और भय में कोई भी ऐसा अंश नहीं है जो किसी का प्रीति-भाजन हो सके।

वीरत्व को बहुत लोगों ने सामर्थ्य में मिला रक्खा है, किन्तु इन दोनों में कोई मुख्य सम्बन्ध नहीं है। सामर्थ्य केवल इतना करता है कि वीरत्व की महिमा बढ़ा देता है। यदि वीर पुरुष वलहीन हुआ तो उसकी वीरता वैसी नहीं जगमगाती जैसी कि वलवान वीर की। यदि हनुमान जी समुद्र न फलाँग गए होते तो भी उतने ही बड़े वीर होते से कि अब माने जाते हैं, किन्तु उनके महावीरत्व को चमकानेवाले उदधि-उल्लङ्घन और द्रोणाचल-आनयन के ही कार्य्य हुए। बीरत्व और पराक्रम में इतना ही भेद है। वास्तविक वीरत्व का मुख्य आधार शारीरिक बल न होकर मानसिक बल है, जिसे इच्छा शक्ति (Will-power) कहते हैं। इस शक्ति का वेग कोई भी नहीं रोक सकता। एक पुरुष की उद्दाम इच्छाशक्ति से पूरी सेना में पुरुषत्व आ सकता है। और एक कादर कभी-कभी पूरे (सैन्य) बल की कादरता का कारण हो जाता है। शरीर का वास्तविक राजा मन ही है। इसी की आज्ञा से शरीर तिल-तिल कट जाने से मुँह नहीं मोड़ता और इसी की आज्ञा से एक पत्ते के खड़कने से भाग खड़ा होता है। बुद्धि, अनुभव आदि इसके शिक्षक हैं। ये ही सब मिलकर इसे जैसा बनाते हैं वैसा ही यह बनता है। इच्छा इसी शिक्षित अथवा अशिक्षित मन की आज्ञा है। मन जितना ही दृढ़ अथवा डावाँडोल होगा उसकी आज्ञा, इच्छा वैसी ही पुष्ट अथवा शिथिल होगी। जिसका मन पूर्णतया शिक्षित और स्ववश है, उसी

की इच्छा में वज्रवत दृढ़ता होगी। विना ऐसी इच्छा-शक्ति के कोई पुरुष पूरा वीर नहीं हो सकता। इसलिये दृढ़ता वीरत्व की सबसे बड़ी पोषिका है। जिसका मन उचित काम करने से तिलमात्र चलायमान होता ही नहीं और जो अनुचित कार्य्य देख कर विना उसे शुद्ध किए नहीं रह सकता, वह सच्चा वीर कहलावेगा।

वीरत्व का द्वितीय पोषक न्याय है। विना इसके वीरत्व शुद्ध एवम् प्रशंसास्पद नहीं होता। न्याय के सच्चा होने को बुद्धि की आवश्यकता है और साधारण न्याय को उदारता से अच्छी कांति प्राप्त होती है। अतः वीरता के लिए न्यायशीलता, उदारता और बुद्धि की सदैव आवश्यकता रहती है। सच्चे वीर को अन्याय कभी सह्य नहीं होगा। हमारे यहाँ वीरता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण भगवान् रामचन्द्र का है। इन्हीं को महाकवि भवभूति ने महावीर की उपाधि से भूषित करके महावीरचरित्र के नाम से इनकी जीवनी एक नाटक में लिखी है। दंडकारण्य में जिस काल आपने निश्चरों द्वारा भक्षित ब्राह्मणों की अस्थि का समूह निरीक्षण किया तो तुरन्त "निश्चर हीन करौं महि भुज उठाय पण कीन्ह।" यही उत्साह का परमोज्ज्वल उदाहरण था, जो आपने निशाचरों से विना किसी बैर हुए भी दिखलाया। समय पर आपने यह उद्दंड प्रण सत्य करके दिखला दिया। इनकी इच्छा लोहे के समान पुष्ट थी, जो एक बार जाग्रत होने से फिर दब नहीं सकती थी। इच्छा और कर्म में कारण कार्य्य का सम्बन्ध है, सो कारण शिथिल होने से कार्य्य का होना कठिन होता है। कहते ही हैं कि विना दृढ़ेच्छा के सदसद्विवेकिनी बुद्धि की आज्ञा अरण्य-रोदन हो जाती है। शुभ कार्य्यारंभ के विषय में कहा है कि विघ्नभय से

अधम पुरुष कोई कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते और मध्यम श्रेणी के लोग आरम्भ करके भी विघ्न पड़ने पर उसे छोड़ बैठते हैं, किन्तु उत्तम प्रकृतिवाले हज़ार विघ्नों को दबा कर एक बार का प्रारम्भ किया-हुआ शुभ कार्य्य पूरा करके ही छोड़ते हैं।

सत्यनिष्ठा भी शौर्य्य के लिए एक आवश्यक गुण है। वीर पुरुष लोभ को सदैव रोकेगा, ईमानदारी का आदर करेगा, असत्य भाषण से बचेगा, और अपना वास्तविक रूप छोड़कर कोई भी कल्पित भाव अथवा गुण प्रकट करने की स्वप्न में भी चेष्टा नहीं करेगा। संसार में साधारण पुरुष लोकमान्यता के लालच में सिद्धान्तों को भंग करते हुए बहुधा देखे गये हैं। सिद्धान्तप्रिय पुरुष माने जाने की इच्छा लोगों की ऐसी बलवती देखी गई है कि लोगों द्वारा सिद्धान्ती माने जाने ही के लिये वे सबसे बड़े सिद्धान्तों को हँसते हुए चकनाचूर कर देवेंगे। जो लोकमान्यता के लोभ से सिद्धान्त भंग करने को तैयार नहीं है वह पुरुष सच्चा वीर कहलाने के योग्य है। इस विषय का परमोत्कृष्ट उदाहरण हमारे उपनिषदों में सत्यकाम जबाला का मिलता है। जिस काल यह पुरुषरत्न अपने गुरु के पास विद्याध्ययनार्थ उपस्थित हुआ तो उन्होंने इसके माता पिता का नाम पूछा। सत्यकाम ने माता का नाम तो जबाला बतला दिया किन्तु पिता विषयक प्रश्न का यही सीधा उत्तर दिया कि मेरा पिता अज्ञात है क्योंकि एक बार मेरे पूछने पर मेरी माता ने कहा था कि, जिस काल तेरा गर्भाधान हुआ था उस मास मेरे पास कई पुरुष आये थे सो मैं नहीं कह सकती कि तू उनमें से किसका पुत्र है। इस उत्तर को सुन कर सत्यकाम का गुरु अवाक रह गया, किन्तु भावी शिष्य की सत्यप्रियता से परम संतुष्ट होकर

उसने आज्ञा दी कि तू ही सत्यप्रियता के कारण अध्यात्म विद्या का सर्वोत्कृष्ट अधिकारी है। इतना कह कर गुरु ने उसे शिष्य किया और सत्यकाम का जावाली नाम रख उसे अपने सब शिष्यों से श्रेष्ठतर माना। समय पर यही सत्य-वादी पुरुष ब्रह्मविद्या का सर्वोत्कृष्ट पंडित हुआ। इस पुरुषरत्न का घर सत्य का अवतार था, इसका मन निर्मल था, और इसका वर्त्ताव उच्च था इन्हीं बातों से एक जारज पुरुष होकर भी यह ब्रह्मविद्या का सबसे ऊँचा अधिकारी हुआ। इसीलिये कहा गया है कि मन, वर्त्ताव और गृह मिल कर मनुष्य का चरित्र बनाते हैं।

वीरत्व का सर्वश्रेष्ठ समय बाल वय है। जितना उत्साह मनुष्य में इस अमूल्य काल में होता है उतना और किसी समय नहीं होता। श्लाघ्य चरित्रवान् मनुष्यों को एक बालक जितना बड़ा मान सकता है उतना कोई दूसरा कभी न मानेगा। बालवय में मन सफेद कागज़ की भाँति होता है। इस पर सुगमतापूर्वक चाहे जो लिख सकते हैं। उदार चरित्रवालों में वीरपूजन की मात्रा अधिकता से होती है और ऐसा प्रति पुरुष किसी न किसी को श्लाघ्य एवं महावीर अवश्य मानता है। केवल महानीचों को ही संसार में कोई भी श्लाघ्य नहीं समझ पड़ता। जिसमें श्लाघ्य चरित्रपूजन की कामना बलवती होती है उसमें वीरता कम से कम बीज रूप से तो रहती ही है। स्यात् इन्हीं विचारों से हमारे यहाँ वीरपूजन की रीति चलाई गई हो। बिना दूसरों के गुण ग्रहण किए लोग प्रायः उदारचेता नहीं होते। इसीलिए वीरों मे कामलता और उदारता प्रायः साथ ही साथ पाई जाती है। प्रसन्नचित्तता भी इन्हीं बातों का एक अंग है। कहा गया है कि बुराई रोकने का पहला उपाय मानसिक

प्रसन्नता है, दूसरा उपाय भी मानसिक प्रसन्नता है और तीसरा उपाय भी मानसिक प्रसन्नता ही है। विना इसके बुराई रुक ही नहीं सकती। मानसिक प्रसन्नता का प्रादुर्भाव प्रेमभाव से होता है। जिस व्यक्ति से हम प्रेम करेंगे, वह लौट कर हम से भी प्रेम करेगा। इसलिये जो संसार-प्रेमी होता है उससे सारा संसार प्रेम करता है, जिससे वह सदैव प्रसन्न रहता है। ऐसी दशा में वह बुराई किसके साथ करेगा? प्रायः देखा गया है कि अपने साथ किसी की खोटाई का मूल कल्पना मात्र होती है। हम स्वयं असभ्यता कर बैठते हैं और जब दूसरा उसके प्रतिफल में हमारे साथ असभ्यता करता है तब हम आत्म-प्रेम से अंध होकर समझ बैठते हैं कि वह निष्कारण हमारे साथ खोटाई करता है। इसलिये संभावित पुरुष को बुराई से सदैव बचना उचित है और क्षमा से अवश्य काम लेना चाहिए, क्योंकि बेजान हुए भी हमारे द्वारा क्षमा-पात्र का अपकार हो जाना सम्भव है। खोटाई और निष्फलता का पहले ही से भय कभी न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कोई इनको नहीं जीत सकता। इनके जीतने का सबसे सुगम उपाय आशा ही है। इसलिये कहा गया है कि आशा न छोड़ने वाला स्वभाव भी बहुत ही मूल्यवान है।

स्वार्थ त्याग वीरता का सबसे बड़ा भूषण है। दास भाव ग्रहण करके यदि कोई विवाह-बंधन में पड़े तो उसके इस कर्तव्य में कुछ न कुछ क्षति अवश्य पहुँचेगी। वीरवर हनुमान ने जब भगवान् का दासत्व ग्रहण किया तब आत्म-त्याग का ऐसा अटल उदाहरण दिखलाया कि जीवन पर्यन्त कभी विवाह ही न किया। इधर भगवान् ने जिस काल यह देखा कि इनकी प्रजा इनके द्वारा सीता-ग्रहण के कारण इन्हें

उच्चातिउच्च आदर्श से गिरा हुआ समझती है, तब इन्होंने प्राणोपम अर्द्धांगिनी सती सीता तक का त्याग करके अपने प्रजारञ्जनवाले ऊँचे कर्तव्य को हाथ से नहीं जाने दिया। बालवय में भी अपने पिता की बेमन की आज्ञा मानने तक से इन्होंने तिल मात्र संकोच नहीं किया। आपने यावज्जीवन स्वार्थत्याग और कर्तव्य-पालन का ऊँचा आदर्श दिखलाया, मानो ये सदेह कर्तव्य होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे।

कार्य्य-साफल्य साधारण दृष्टि से तो वीरता का पोषक है, किन्तु दार्शनिक दृष्टि से इसका शौर्य्य से कोई भी संबन्ध नहीं है। दार्शनिक शुद्धता प्रति वास्तविक वीर कर्म में आ जाती है चाहे वह तिल मात्र भी सफल न हुआ हो और साधारण से साधारण पुरुष द्वारा सम्पादित हुआ हो। एक साधारण सैनिक जो अपने सेनापति की आज्ञा से मोर्चे पर शरीर त्याग देता है, दार्शनिक दृष्टि से बड़े से बड़े विजयी के बराबर है। वीरता के मूल मात्र कर्तव्य-पालन और स्वार्थ-त्याग है। बिना इनके कोई मनुष्य वास्तविक वीर नहीं हो सकता। एक बार दो रेलों के लड़ जाने से एक इंजिन हाँकनेवाला अपने इंजिन में दबकर बायलर में चिपक रहा। वह मृतकप्राय था किन्तु उसके होश हवास नहीं गए थे। इसलिये वह जानता था कि बायलर जल्द फट कर उड़ेगा, सो जब और लोग उसे छुड़ाने के लिये प्रयत्न करने लगे तब उसने उन सबको वहाँ से यह कह कर खदेड़ दिया कि मैं तो मरा ही हूँ, तुम सब यहाँ प्राण देने क्यों आए हो, क्योंकि भाप के बल से बायलर अभी फटना चाहता है, जिससे सबके प्राण जायँगे। मरणावस्था में भी दूसरों के लिये इतना ध्यान रखना वीरता का बड़ा लक्षण है।

वीरत्व के लिए भय का देखना तक ठीक नहीं कहा गया

है। इसीलिये हमारे यहाँ वीर को शूर कहते हैं कि अंधे की भाँति वह भय को देख ही न सके। बालक, स्त्री, दीन, दुखिया आदि के उद्धार में वीर पुरुप अपना जीवन तृण के समान दे देवेगा। सच्चा वीर निर्बल, भीत, कातर और स्त्री पर कभी किसी प्रकार का अत्याचार न करेगा। संसार में जिसकी पदवी जितनी ही ऊँची है, उसे उतनी ही अधिक वीरता दिखलानी चाहिए, क्योंकि उसकी वीरता से संसार का बहुत अधिक लाभ हो सकता है। इन्हीं कारणों से राजा को सबसे अधिक वीर होना चाहिये। कहा भी है कि "वीरभोग्या वसुन्धरा।" फिर भी छोटे से छोटे पुरुप को भी उच्च सिद्धान्तों से तिलमात्र नहीं हटना चाहिये, क्योंकि थोड़ी-सी बुराई भी ससार में अपना फल दिखलाए विना नहीं रहती। इसी से कहा गया है कि अनुभवी पुरुष को थोड़े से अवगुण की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, नहीं तो थोड़ा-सा अवगुण उसमें अवश्य आ जायगा।

मिश्र बन्धु

अपने जीवन के भविष्य के सम्बन्ध में दो विद्यार्थियों का संवाद

उ० प्र०—१९४८

दिनेश—मित्र राजीव ! आज तुमसे खूब भेंट हुई। सबसे प्रथम तो मैं तुम्हे अपनी परीक्षा में योग्यता के साथ उत्तीर्ण होने के लिये बधाई देता हूँ। कालेज अब खुलने वाले हैं, और मैं तुमसे यह पूछना चाहता था कि तुमने कौन-कौन से विषय लेने का निर्णय किया है ?

राजीव—भाई दिनेश ! मैं तुम्हारी बधाई सहर्ष स्वीकार करता हूँ और तुम्हें धन्यवाद भी देता हूँ। साथ ही तुम भी अपनी परीक्षा में अच्छे अङ्कों के साथ सफलता प्राप्त करने के निमित्त मेरी बधाई के पात्र हो। हाँ, तुमने पूछा है कि, मैं कालेज में क्या विषय लेना चाहता हूँ ? सो मैंने तो जीव-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञान लेने का निर्णय किया है। मुझे इन विषयों में रुचि भी है।

दिनेश—क्यों ? क्या डाक्टरी करना चाहते हो ?

राजीव—हाँ कुछ विचार तो ऐसा ही है। तुम जानते हो कि डाक्टरी के व्यवसाय से मुझे सदैव ही आकर्षण रहा है। फिर ऐसा कार्य कि न किसी की नौकरी और न कोई बन्धन। देखो, क्या होता है ? इस समय तो विचार यही है कि अपनी इन्टरमीडिएट'की परीक्षा पास करके डाक्टरी की ही शिक्षा प्राप्त करूँ और इसी को अपने जीवन-यापन का साधन बनाऊँ।

दिनेश—भाई राजीव ! बुरा मत मानना, परन्तु जो बात मुँह पर आई है, उसे कहे बिना रहा नहीं जाता और फिर एक मित्र के नाते मेरा यह कर्त्तव्य भी है कि तुम्हें इस विषय में कुछ सचेत कर दूँ। संभव है मेरी बात तुम्हें जँच जाय और अपना निर्णय बदल दो। मुझे डाक्टरी का पेशा किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं मालूम होता। आजकल देखो तो, चारों ओर डाक्टर ही डाक्टर दिखलाई देते हैं। अपने पड़ौस में ही चार-पाँच डाक्टर हैं। दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। क्या हुआ जो किसी ने दो चार रुपये कमा लिये और अपना खर्चा निकाल लिया। फिर तुम इन डाक्टरों से बातें करके देखो। ये लोग बातें तो ऐसी करेंगे, मानो ईश्वर ये ही हैं और लोगों के जीवन-मरण का प्रश्न

इन्हीं के हाथ में है। रोगी कैसा भी असाध्य क्यों न हो, डाक्टर यही कहेगा कि तुरन्त ही ठीक हो जायगा, एक बार देख तो लूँ। बस उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों के जाल में रोगी के घर वाला फँस जायगा और डाक्टर साहब रोगी को देखने चल देंगे रोगी को देखकर वे कुछ इधर-उधर की बातें बतलायँगे और दवाइयों का एक लम्बा सा नुस्खा लिख कर तथा अपनी फीस लेकर चलते बनेंगे। रोगी कितना ही गरीब और असहाय क्यों न हो, डाक्टर साहब अपनी पूरी फीस ले लेंगे। फिर रोगी जिये या मरे डाक्टर साहब की बला से। भाई राजीव! मैं तो इन डाक्टरों के व्यवहार से बहुत ही घृणा करने लगा हूँ और इस पेशे को ही बुरा समझने लगा हूँ। अतः यदि तुम डाक्टर बनने का विचार बदल दो, तो अच्छा ही होगा।

राजीव--दिनेश! तुमने जो कुछ कहा है उसमें सार अवश्य है, परन्तु इसी से मैं अपने निर्णय को बदल दूँ, यह मेरी सबसे बड़ी कायरता और दुर्बलता होगी। यह सच है कि आजकल अधिकांश डाक्टर अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते और उनका उद्देश्य केवल पैसा प्राप्त करना होता है, परन्तु इससे डाक्टरी के पेशे को ही बुरा समझ लेना नितान्त भूल होगी। कार्य कोई बुरा नहीं होता, यह तो करने वाले के ऊपर निर्भर है। मैं तो जब वर्त्तमान डाक्टरों की दुर्बलता के विषय में सुनता हूँ और उनकी कर्त्तव्य-हीनता को अनुभव करता हूँ, तो डाक्टर बनने की मेरी इच्छा और भी अधिक बलवती हो जाती है। जब तुम कहते हो कि अधिकांश डाक्टर अयोग्य और स्वार्थी हैं, तो इससे यह भी प्रकट होता है कि कुछ योग्य और कर्त्तव्य-परायण अवश्य हैं। फिर मुझे दुर्बल डाक्टरों के आदर्श पर न चल कर, योग्य

डाक्टरों के आदर्श पर क्यों न चलना चाहिये ? मैं तो समझता हूँ कि आज देश, और समाज को अच्छे डाक्टरों की आवश्यकता है। यदि एक डाक्टर अपने कर्त्तव्य का ध्यान रक्खे, तो उससे समाज की बहुत कुछ सेवा हो सकती है। यह एक ऐसा कार्य है, जिससें अधिक आय होने के साथ ही परोपकार और समाज-सेवा का अवसर मिलता है। यदि आजकल के डाक्टर योग्य नहीं हैं तो इसका उत्तरदायित्व तो उन्हीं के ऊपर है। वे परिश्रम नही करते और न करना ही चाहते हैं। ऐसे डाक्टरों की दशा उन लोगों की भाँति है जो जुए के दाँव के समान बिना प्रयत्न के ही विजय और धन प्राप्त करना चाहते हैं। बिना काम के ही उसमें पारंगत कहलाना चाहते हैं और अध्ययन से दूर रहने पर भी ज्ञानवान कहलाना चाहते हैं और उधार के धन पर ही श्रीमन्त बनना चाहते हैं। जब वे लोग परिश्रम नहीं करेंगे तो किस प्रकार योग्य डाक्टर हो सकते हैं ? मैं तो समझता हूँ कि यदि डाक्टर थोड़ा भी समय प्रतिदिन अपनी पुस्तकों के अध्ययन में दिया करें तो वे काफी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं और अपने कार्य में ईमानदार रह सकते हैं। रोगी से फीस लेना बुरी बात नहीं, अपितु उस फीस के बदले में पूरा काम न करना बुरी बात है। रोगी कितना ही निर्धन क्यों न हो, यदि डाक्टर उसकी फीस का बदला अपने परिश्रम से चुका देगा, तो उसे फीस देना कभी नहीं अखरेगा। अतः किसी भी व्यक्ति को अपने व्यवसाय के प्रति सच्चा रहना चाहिये। किसी भी कार्य की सफलता के लिये यह परम आवश्यक है कि जिस काम को हम हाथ में लें उसी में अपनी सारी शक्ति लगादें। किसी विद्वान ने कहा है कि कोई व्यक्ति यदि किसी भी कला में श्रेष्ठ होना चाहता है तो उसे चाहिये

कि अपने मन की सब शक्तियों को उसी में लगा दे। सोकर उठने से लगाकर रात को बिछौने पर जाने तक केवल उसी का विचार करे।

दिनेश—मित्र राजीव! वास्तव में जो कुछ तुम कह रहे हो, वह सच है। परन्तु क्या डाक्टरी के जीवन में तुम देश सेवा करने का भी अवसर प्राप्त कर सकते हो? मनुष्य के जीवन का मुख्य लक्ष्य केवल पैसा कमा कर—चाहे वह ईमानदारी के साथ ही क्यों न कमाया जाय-अपनी उदर-पूर्त्ति करना ही तो नहीं है। उसके ऊपर समाज और देश का भी तो भार है। जब तुम कुशल डाक्टर बन जाओगे तो तुम्हें अपने रोगियों से ही अवकाश न मिलेगा और तब किस प्रकार देश-सेवा का कार्य कर सकते हो?

राजीव—यह मैं कदापि नहीं कहता कि पैसा कमाना ही जीवन का ध्येय है। अपितु वह तो एक साधन-मात्र है। मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि डाक्टर बन कर एक व्यक्ति समाज की बहुत कुछ सेवा कर सकता है। सच्चे समाज-सेवी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह सब कामों को छोड़कर ही समाज की सेवा का कार्य कर सके। यदि वास्तव में देखा जाय तो जो व्यक्ति अपने घर के काम-काजों को छोड़कर समाज-सेवा का कार्य करते हैं, वे एक प्रकार से समाज का भार हो जाते हैं। जो व्यक्ति अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण नहीं करता, और समाज-सेवा का दम्भ भरता है, वह सच्चे अर्थ में समाज-सेवी नहीं। समाज है क्या? व्यक्तियों के समूह को ही तो समाज कहते हैं। सबसे पहिला कर्त्तव्य, हमारा अपने परिवार की सेवा करना है, परिवार ही हमारा सर्व प्रथम समाज है। परिवार के पश्चात्, हमारा पड़ोस, गाँव, जाति, प्रान्त और देश क्रमशः

हमारी सेवा के क्षेत्रों में आते हैं। हम अपने परिवार में रहते हुए, उसका भरण-पोषण करते हुए, और अपने गार्हस्थ्य जीवन को निभाते हुए ही समाज की सेवा कर सकते हैं। डाक्टर के जीवन में तो समाज-सेवा का अपरिमित क्षेत्र रहता है। जिस रोगी को वह ठीक कर देता है, वही उसे हृदय से आशीर्वाद देता है और उसके प्रति कृतज्ञ हो जाता है। अपने निकट के लोगों के सुखों की वृद्धि करना ही उनकी सबसे बड़ी सेवा है। यदि डाक्टर चाहे तो यह ग़रीबों का इलाज बिना फीस लिये और औषधियों का मूल्य लिये बिना भी कर सकता है और बहुत से डाक्टर ऐसा कर रहे हैं। बतलाओ इससे बढ़कर और समाज-सेवा क्या हो सकती है? रही देश-सेवा की बात, सो समाज-सेवा ही देश-सेवा है। समाज और देश में कोई अन्तर नहीं। राजनीति में काम करने वाले ही देश-सेवी नहीं होते, अपितु वे सभी देश-सेवी हैं जो एक या दूसरे प्रकार से देश के लोगों के सुख की वृद्धि कर रहे हैं। साहित्यकार, वैज्ञानिक, कलाकार, कवि, डाक्टर, अध्यापक, वकील आदि किसी भी कार्य को करने वाले यदि वे अपने काम को सच्चाई और ईमानदारी से कर रहे हैं तो वे बहुत बड़े देश-सेवी हैं। भाई दिनेश! मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि डाक्टर बन कर जितना भला मैं अपने देश का कर सकता हूँ, उतना दूसरे कार्य से नहीं।

दिनेश—मित्र राजीव! वास्तव में तुम्हारे विचार बहुत ही उच्च हैं। मुझे अब पूर्ण विश्वास है कि तुम अवश्य ही एक सफल डाक्टर बन सकोगे और साथ ही अपने देश की बहुत कुछ सेवा कर सकोगे।

राजीव—भाई तुम भी तो अब बतलाओ कि कालेज में तुमने कौन से विषय, किस उद्देश्य से लेने का विचार

किया है ?

दिनेश—मित्र ! अब तक तो मैंने अपने लिये कुछ और ही सोच रक्खा था। मैं तो राजनीति में कार्य करना चाहता था और इसी ध्येय से राजनीति और साहित्य को अपने अध्ययन के विषय बनाना चाहता था। परन्तु तुम्हारी बातों ने मेरी आँखें खोल दी हैं और मैं समझने लगा हूँ कि सच्ची देश-सेवा राजनीति से बाहर रह कर भी हो सकती है। जिन व्यक्तियों की आर्थिक अवस्था इतनी अच्छी न हो कि वे बिना कुछ किये राजनीति में कार्य कर सकें, उन्हें देश-सेवा के नाम पर राजनीति में नहीं पड़ना चाहिये। ऐसा करके तो वे देश के लिये भार-स्वरूप हो जायँगे। अतः अब मैं अवश्य ही अपने इस उद्देश्य को छोड़ दूँगा और अपनी रुचि के अनुकूल किसी न किसी व्यवसाय के अनुरूप ही अपने विषयों का चुनाव करूँगा। निसंदेह, मैं कुछ न कुछ व्यवसाय करके भी देश की सेवा कर सकता हूँ। आज अब समय नहीं है, फिर किसी दिन तुमसे अपने निर्णय के विषय में बातचीत करूँगा।

पत्र छोटे भाई को,

कालेज के विषयों के चुनाव के सम्बन्ध में।

रानी खेत

२५ जून, १६४८

प्रिय सत्यवीर ! शुभाषीष।

मुझे यह जान कर अपार हर्ष हुआ है कि तुम अपनी हाई स्कूल की परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गये हो।

तुम्हारे परिश्रम का फल तुम्हें मिलना ही था, फिर भी तुम बधाई के पात्र हो। आशा है कि परीक्षा-फल देख कर तुम्हारा आगे पढ़ने के लिये उत्साह बढ़ गया होगा।

पिता जी के पत्र से मुझे ज्ञात हुआ है कि अब तुम शीघ्र ही कालेज में दाखिल होने के लिये प्रवेश-पत्र भर कर भेजने वाले हो और वनस्पति-विज्ञान तथा जीव-विज्ञान को अपनी पढ़ाई के मुख्य विषय बनाने के इच्छुक हो और इस विषय में मेरा परामर्श भी चाहते हो। जहाँ तक अध्ययन के विषयों के चुनाव की बात है, मैं किसी विषय अच्छे हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात विचारणीय है। प्रथम तो तुम्हारी रुचि का प्रश्न है क्योंकि किसी भी विषय के अध्ययन में रुचि की प्रधानता रहती है। अच्छे से अच्छा विपय रुचि के अभाव में नीरस और भार रूप बन जाता है। उदाहरणार्थ, गणित बड़ा उत्तम विषय है परन्तु जिन विद्यार्थियों को इसमें रुचि नहीं होती, उनके लिये गणित बड़ा ही कठिन हो जाता है। लाख प्रयत्न और अथक परिश्रम करने पर भी वे इसमें प्रगति नहीं कर पाते। अरुचि पूर्ण विपय में विद्यार्थी खींच खाँच कर उत्तीर्ण भले ही हो जाय, परन्तु उससे विद्यार्थी को लाभ कदापि नहीं हो सकता। तुमने अपने स्कूल में भी देखा होगा कि कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं जो कक्षा में सदैव ही पिछड़े हुए रहते हैं और अध्यापक तथा अन्य विद्यार्थी उन्हें मूर्ख समझते हैं। परन्तु किसी एक दो विषय में उनके नम्बर परीक्षा में सबसे अधिक आते हैं। विचार करने की बात है कि जब ये विद्यार्थी मूर्ख ही थे, तो किसी भी विपय में वे सर्वाधिक अंक क्योंकर प्राप्त कर सके? क्यों दूसरे अच्छे कहलाने वाले विद्यार्थी उनसे उन विषयों में अधिक अंक न लाये। स्पष्ट

है कि जिन विषयों में मूर्ख कहे जाने वाले विद्यार्थी अधिक अँक लाये, उनमें उनकी रुचि थी, और शेष विषय में उनकी रुचि नहीं थी। जिस विषय में रुचि होती है, उसके अध्ययन में आनन्द आता है और सभी मानसिक शक्तियाँ उसमें केन्द्रित हो जाती हैं। उस विषय में विद्यार्थी कितना ही परिश्रम करे, उसे वह भार रूप नहीं लगता। मन की शान्ति के साथ, उत्तरोत्तर उसके ज्ञान में वृद्धि होती चली जाती है।

अत: कालेज के विषयों के चुनाव में सर्व प्रथम तो तुम्हें अपनी रुचि को देखना है। जिन विषयों में तुम्हें अपनी रुचि को देखना है जिन विषयों में तुम्हें रुचि हो, उन्हीं को लेना चाहिये। प्राय: लोग कहते हैं कि अमुक विषय आगे चलकर कुछ भी काम नहीं आता और अमुक बड़े काम का है। ऐसे लोगों की वातों पर तुम ध्यान न देना। आगामी जीवन में नौकरी करने अथवा कोई स्वतंत्र व्यवसाय करने के उद्देश्य-मात्र से ही अपनी रुचि का हनन करके, व्यवसाय के अनुरूप ही विषय लेना, बड़ी भूल की बात है। इससे एक भी साधन सिद्ध नहीं होता। एक विद्यार्थी देखता है कि उसका पड़ौसी डाक्टर बड़ा ही प्रसिद्ध हो गया है, रोगियों की दिन रात उसके पास भीड़ लगी रहती है और उसके ऊपर धन की वर्षा सी होती है। इसी प्रलोभन से मानलो कि वह कालेज में जीव-विज्ञान का विषय ले लेता है परन्तु उसमें रुचि उसकी विल्कुल नहीं है। होता यह है कि वह विद्यार्थी दिन रात परिश्रम करने पर भी अपने विषय में प्रगति नहीं कर पाता और परीक्षा में उसे असफल होना पड़ता है। उसकी रुचि पढ़ाई से भी हट जाती है और वह अन्त में निराश होकर शिक्षा से हाथ

धो बैठता है। 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' वाली कहावत ऐसे विद्यार्थियों पर ही चरितार्थ होती है। अतः जिस विषय में तुम्हारी पूर्ण रुचि हो, उसी को तुम्हें चुनना चाहिये।

यदि तुम अपनी रुचि के अनुकूल विषय चुनोगे तो निश्चय ही उसमें तुम अपने अनुभव और वृत्ति को सबसे अधिक मात्रा में केन्द्रीभूत कर सकोगे। ऐसा करने से तुम्हें अध्ययन में केवल आनन्द ही नहीं आयेगा वलिक उसमें तुम अपनी सबसे अधिक योग्यता और बुद्धि लगा सकोगे।

किसी विद्वान ने कहा है कि, "अपनी रुचि की ही ओर बढ़ो। अपनी महत्वकांक्षाओं के विरुद्ध तुम अधिक समय तक युद्ध नहीं कर सकते। माता, पिता, मित्रगण, दुर्भाग्य से भले ही तुम्हारे हृदय की लालसा को रुचि के विरुद्ध कार्य करने अथवा दवाने की कोशिश करें, पर ज्वालामुखी के समान अन्दर की आग एक दिन भड़क ही उठेगी। वह अपने वांछित कार्य में चमक उठेगी। जिस काम में तुम्हारी रुचि नहीं है, उसे तुम पूर्णता से नहीं कर सकते। प्रकृति अधूरे और भद्दे कामों को देखकर शाप देती है और उसका फल करने वाले को सदैव भोगना पड़ता है।"

ऊपर जो कुछ मैं लिख चुका हूँ, उसे पढ़ कर अब तुम अपने विषय का चुनाव स्वयं ही कर सकते हो। यदि जीव-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञान के विषयों का चुनाव तुमने केवल अपनी रुचि के आधार पर किया है, तो ये ही विषय तुम्हारे लिये सर्वोत्तम होंगे और तुम्हें किसी से भी इस सम्बन्ध में परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि किसी अन्य के कहने से, अथवा इस प्रलोभन से कि इन विषयों के लेने से तुम्हें अच्छी नौकरी मिल जायगी, या

डाक्टर बनाने के लिये ये ही विषय आवश्यक हैं, तुमने इन विषयों को अपने कालेज के अध्ययन के लिये चुना है, परन्तु तुम्हारी रुचि इनमें नहीं है, तो मैं तुमसे जोर देकर यही कहूँगा कि कदापि इन विषयों को न लो। शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षित होना और ज्ञान प्राप्त करना है, न कि नौकरी करना अथवा व्यवसाय करना। ये तो बाद की चीजें हैं। इस समय तो तुम अपनी रुचि के अनुकूल विषय लेकर ही अध्ययन शुरू कर दो। तुम्हारी रुचि के विषय, आगे चल कर स्वयं ही तुम्हारे लिये उपयुक्त व्यवसाय चुन देंगे। तुम्हें उसके लिये भी किसी से न पूछना पड़ेगा।

आशा है कि मेरे इतना लिखने पर अब तुम विषयों के चुनाव में अपने भीतर होने वाले मानसिक संघर्ष से मुक्ति पा जाओगे और शीघ्र ही निर्णय कर लोगे।

तुम्हारे कालेज के जीवन के विषय में, फिर कभी लिखूँगा।

तुम्हारा शुभ-चिन्तक
कर्मवीर

छोटे भाई को पत्र

कालेज-जीवन के सम्बन्ध में

रानी खेत
१० अगस्त १६४८

प्रिय सतयवीर! आशीर्वाद

मैंने अपने एक पिछले पत्र में तुम्हारे अध्ययन के विषयों के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें लिखी थीं। मुझे

विश्वास है कि तुमने अपनी रुचि के अनुकूल विषय ले लिये होंगे। इस पत्र में, मैं अब तुम्हें कुछ कालेज-जीवन के सम्बन्ध में लिखना चाहता हूँ क्योंकि तुम्हें कम से कम चार वर्ष कालेज में ही व्यतीत करने हैं। मुझे इस जीवन का व्यक्तिगत अनुभव है और यदि मेरे अनुभव से तुम्हें कुछ लाभ हो सके तो मुझे हर्ष होगा।

अब तक तुम स्कूल के संकुचित वातावरण में पढ़ते रहे हो और वहीं छात्रालय के विद्यार्थियों के साथ रहते आये हो। कालेज में आकर तुम दूसरे प्रकार का ही वातावरण पाओगे। यहाँ तुम्हें न तो अपने स्कूल के मास्टर साहब की भाँति के अध्यापक मिलेंगे और न स्कूल एवं छात्रालय जैसे बन्धन। कालेज में तुम्हें बहुत सी बातों की स्वतन्त्रता होगी। कालेज के नियम भंग करने पर तुम्हें मास्टर साहब से पिटने का भय भी नहीं होगा। कालेज में विद्यार्थियों को पूरी स्वतन्त्रता दी जाती है। तुम्हारी भलाई और पथ-प्रदर्शन के लिये तुम्हारे प्रोफेसर केवल तम्हें सचेत करते रहेंगे। उनकी बातों का अनुसरण करना न करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर होगा। तुम अपनी पुस्तकें नित्य प्रति कालेज ले जाओ या न ले जाओ, अपना पाठ प्रतिदिन याद करो या न करो, प्रोफेसर साहब के भाषण को कक्षा में सुनो या न सुनो, खेलों में भाग लो या न लो और छात्रालय में रहकर अपना समय पढ़ाई में लगाओ या न लगाओ, इन सारी बातों से तुम्हारे कालेज के अभिभावकों को विशेष प्रयोजन न होगा। वे तो तुम्हें केवल निर्देश करते रहेंगे और बलात् तुमसे कोई कार्य न करायेंगे।

तुम कहोगे कि इतनी स्वतन्त्रता कालेज में क्यों दी जाती है? इसका कारण है, और वह ठीक ही है। जब तक

विद्यार्थी स्कूल में पढ़ता है, तब तक उसकी अवस्था कम होती है, और इसलिये उसकी बुद्धि परिपक्व नहीं हो पाती है। यदि स्कूल के अभिभावक नियमों के पालन के सम्बन्ध में कठोरता से कार्य न लें तो विद्यार्थी स्वतः ही किसी नियम का पालन न करेंगे और न वे पढ़ ही सकेंगे। बच्चे प्रायः भय से काम करते हैं। यदि उन्हें किसी का भय न हो, तो न मालूम वे क्या-क्या ऊटपटाँग काम करते रहें। अतः स्कूल में विद्यार्थियों के ऊपर भय का अंकुश रखना एक प्रकार से आवश्यक होता है। जब विद्यार्थी कालेज में प्रवेश करता है तो वह कुछ वयस्क हो जाता है, उसकी बुद्धि परिपक्व हो जाती है। इस अवस्था में वह अपनी भलाई बुराई स्वयं समझने लगता है। वयस्क अवस्था में विद्यार्थियों के साथ भय से काम लेने और उन पर अंकुश रखने से लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना रहती है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी कहा गया है कि जब पुत्र १८ वर्ष की अवस्था प्राप्त करले, तो पिता को उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये। इस कथन में बड़ी सचाई है। इसी बात का ध्यान करके कालेज के विद्यार्थियों को बहुत कुछ स्वतन्त्रता दे दी जाती है।

कालेज में विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता उन्हीं के हित के लिये दी जाती है परन्तु कुछ विद्यार्थी अपनी नासमझी से उसका दुरुपयोग करते हैं। जब वे देखते हैं कि हमारे ऊपर से सभी बन्धन उठ गये हैं तो वे न तो अपनी शिक्षा की ओर ही ध्यान देते हैं और न अपने चरित्र को ही सुधारते हैं। वे यह सर्वथा भूल जाते हैं कि उनका यह समय कितना मूल्यवान है और यदि उन्होंने इस समय से कुछ लाभ नहीं उठाया तो जीवन-पर्यन्त उन्हें पश्चाताप करना पड़ेगा।

तुमने अपनी पाठ्य-पुस्तकों में भी पढ़ा होगा कि विद्यार्थी-

जीवन कितना सुखप्रद होता है और इसी जीवन पर भावी जीवन निर्भर करता है। प्रायः विद्यार्थी यह समझते हैं कि पढ़ने लिखने का काम बड़ा झंझटपूर्ण है और इससे वे मुक्ति भी चाहते हैं। उनकी यह धारणा नितान्त भ्रामक है। विद्यार्थी जीवन ही वह साँचा है जिसमें नागरिक ढलते हैं। यही वह जीवन है जिसमें मानसिक तथा आत्मिक उत्थान का श्री गणेश होता है। यह वह आधार-शिला है जिस पर समूचे भावी-जीवन का भवन खड़ा होता है। इस समय में यदि विद्यार्थी ज्ञानोपार्जन के साथ अपना चारित्रिक-विकास कर लेता है तो उसका भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल हो जाता है। जीवन में वह कभी असफल नहीं होता। जो विद्यार्थी इस जीवन के अमूल्य समय को नष्ट कर देते हैं, वे अपने भावी-जीवन को कंटकाकीर्ण बना लेते हैं, अपने हाथों ही से वे अपने पैर में कुल्हाड़ी मार बैठते हैं। मैं तुम्हें, अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह बतला देना चाहता हूँ कि अपने कालेज के जीवन के थोड़े से समय को तुम अपने समूचे जीवन के सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम क्षण समझना। यही वह समय है जब कि तुम सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त कर सकते हो और अपना भविष्य सुन्दर बना सकते हो। तुम्हें कालेज में जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, उसका उद्देश्य तुम्हारे मानसिक, आत्मिक और शारीरिक विकास के लिये ही है। इस स्वतन्त्रता से तुम्हें अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये।

स्वतंत्रता का उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि मनुष्य उच्छृंखल हो जाय और किसी भी नियम को न माने। किसी विद्वान ने कहा है "Freedom lies in obedience to higher principles." अर्थात् उच्च सिद्धान्तों के पालन में

ही स्वतंत्रता है। कालेज के विद्यार्थी अपनी स्वतंत्रता का अत्यधिक दुरुपयोग करते हैं। वे अनुशासन-हीन हो जाते हैं। नम्रता, विनय, शिष्टाचार एवं आज्ञा-पालन आदि जैसे सुन्दर भाव उनके लिये हास्यास्पद बन जाते हैं। अपने प्रौफेसरों की खिल्ली उड़ाना, उनकी किसी बात को न मानना और कालेज के नियमों का उल्लंघन करना बहुत से विद्यार्थी अपने लिये गौरव की बात समझते हैं। आजकल, कालेज के विद्यार्थियों में अनुशासन-हीनता बहुत ही बढ़ती जा रही है। जरा सी बात पर वे हड़ताल कर देते हैं, सिनेमा में जाकर उपद्रव मचा देते हैं और दूकानदारों से लड़ पड़ते हैं। यह बहुत ही बुरी बात है। ऐसे विद्यार्थी यह नहीं समझते कि जिन बुरी आदतों को वे इस समय में अपना रहे हैं, वे जीवन भर उन्हें दुख देंगीं। किशोरावस्था में जैसा स्वभाव और चरित्र बन जाता है, वह फिर आगे जीवन में किसी प्रकार बदल नहीं पाता। अतः विद्यार्थी जीवन में बहुत ही अधिक फूँक फूँक कर पग रखने की आवश्यकता है। यही समय है जब कि विद्यार्थी अपनी मानसिक और चारित्रिक उन्नति का मार्ग निर्धारित कर सकता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि तुम्हें अपने कालेज में प्राप्त हुई स्वतंत्रता का दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिये और आजकल सामान्यतः जैसी प्रवृत्ति विद्यार्थियों में घर कर लेती है, उससे सर्वथा अपने को मुक्त रखने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस पत्र में, मैं एक और बात तुम्हें लिखूँगा जिस पर तुम्हें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आजकल कालेज के विद्यार्थी, विभिन्न राजनैतिक दलों में फँस जाते हैं और उसमें सक्रिय भाग लेने लगते हैं। राजनीति, विद्यार्थियों

का विषय नहीं है। यह समय तो केवल उनके अध्ययन और आत्म-सुधार का है। राजनीति में कार्य करने के के लिये तो सारा जीवन पड़ा हुआ है और किसी भी समय में मनुष्य, राजनैतिक कार्यों में पड़ सकता है। परन्तु विद्या प्राप्त करने के लिये जीवन में फिर दूसरा समय नहीं आयेगा। कालेज-जीवन का थोड़ा सा समय ही अध्ययन के लिये सर्वोत्तम समय है। इस समय तुम्हारे ऊपर घर का कोई भार नहीं हैं, तुम्हें सांसारिक किसी बात की चिन्ता नहीं है और सभी प्रकार के बन्धनों से तुम सर्वथा मुक्त हो। ऐसे ही समय में तुम अपनी मानसिक शक्तियों को विद्योपार्जन में लगा सकते हो। यह समय निकल जाने पर फिर लाख प्रयत्न करने पर भी तुम ज्ञान प्राप्त करने के लिये समुचित साधन नहीं पा सकोगे। अतः मैं तुम्हें इस विषय में सबसे अधिक सचेत होने का परामर्श दूँगा। तुम्हें चाहिये कि अपने कालेज-जीवन के चार छः वर्षों में अपने ध्यान को सभी अन्य विषयों से विमुख करके, केवल ज्ञान और अपने चरित्र के विकास करने में लगाओ। इसी में तुम्हारा भावी सुख और हित निहित है। शेष सब प्रकार से कुशल है।

तुम्हारा सस्नेह
कर्मवीर

पत्र माता को,

छात्रावास में रहने के लाभों पर

गवर्नमैन्ट बोर्डिङ्ग हाउस,
शाहगंज आगरा
१ अगस्त १९३४ ई०

पूज्य माताजी, चरण-स्पर्श ।

जब मैं स्कूल में दाखिल होने के लिये घर से चला था, तो यह जान कर कि अब मैं घर से बाहर रह कर ही विद्याध्ययन करूँगा और महीने में केवल एक दो बार ही घर आया करूँगा, आपको बड़ी व्यग्रता और दुख हुआ था। मुझे शहर में आकर पढ़ने और यहाँ के सरकारी स्कूल को देखने की उत्सुकता तो अवश्य थी, परन्तु चलते समय आपको और घर को छोड़ने में मेरे हृदय की विचित्र ही अवस्था होगई थी। पिताजी के भय और परिस्थितियों की गंभीरता के कारण, मैं मुँह से कुछ नहीं कह सका था परन्तु मेरे नेत्रों में आया हुआ अश्रु-बारि जिसे मैं पिताजी की उपस्थिति के कारण बार-बार सुखा डालने का प्रयत्न कर रहा था, मेरे अन्तस्तल में होने वाली उथल-पथल को प्रकट कर रहा था। चूँकि मुझे आना ही था, इसलिये यहाँ चला आया। स्कूल में, मैं प्रवेश हो गया हूँ और यहाँ के छात्रालय में मुझे स्थान मिल गया है, यह जान कर आपको हर्ष होगा। आप यह जानने के लिये उत्सुक होंगी कि यहाँ मैं किस प्रकार रह रहा हूँ। इस पत्र में, मैं यही सब कुछ लिखूँगा।

यहाँ के छात्रालय में मुझे जो कमरा मिला है उस में मेरा एक सहपाठी और है। वह भी दूर के एक गाँव का है। हमारा कमरा काफी बड़ा है और उसमें हमारे पढ़ने के

लिये मेज, कुर्सी तथा सोने के लिये चार पाई हैं। कमरा काफी अच्छा और हवादार है। छात्रालय में लगभग चालीस की संख्या के विद्यार्थी आगये हैं।

जिस समय, पिताजी मुझे यहाँ छोड़ कर गये थे, तो प्रयत्न करने पर भी मैं, अपने आँसुओं को नहीं रोक सका था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो, मैं दुनिया में, अकेला छोड़ दिया गया हूँ और मेरा कोई साथी मेरे पास नहीं है। छात्रालय के अन्य छात्र, सब अपने-अपने कामों में लगे हुए थे। कोई अपने कमरे की सफाई कर रहा था, कोई पुस्तकों को संभाल रहा था और कोई अपने मित्रों से बात चीत कर रहा था। पिताजी की उपस्थिति के कारण जिसका ज्ञान मुझे बाद में हुआ कोई भी छात्र मेरे निकट नहीं आया था, अपितु सभी, मेरी ग्रामीण वेष-भूषा को देख कर दूर से ही मुस्कराकर चले जाते थे। पिताजी के चले आने पर, ऐसे विरोधी बातावरण में रहने और पढ़ने की कल्पना मैं, किसी भी प्रकार नहीं कर सकता था। पिताजी ने मेरे मन की अवस्था अनुभव करके मुझे बहुत कुछ समझाया और अन्त में मुझे उनकी बात माननी ही पड़ी, यद्यपि मैं उनके साथ घर लौट आने को तैयार होगया था।

पिताजी के चले आने के दो तीन दिन बाद तक मेरी उदासीनता दूर नहीं हुई थी। मुझे हर समय घर की और आपकी याद आती थी। स्कूल जाता था, परन्तु वहाँ किसी प्रकार चित्त नहीं लगता था। अन्य विद्यार्थियों को आपस में खूब हँसते हुए और उछल-कूद करते देख कर मैंने समझ लिया था कि यहाँ का वातावरण मुझ जैसे आदमी के योग्य नहीं, और मैं सर्वथा इन लोगों से भिन्न हूँ। तीन चार दिन तक मेरी यही अवस्था रही। मेरी इस हालत पर

कुछ छात्रों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने मेरे साथ कुछ सहानुभूति दिखलाई। मुझ जैसे ही कुछ नये छात्र, मेरे प्रति अधिक आकृष्ट होगये और इस प्रकार हमारा सम्बन्ध अधिक बढ़ता गया। धीरे-धीरे आठ दस दिन में ही मेरी पूर्ववत् अवस्था और मनः स्थिति पूर्णतः बदल गई और फिर मैं भी अपने को अन्य विद्यार्थियों की ही भाँति समझने लगा। मैं अनुभव करने लगा कि एक बहुत बड़े जीवन-संघर्ष से छुट्टी पा गया हूँ। मेरे मूक अधरों पर हास्य-रेखा थिरकने लगी।

माताजी! छात्रालय में आकर मुझे जीवन का एक विचित्र ही अनुभव हुआ है। कुछ ही समय में, मेरी दुनिया कितनी बदल गई है मैंने परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लिया है, अथवा परिस्थितियों ने मुझे अपने अनुकूल बना लिया है, इसे मैं नहीं जानता। परन्तु जो कुछ हुआ है, वह बड़ा ही मनोरंजक और विचित्र है। इस परिवर्त्तन से मैं बड़ा ही प्रसन्न हूँ।

छात्रालय की सभी बातें मुझे अच्छी लगने लगी हैं और मैं सोचने लगा हूँ कि जो विद्यार्थी घर पर रहते हैं वे कितनी भूल करते हैं। छात्रालय में रहकर जितनी पढ़ाई हो सकती है, उतनी घर पर कदापि नहीं। घर पर रहने वाले छात्रों को कभी बाजार से शाक-सब्जी लेने दौड़ना पड़ता है और कभी घर पर आये हुए अतिथियों की सेवा-सुश्रूषा करनी पड़ती है। आये दिन ही कोई न कोई बखेड़ा उठ खड़ा होता है। कभी कहीं शादी में जाना है, तो कभी किसी के मुंडन अथवा यज्ञोपवीत में सम्मिलित होना पड़ता है। पढ़ते समय, पास में ही कोई बोल रहा है, कोई रो रहा है और कोई लड़ाई झगड़ा कर रहा है। ऐसी बातों से पढ़ने से

चित्त एकाग्र हो ही नहीं पाता। घर पर रहने वाले विद्यार्थी अपने किसी कार्य में नियमित नहीं हो सकते वे समय पर कोई काम नहीं कर सकते। इस अनियमित और अव्यवस्थित जीवन-प्रणाली के कारण अध्ययन में बड़ी बाधा पहुँचती है और इसका परिणाम विद्यार्थियों को परीक्षा काल में भुगतना पड़ता है। उन्हें अपनी वर्ष भर की पढ़ाई फिर थोड़े से ही समय में पूरी करनी पड़ती है। अत्यधिक परिश्रम करने के कारण वे परीक्षा में उत्तीर्ण भले ही हो जायँ परन्तु उनका ज्ञान अधूरा ही रहता है। ऐसे विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है और परीक्षा के दिनों में उनके मुँह पीले पड़ जाते हैं। मेरी तो यह धारणा है कि घर पर रहने वाले बहुत कम विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकते होंगे।

छात्रालय में रहने वाले विद्यार्थियों को इन सारी बातों से मुक्ति मिल जाती है। उन्हें अपने पढ़ने लिखने के काम में किसी प्रकार की बाधा अनुभव नहीं होती। छात्रालय में सभी कार्य समय पर होते हैं। भोजन के समय भोजन खेलने के समय खेल और पढ़ने के समय पढ़ना पड़ता है। प्रातःकाल सभी छात्रों को नियत समय पर उठना पड़ता है और शौचादि से निवृत्त होकर सात बजे एक बड़े कमरे में पढ़ने के लिये उपस्थित होना पड़ता है। यहाँ सभी छात्र डेढ़ घन्टे तक चुप चाप बैठ कर पढ़ते रहते हैं। हमारे छात्रालय के अध्यक्ष जो स्कूल में अध्यापक भी हैं छात्रालय में आकर सभी कार्यों को देखते रहते हैं और नियम उल्लंघन करने वाले विद्यार्थियों को दण्ड देते हैं। उनके भय के कारण सभी विद्यार्थी नियमानुसार कार्य करते हैं। साढ़े आठ बजे घन्टी होने पर छात्र पढ़ाई समाप्त करके स्नानादि से निवृत्त

होकर भोजन करने चौके में जाते हैं। मुझे यहाँ खूब अच्छा भोजन मिल जाता है। पौने दस बजे सब छात्र तैयार होकर स्कूल चले जाते हैं। शाम को स्कूल से आकर सभी को खेलने के लिये बाहर मैदान में जाना पड़ता है और वहाँ डेढ़ घन्टे तक खूब भाग दौड़ होती है। अच्छा व्यायाम हो जाने से रात्रि के खाने में बड़ा ही स्वाद आता है और चित्त बड़ा प्रफुल्ल बना रहता है। रात्रि को फिर सबको आठ बजे से साढ़े नौ बजे तक सम्मिलित कमरे में बैठ कर पढ़ना पढ़ता है। दस बजे के पश्चात् सब सो जाते हैं।

इस प्रकार यहाँ छात्रालय का जीवन नियमित है। हमारे सब कार्य नियमानुसार समय पर होते हैं। छात्रालय में रहकर अध्ययन तो खूब हो ही जाता है, साथ ही स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। खेल-कूद और व्यायाम करने के यहाँ बहुत से साधन हैं। हाकी फुटबाल, क्रिकेट बोलीबाल आदि अनेकों खेल हम अपनी अपनी रुचि के अनुसार खेलते हैं। इन खेलों से मनोरंजन भी हो जाता है। मनोरजन के लिये जब कभी हम बाजार या सिनेमा जाना चाहे तो उसके लिये छात्रालय के वार्डन साहब की अनुमति लेनी पड़ती है परन्तु यह अनुमति सप्ताह में केवल एक बार ही मिल सकती है।

छात्रालय में रहने से एक बड़ा भारी लाभ यह है कि छात्रों को अपने काम अपने हाथ से करने पड़ते हैं। पुस्तकों को संभाल कर रखने, अपनी चारपाई ठीक करने कमरे की सफाई, वस्त्रों की सफाई आदि सभी काम छात्रों को ही करने पड़ते हैं। अपनी वस्तुओं की देख भाल और व्यवस्थित रूप से उन्हें सजाकर रखने का उत्तरदायित्व भी छात्रों का है।

इससे उनके अन्दर स्वावलंबन और आत्म सहाय के

बहुमूल्य भावों की वृद्धि होती है। अपनी वस्तुओं के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है जिससे उनका मूल्य बढ़ जाता है। घर पर कोई बात हुई तो झट उसका बोझ माता पिता पर डाल दिया जाता है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ माता पिता ही जुटाते रहते हैं, परन्तु छात्रालय में इन सारी बातों का भार विद्यार्थी पर पड़ता है और इस प्रकार वह अपनी सहायता आप करना सीखता है। माता-पिता के लाड़ प्यार से अलग रह कर विद्यार्थी छात्रालय में अपने ही ऊपर भरोसा करके रहते हैं। किसी अनुचित कार्य को करते समय छात्रालय का विद्यार्थी भयभीत होता है क्योंकि वह समझता है कि यहाँ जो कुछ वह करेगा उसका परिणाम उसे ही भोगना पड़ेगा, कोई उसका पक्ष लेने नहीं आयेगा। इस भय से छात्रालय के छात्र दूसरे छात्रों के भावों और कार्यों का भी सम्मान करना सीख जाते हैं। जब कोई विद्यार्थी बीमार हो जाता है अथवा उस पर कोई संकट आजाता है तो दूसरे विद्यार्थी उसकी सेवा-सुश्रूषा और सहायता करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि किसी दिन उन्हें भी दूसरे विद्यार्थियों की सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है।

छात्रालय में रहने से दो एक हानि भी हैं। कुछ फेशन पसन्द छात्र यहाँ स्वतंत्रता से व्यर्थ की वस्तुओं पर व्यय करने लगते हैं और खाने पीने की चीजों पर भी वे अनावश्यक रूप से खर्च करते हैं। ऐसे विद्यार्थी अपने माँ-बाप से झूठ मूठ का हिसाब बतलाकर रुपया मँगा लेते हैं। परन्तु इस विषय मे मैं यही कहूँगा कि छात्रालय का इसमें कोई दोष नहीं है। यह दोष तो उनके माता-पिता का है जो अपने लड़कों के व्यय का पूरा पूरा हिसाब नहीं देखते और उन्हें समुचित परामर्श नहीं देते।

माताजी, अब मुझे छात्रालय का जीवन बहुत सुन्दर लगने लगा है। कभी कभी घर आने और आपको देखने की इच्छा तो बहुत अधिक होने लगती है। अब रक्षा बन्धन की छुट्टियों में घर आऊँगा और यहाँ के विषय में अधिक बातें आपको बतला सकूँगा। आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहें मैं खूब अच्छी तरह हूँ।

आपका आज्ञाकारी पुत्र
विनोद कुमार

अन्य प्रकार के पत्र

बधाई-पत्र

(छोटे भाई के जन्म-दिवस (वर्ष गाँठ) पर)

रानीखेत
१५ जून सन् १६४६ ई०

प्रिय सत्यवीर,

शुभाशीष !

आज तुम्हारा जन्म-दिवश है। मेरी प्रबल आकांक्षा थी कि घर पहुँच कर तुम्हारे जन्म-दिवश के उत्सव में, मैं सम्मिलित हो जाता और तुम्हें उपहार देता, परन्तु एक आवश्यक कार्य-वश ऐसा न कर सका। यहाँ से अपनी शुभ-कामनायें और बधाई तुम्हारे लिये भेजता हूँ। मेरी उत्कट अभिलाषा है कि तुम सुख पूर्वक दीर्घ-जीवन प्राप्त करो। एक घड़ी और 'आगे बढ़ो' पुस्तक की एक प्रति उपहार-स्वरूप तुम्हारे लिये पारसल से भेज रहा हूँ। तुम्हारे शुभ और सुख एवं दीर्घजीवन की कामना करता हुआ, सस्नेह।

तुम्हारा हितेच्छु
श्यामवीर

बधाई-पत्र

(छोटी बहिन को, परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर)

नया-वास आगरा
२० जून सन् १९५० ई०

प्रिय संजु,

आशीर्वाद !

आज पिताजी के पत्र से यह जानकर कि तुम अपनी मध्यमा की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गई हो, मुझे अपार हर्ष हुआ है। तुम्हारे परिश्रम को इस प्रकार सफल होते देखकर पूज्य माताजी एवं पिताजी का हृदय तो गद्गद् हो गया होगा। पढ़ने में जो तुम्हारी रुचि है, उसे देखकर तो मैं तुम्हारे सुन्दर भविष्य की कल्पना किये बिना नहीं रह सकता। हृदय के गहरे भावों से मैं अपनी बधाई और शुभ-कामना तुम्हारे लिये भेजता हूँ। ईश्वर करे, तुम्हें अपने सभी उद्देश्यों में इसी प्रकार सफलता मिलती रहे। उपहार स्वरूप एक बढ़िया फाउन्टेनपेन तुम्हारे लिये भेज रहा हूँ। सस्नेह।

तुम्हारा भाई
अनिल

विदाई-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् द्वारिकाप्रसाद उपाध्याय,
हैड-मास्टर, गवर्नमैन्ट हाईस्कूल,
हाथरस।

मान्यवर,

आज हम सब विद्यार्थी, भरे हुए हृदयों से आपको विदा करने के लिये यहाँ एकत्रित हुए हैं। आप अब हमारे बीच न रहेंगे, इसकी कल्पना-मात्र से ही गला भर आता है, और नेत्र छलछला जाते हैं। हम किस प्रकार आपके सम्मुख अपने भावों को व्यक्त करें, यह समझ में ही नहीं आता। आपने क्या तो प्रधान-अध्यापक के रूप में और क्या अपने व्यक्तिगत रूप में, हम सब विद्यार्थियों की जो सेवायें की हैं, उनके वर्णन में हम अपने को पूर्ण असमर्थ पाते हैं। कक्षा में, आपकी उपस्थिति से हमें कुछ समय के लिये प्राचीन गुरुओं का स्मरण हो जाता था। आपके व्यक्तित्व से समूचा वातावरण पवित्र हो उठता था। आपकी विद्वत्ता, वाक्पटुता, समझाने का ढंग आदि सभी कुछ निराला था। पढ़ाते समय, विद्यार्थियों के ध्यान को चहुँ ओर से खींचकर अपनी ओर आकर्षित करने में आप सिद्ध-हस्त थे। एक घन्टे का समय जाते हुए प्रतीत ही नहीं होता था। आपके कंठ-स्वर से सरस्वती की अविरल धारा प्रवाहित होती जान पड़ती थी। जिस पाठ को हम आपसे पढ़ लेते थे, उसकी बातें स्मृति पटल पर सदैव के लिये अंकित हो जाती थीं।

गुरुवर!

पढ़ाने से भी अधिक आपके व्यक्तित्व की छाप हमारे

ऊपर थी। आपका हँसमुख रूप, मधुर वाणी, सभी के साथ सौजन्य पूर्ण व्यवहार और विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति पूर्ण-वार्त्तालाप आपके उच्च व्यक्तित्व को प्रकट करते थे। ये ही गुण आपकी सर्व-प्रियता के कारण थे। आपकी उपस्थिति से विद्यार्थियों के हृदय भय के स्थान पर श्रद्धा और प्रेम से भर जाते थे। आप विद्या से भी अधिक चरित्र को महत्व देते रहे हैं और निसंदेह आपके प्रयत्न-स्वरूप हमारे चारित्रिक विकास में अभूतपूर्व सहायता मिली है। जब कभी किसी विद्यार्थी के चरित्र के विषय में आपके पास कोई शिकायत आ जाती थी, तो आपको अपार दुख होता था और तब आप अपने गहरे दुख को कितने मार्मिक और हृदय-स्पर्शी ढंग से विद्यार्थियों के सम्मुख प्रकट करते थे। अपराधी विद्यार्थी को फटकारने अथवा दण्ड देने की आवश्यकता आपको कभी अनुभव ही नहीं होती थी। लज्जा और ग्लानि से विद्यार्थी स्वयं ही नतमस्तक होकर आपके चरणों में लोटने लगता था और फिर स्वयं ही भविष्य में उस प्रकार की कोई अनुचित गति न करने की प्रतिज्ञा कर बैठता था। विद्यार्थी के ऐसा करने पर ही आपको शान्ति मिलती थी। अपने विद्यार्थियों के अच्छे कार्यों पर आप कितनी प्रसन्नता अनुभव करते थे और प्रति वर्ष अपनी निजी आय में से ही बहुत से रुपयों के पारितोषक हमारे उत्तम कृत्यों के लिये बाँट देते थे। आपके प्रेम-मय रूप की हम कहाँ तक प्रशंसा कर सकते हैं?

मान्यवर!

आपके प्रबन्ध-काल के थोड़े से वर्षों में ही हमारे स्कूल ने असाधारण उन्नति कर दिखाई है। हाईस्कूल के परीक्षा-फल में इस स्कूल का प्रथम स्थान आपके ही प्रबन्ध में रहा है।

खेल-कूद, बालचर-संस्था, अन्त्याक्षरी आदि की प्रतियोगिताओं में हमारे स्कूल को गौरवान्वित करने का श्रेय भी आपको ही प्राप्त हुआ है। विद्यार्थी ही नहीं, अपितु यह स्कूल भी सदैव आपका ऋणी रहेगा।

पूज्यवर !

हमारे हृदय आपके प्रति श्रद्धा एवं कृतज्ञता से भरे हुए हैं। हमारा यह दुर्भाग्य है कि अब अधिक हम सब आपके चरणों में बैठकर विद्याध्ययन न कर सकेंगे और आपकी छत्र-छाया से वंचित हो जायँगे। फिर भी हमें विश्वास है कि आपकी स्मृति सदैव ही हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी और आपकी शिक्षा का प्रभाव हमारे मानस-पटल पर अंकित रहेगा। हम सब विद्यार्थी अत्यन्त दुख और शोक के साथ आपको बिदा करते हैं और आपके सुख एवं दीर्घ-जीवन की सच्चे हृदय से कामना करते हैं।

हाथरस
१६ दिसम्बर १६४७ ई०

हम हैं,
श्रीमान के विनीत शिष्य,
गवर्नमैन्ट हाई स्कूल के विद्यार्थी।

विवाह का निमंत्रण-पत्र

"ॐ"

श्री गणेशायनमः

सम्मान के आपके शक्ति नहीं, पर भक्त का भक्ति में भाव तो है,
पद पंकज को सिर पर रख के, पग धलि चढ़ाने का चाव तो है॥

श्रीमान् ....

आपको यह सूचित करते हुए मुझे असीम आनंद हो रहा है कि परमात्मा की अनुकम्पा से मेरे जेष्ठ पुत्र चिरंजीव

प्रमोद कुमार का पाणिग्रहण संस्कार मथुरा निवासी श्री पंडित रामरतनजी उपाध्याय की सुपुत्री कुमारी प्रेमलता देवी के साथ शुभ मिती वैशाख शुक्ला पंचमी बृहस्पतिवार सम्वत् २००५ विक्रमी, तदनुसार तारीख १५ मई सन् १९४८ ई० को होना निश्चित हुआ है। माँड़वा, तारीख १४ मई सन् १९४८ ई० का है। अतः आपसे सविनय प्रार्थना है कि नियुक्त समय पर पधार कर मंडप तथा बारात दोनों की शोभा बढ़ाकर हमें अनुगृहीत कीजियेगा।

कार्य-क्रम निम्न प्रकार से है:-

माँड़वा—१४ मई सन् १९४८ ई०।

बारात—प्रस्थान एवं पाणिग्रहण-संस्कार—१५ मई सन् १९४८

बढ़हार—१६ मई सन् १९४८ ई०

विदा—१७ मई १९४८ ई०

आगरा

आपका दर्शनाभिलाषी
मनमोहनलाल दीक्षित,

विशेष—बारात १५ मई को प्रातःकाल दस बजे मोटर लारी द्वारा मथुरा जायगी और चौक-बाजार में लाला पूरनमल की धर्मशाला में ठहरेगी।

प्रीति-भोज का निमंत्रण-पत्र

प्रिय महानुभाव,

आपको यह सूचित करते हुए मुझे अतुलित आनन्द हो रहा है कि मेरे पुत्र चिरंजीव कमलकान्त का जन्म-दिवस शुभ मिती अगहन शुक्ला १० सोमवार सं० २००७ वि० तदनुसार तारीख १८ दिसम्बर सन् १९५० ई० का है। अतः उसके

जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में, मैंने उसी दिन एक प्रीति-भोज सायंकाल के चार बजे देने का आयोजन किया है। आपसे विनम्र निवेदन है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर मुझे अनुगृहीत कीजियेगा।

माईथान
आगरा

आपका दर्शनाभिलाषी
गौरीशंकर ओझा

समाचार-पत्र के संपादक को पत्र

श्रीमान संपादक जी,
दैनिक "सैनिक"
आगरा।

महोदय!

कृपया मुझे अपने पत्र में अपने गाँव कुरसंडा के किसानों की जलाभाव के कारण हुई दयनीय अवस्था का वर्णन करने की अनुमति दीजिये।

मेरे गाँव के किसानों को जल की कमी के कारण प्रति वर्ष ही रबी की फसल में लाखों रुपये की हानि उठानी पड़ती है। किसी ही वर्ष, जाड़ों में, कृषि के लिये यथेष्ट वर्षा-जल प्राप्त हो जाता है, अन्यथा, अनावृष्टि के कारण अधिकांश खेत सूखे ही रह जाते हैं। रबी की फसल को यदि एक बार भी जल न मिले, तो उससे उत्पादन की क्या आशा की जा सकती है? जल तो कृषि का प्राण ही है।

खरीफ की फसल में जो कुछ पैदावार होती है, उससे तो किसान, बड़ी कठिनाई से अपने परिवार की उदर-पूर्त्ति मात्र करते हुए बैसाख का महीना पकड़ पाते हैं। उनकी अन्य

आवश्यकताओं की पूर्त्ति तो रबी की फसल पर ही निर्भर होती है। वर्षा न होने के कारण यह फसल भी अधूरी रह जाती है और किसान की सारी आशाओं पर तुषारपात हो जाता है।

हमारे गाँव में जो एक छोटी सी नहर है, प्रथम तो उसके अधिकार-क्षेत्र में बहुत थोड़े से खेत आते हैं और फिर गाँव पर नहर का अन्तिम छोर होने के कारण, उससे बहुत ही कम पानी सिंचाई के लिये मिलता है।

दुर्भाग्य से हमारे यहाँ, कुँओं में जल की सतह, पृथ्वी के धरातल से ६० फुट से भी अधिक नीची है, अतः कुँओं से सिंचाई करने में अत्याधिक व्यय पड़ जाता है। बहुत थोड़े से ही किसान कुँओं द्वारा सिंचाई करने की व्यवस्था कर पाते हैं। अधिकांश, अपनी खेती को राम-भरोसे छोड़ देते हैं।

हमारे यहाँ की भूमि खेती के लिये बहुत ही उर्वरा समझी जाती है। हमारे यहाँ का गेहूँ तो समूचे जिले में अपनी विशेषता के लिये प्रसिद्ध है। खेती के अन्य साधन अनुकूल होते हुए भी, जल की कमी के कारण सब पर पानी फिर जाता है और किसानों की दशा किसी प्रकार सुधर ही नहीं पाती। यदि हमारे यहाँ सिंचाई का समुचित प्रबन्ध, सरकार की ओर से हो जाय तो, जहाँ एक ओर गाँव के किसानों की आर्थिक-अवस्था बहुत अच्छी हो सकती है, वहाँ दूसरी ओर उससे देश की वर्त्तमान अन्नोत्पादन-समस्या में सहायता भी मिल सकती है।

इस विषय में, मैं देश की जन-प्रिय सरकार से प्रार्थना करूँगा कि वह हमारे गाँव के निकट से होकर जाने वाली जल विद्युत शक्ति (हाइड्रो इलैक्ट्रिक लाइन) का उपयोग

नल-कूपों (ट्यूबवैल्स) द्वारा करे और नल-कूपों के निर्माण में किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान करे। नल-कूपों से सिंचाई की व्यवस्था हो जाने पर जलाभाव की समस्या एक प्रकार से हल हो जायगी।

मुझे आशा है कि सरकार का ध्यान शीघ्र ही हमारे गाँव की इस अत्यन्त गंभीर समस्या की ओर आकृष्ट होगा और निकट भविष्य में नल कूपों के निर्माण की व्यवस्था हो जायगी।

कुरसंडा
(मथुरा)
१८ दिसम्बर सन् १९५० } एक कुरसंडा-निवासी

याचना-पत्र

समस्त ग्राम-निवासियो !

अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक हमारे गाँव के जूनियर-हाई-स्कूल का भवन धनाभाव के कारण अधूरा पड़ा है। यह तो आप लोगों को विदित ही होगा कि जिला बोर्ड से, भवन-निर्माण के हेतु आधा रुपया स्वीकृत हो चुका है और आधे का भार गाँव-निवासियों के ऊपर डाला गया है। जिला-बोर्ड की स्वीकृति को एक वर्ष से भी अधिक होने को आया, परन्तु भवन का निर्माण-कार्य आप लोगों की सहायता के अभाव में स्थगित हुआ पड़ा है। कैसे दुख की बात है कि आपके बच्चे ऐसी सर्दी के दिनों में भी खुली हवा में बैठकर पढ़ते हैं। उनके कष्ट की दशा से क्या आपके हृदय अब भी नहीं पिघलते ? यदि इस वर्ष भी गर्मियों में गाँव के स्कूल का भवन पूरा न हो पाया तो यह हम सब के लिये डूब मरने की बात होगी। आशा है, आप

लोग इस अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विषय की ओर अपना ध्यान आकर्षित करेंगे और शीघ्रातिशीघ्र चन्दे का रुपया स्कूल-कोष में जमा कर देंगे।

निवेदक

मन्त्री, स्कूल-भवन-निर्माण-सभा

बस-स्टाप करवाने के लिये रोडवेज के मैनेजर को पत्र

श्रीमान मैनेजर साहब,

आगरा रोडवेज,

आगरा।

महोदय !

सेवा में सविनय निवेदन है कि जब से सरकारी बसें चालू हुई हैं, तब से हमारे गाँव और आस-पास की जनता को यात्रा में बहुत कठिनाई होने लगी है। अलीगढ़ से आगरा को जाने वाली पक्की सड़क हमारे गाँव कुरसंडा से लगभग एक मील की दूरी से होकर जाती है। इस स्थान पर गुरसौटी नाम का एक छोटा सा गाँव है। कई-कई मील की दूरी के गाँवों के लोग गुरसौटी से ही, पहिले मोटरों में आगरा, अलीगढ़ हाथरस आदि प्रमुख नगरों को जाते थे। बसों के चालू होने से अब हम लोग ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि बसें गुरसौटी पर नहीं ठहरतीं। अब हम लोगों को पैदल चलकर या तो हाथरस की ओर तीन मील सादाबाद तक जाना पड़ता है, या आगरे की ओर चार मील खंदौली जाना पड़ता है। सादाबाद और खँदौली के मध्य अर्थात् सात मील की दूरी में कोई बस-स्टाप नहीं है। उक्त दोनों स्थानों के मध्य में गुरसौटी ही एक ऐसा स्थान सड़क पर है, जो निकटवर्त्ती सभी गाँवों के केन्द्र बिन्दु पर स्थित है। इन गाँवों से बहुत भारी संख्या में लोग विभिन्न

स्थानों को आते-जाते रहते हैं। यदि गुरसौटी एक बस-स्टाप और कर दिया जाय तो सहस्त्रों लोगों की यात्रा-सम्बन्धी कठिनाई दूर हो जाय। इक्के, ताँगों आदि से आने-जाने में समय तो नष्ट होता ही है, साथ ही किराया भी अधिक देना पड़ता है। गुरसौटी पर बस-स्टाप बना देने से जहाँ बस-विभाग की आय में वृद्धि होगी, वहाँ बहुत सी जनता अनेक कष्टों से बच जायगी।

आशा है इस सम्बन्ध में आप शीघ्र ही समुचित व्यवस्था करवाने का आदेश जारी कर देंगे। आपकी इस कृपा के लिये हम सभी ग्रामों के निवासी अत्यन्त ही कृतज्ञ और आभारी होंगे।

निवेदक

(१) दिगम्बर सिंह, मंत्री जिला किसान पंचायत कुरसंडा

(२) रामचरन मुखिया, कुरसंडा

(३) सुलतान सिंह, सदस्य जिला बोर्ड मथुरा, बास-अमरू

(४) सरदार सिंह मुखिया, गुरसौटी

(५) प्रेमनरायन पटवारी, गीगला

(६) बेदराम, लम्बरदार, बेदई

कुरसंडा (मथुरा)
१५ जनवरी सन्
१९५० ई०

———

कलक्टर साहब को लगान माफ कराने का प्रार्थना-पत्र

सेवा में :—

श्रीमान् कलक्टर साहब,

मथुरा

मान्यवर,

हम नौगाँवा निवासी किसान आपकी सेवा में निवेदन करते हैं कि इस वर्ष अत्यधिक शीत के कारण हमारी रवी की फसल को बहुत हानि पहुँची है। फलत: गेहूं, जो, वेझर और अरहर की पैदावार अत्यन्त ही कम हुई है। अरहर का तो एक दाना भी हम अपने खेतों से नहीं उठा पाये हैं। ईश्वर ही जानता है कि हम किस प्रकार अपने दिन काट रहे हैं। चारे की कमी के कारण हमारे मवेशी सूख कर काँटा हो गये हैं। दूसरे वर्ष, कुछ अनाज वेच कर हम लोग वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं को खरीद लेते थे, सो इस वार पेट भर कर खाने का भी प्रवन्ध नहीं है। ऐसी दशा में जमींदार का लगान हम किसी भी प्रकार नहीं चुका सकते। अत: आप से हस्त-वद्ध होकर प्रार्थना करते हैं कि रवी के लगान से हम लोगों को मुक्त कर दिया जाय। हमारे वाल-वच्चों की रक्षा आपके ही ऊपर है।

आशा है, हमारी यह करुण पुकार आपके कोमल हृदय को स्पर्श कर सकेगी। इस कृत्य के लिये हम सव नौगाँवा-निवासी आपके आजन्म आभारी रहेंगे।

श्रीमान के आज्ञाकारी सेवक—

(१) हुब्बलाल काश्तकार

(२) रामजीलाल मौरूसीदार

(३) हरनारायण लम्बरदार
नौगाँवा, (४) करन सिंह
(मथुरा) (५) किशोरी लाल
१० मई सन् १९५० ई० इत्यादि

थानेदार की शिकायत

सेवा में—

श्रीमान् पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब,
आगरा

मान्यवर,

सेवा में सविनय प्रार्थना है कि सैमरा गाँव के थानेदार साहब के अत्याचारों से निकटवर्त्ती जनता में त्राहि त्राहि मच रही है। रुपया ऐंठने के उद्देश्य से वह लोगों में फूट डाल कर एक दूसरे के विरुद्ध झूठी रिपोर्ट करवाते रहते हैं। जब उनका उल्लू सीधा नहीं होता है तो वह लोगों को जेल भिजवा देने की धमकी देते हैं और थाने में बुलाकर उन्हें सिपाहियों से पिटवाते हैं। कई एक भले आदमियों के चालान भी उन्होंने कर दिये हैं और अपने दबाव से झूठे गवाह उपस्थित करके, दो एक निर्दोष व्यक्तियों को सजा भी करा दी है। इससे सारी जनता में उनका आतंक बढ़ गया है। थानेदार साहब के नाम से लोग काँपने लगते हैं। आये दिन ही किसी को थानेदार साहब के घर घी पहुँचाना पड़ता है तो किसी को गेहूँ। थाने के-सिपाही तो प्रति दिन ही गाँवों में चक्कर लगाते रहते हैं और जिससे जो माल मिल जाता है उसी को लेकर चम्पत हो जाते हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी इज्जत को बचा कर नहीं रख सकता। जहाँ कभी किसी ने थानेदार साहब की अनुचित आज्ञा का उल्लंघन

किया, कि उस पर सटासट बेंतों की वर्षा होने लगती है।

दो एक बार कुछ लोगों ने थानेदार साहब के अत्याचारों की कहानी समाचार-पत्रों को भी भेजी है परन्तु अभी तक उसका कुछ भी परिणाम नहीं निकला है। न्यायालय में कोई इसलिये प्रार्थना-पत्र नहीं भेजता कि थानेदार साहब के विरुद्ध गवाही देने का किसी को साहस नहीं है।

अतः अब आपसे ही यह गुप्त प्रार्थना है कि उक्त विषय में खुफिया जाँच कराके थानेदार साहब को उनके कार्यों के लिये उचित दण्ड की व्यवस्था की जाय। इसके लिये हम सभी ग्रामीण लोग आपके कृतज्ञ होंगे।

सैमरा
(आगरा)
११ जुलाई सन् १९४९ ई०

निवेदक
एक ग्रामीण

पोस्ट-मास्टर की शिकायत

सेवा में--

श्रीमान् सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब,
पोस्ट आफिस, अलीगढ़।

महोदय !

सेवा में निवेदन है कि जब से स्थानीय पोस्ट मास्टर साहब यहाँ आये हैं तब से डाकखाने के सम्बन्ध में जनता की शिकायतें बहुत बढ़ गई हैं। मनीआर्डर के फार्मों और पोस्टकार्ड एवं लिफाफों के लिये लोगों को पोस्ट आफिस की खिड़की पर घण्टों खडे रहना पड़ता है। पोस्ट मास्टर साहब अपने कागजों की देख-भाल में ही दिन भर व्यस्त रहे आते हैं। जब कोई व्यक्ति उनसे दूसरी बार लिफाफा या

पोस्टकार्ड माँगने को कह उठता है, तो पोस्ट मास्टर साहब झिड़क देते हैं और कह देते हैं कि जब तक मैं अपना काम समाप्त नहीं कर लूँगा, तब तक कोई वस्तु नहीं दूँगा। गरीब और अनपढ़ लगने वाले व्यक्ति को तो वह गाली भी देने लगते हैं। डाक बाँटने का भी अब नियमित समय नहीं रहा है। जब पोस्ट मास्टर चाहते हैं तभी डाक बँटती है। हमारे गाँव में आने वाले समाचार-पत्र तो पोस्ट आफिस में आने के ठीक दूसरे दिन बाँटे जाते हैं, कारण यह है कि पोस्ट मास्टर साहब एक दिन स्वयं उन्हें पढ़ कर बँटवाते हैं।

कुछ संभ्रान्त लोगों ने दो एक बार पोस्ट मास्टर साहब से स्वयं जाकर डाक की गड़बड़ी के विषय में शिकायत की है, परन्तु उसका प्रभाव विपरीत ही होता देखा गया है। अन्त में निराश होकर, अब आपके पास ही यह शिकायत भेजी जा रही है। आशा है कि शीघ्र ही इस विषय में आप जाँच कराने की व्यवस्था करेंगे और जनता के कष्टों का निवारण करेंगे।

होलीपुरा
५ मार्च सन् १९४७ ई०

निवेदक
रघुवरदयाल

छुट्टी का प्रार्थना-पत्र

सेवा में—

श्रीमान् हैडमास्टर साहब,
गवर्नमेन्ट हाई-स्कूल,
आगरा।

मान्यवर,

सेवा में सविनय निवेदन है कि मेरे बड़े भाई का विवाह १५ दिसम्बर सन् १६५६ का है। पिताजी ने १४ दिसम्बर को घर पहुँच जाने के लिये मुझे लिखा है। विवाह में चार दिन दिन की छुट्टी तो आवश्यक है, अतः प्रार्थना है कि मुझे १४ दिसम्बर से १७ दिसम्बर तक की छुट्टी प्रदान की जाय। मैं श्रीमान् का बहुत अनुगृहीत हूँगा।

आगरा
१० दिसम्बर
१६५६ ई०

आपका आज्ञाकारी छात्र
उमेशचन्द्र शर्मा
कक्षा १० अ

चिकित्सालय खोलने के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन को प्रार्थना-पत्र

सेवा में:—

श्रीमान् अध्यक्ष, जिला बोर्ड,
मथुरा

माननीय!

सेवा में निवेदन है कि हमारे गाँव विसावर में कोई भी चिकित्सालय नहीं है अतः ग्रामीण जानता इसके अभाव में बहुत दुखी है। आस पास कई कई मील तक भी कोई

औषधालय नहीं है। हमारे गाँव की जनसंख्या लगभग चार हजार के है। इतनी बड़ी जनसंख्या के होते हुए भी यहाँ चिकित्सालय का न होना हमारे लिये बड़े दुर्भाग्य की बात है। गाँव में दो चार जो वैद्य हैं, वे भयंकर बीमारियों के समय, साधनाभाव के कारण लोगों की सेवा करने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि गाँव में जिलाबोर्ड की ओर से एक चिकित्सालय खोल दिया जाय, तो उससे आस पास के बहुत से अन्य गाँव भी लाभ उठा सकेंगे।

हमें पूरी आशा है कि श्रीमान् जी इस दुखी बिसावर निवासियों की इस विनम्र प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे, और शीघ्रातिशीघ्र एक चिकित्सालय खोलने की व्यवस्था करेंगे।

हम हैं,

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक

(१) जगतनरायण जमीदार

(२) कोमल प्रसाद चेयर मैन टाउन एरिया

(३) विश्वेश्वर नाथ, हैडमास्टर जूनियर-हाई स्कूल बिसावर

(४) अमोलक चन्द पटवारी इत्यादि

बिसावर (मथुरा)
२१ मार्च सन् १९४८

फीस माफ़ कराने का प्रार्थना-पत्र

सेवा में:--

श्रीमान् हैडमास्टर साहब,
विक्टोरिया, हाई स्कूल, आगरा

मान्यवर,

सेवा में निवेदन है कि इस वर्ष मैं आपके स्कूल में नवीं कक्षा में दाखिल हुआ। पिछले वर्ष मैंने हिन्दी-मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में, सादाबाद (मथुरा) मिडिल-स्कूल से पास की थी। तदनंतर, मैं, एक स्थानीय प्राइवेट स्कूल में अँगरेजी पढ़ता रहा और इस वर्ष आपके स्कूल में उपस्थित हुआ हूँ।

मेरे पिता जी, रसीदपुर गाँव में कुल बीस बीघा जमीन के मौरूसीदार हैं। मेरे दो भाई और तीन बहिनें हैं। पिताजी, किसी प्रकार दिन रात परिश्रम करके इतना अनाज अपने थोड़े से खेत में उत्पन्न कर लेते हैं, जिससे हमारे परिवार का पेट भर जाता है। मुझे हिन्दी-मिडिल तक भी शिक्षा दिलाने में, पिताजी असमर्थ थे, परन्तु पढ़ाई में मेरी विशेष रुचि देख कर, मिडिल-स्कूल के हैडमास्टर साहब ने मेरी फीस माफ करदी और इस प्रकार मैंने अब तक की पढ़ाई समाप्त की।

पिताजी, अपनी संकट-पूर्ण आर्थिक-अवस्था के कारण नहीं चाहते थे कि मैं अब आगे पढ़ूँ, परन्तु उनके विरोध करने पर भी आपके स्कूल में मैं दाखिल होगया हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि जिस प्रकार अब तक मेरी सहायता होती रही है, उसी प्रकार आप भी मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि करेंगे। अतः इस स्कूल की फीस माफ कराने के लिये ही मेरा यह

प्रार्थना-पत्र है। यदि यहाँ मेरी फीस माफ नहीं हुई तो मुझे अपना अध्ययन-कार्य बड़े दुख के साथ समाप्त करना पड़ेगा।

आशा है आप, मेरी असहाय दशा पर अवश्य दया करेंगे और मेरी फीस माफ करने की कृपा करेंगे। इसके लिये मैं अत्यन्त ही अनुग्रहीत हूँगा

आपका आज्ञाकारी विद्यार्थी

आगरा
३ अगस्त १९४९

रमेशचन्द्र पाठक
कक्षा ९ अ

नौकरी के लिये प्रार्थना-पत्र

सेवा में—

श्रीमान पंचायत-राज-आफिसर जिला मथुरा,
मथुरा।

सेवा में निवेदन है कि कल के 'व्रज-वाणी' समाचार-पत्र के एक विज्ञापन से मुझे विदित हुआ है कि आपको गाँव-पचायतों में कार्य करने के लिये एक इन्सपैक्टर की आवश्यकता है। अतः इस पद के लिये मेरा यह प्रार्थना पत्र है। मेरी योग्यता का विवरण इस प्रकार है--

सन् १९४८ में, मैंने विक्टोरिया हाई-स्कूल से एन्ट्रेन्स की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् सन् १९५० में मैंने आगरा कालेज से इन्टर की परीक्षा दी और इस परीक्षा में मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ आगे पढ़ने की मेरी प्रबल इच्छा होते हुए भी मैं धनाभाव के कारण ऐसा न कर सका और मुझे कालेज छोड़ना पड़ा।

मैं एक गाँव का रहने वाला हूँ और इसलिये ग्रामीण

कार्यों में ही सदैव मेरी रुचि रही है। गाँव-पंचायत के एक इन्सपैक्टर के पद पर कार्य करके मुझे ग्रामीण भाइयों की सेवा करने का बहुत कुछ अवसर प्राप्त होगा। इस कार्य में मुझे विशेष रुचि है अतः मैं अपनी संपूर्ण शक्तियों से काम कर सकूँगा। ग्रामीण परिस्थितियों, लोगों की अभिरुचि एवं वहाँ के रहन-सहन का मुझे अच्छा ज्ञान है। मेरा यह अनुभव मेरे कार्य में बहुत सहायक होगा।

मेरी अवस्था इस समय २२ वर्ष की है और मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। स्कूल और कालेज में मैं सदैव ही खेल कूदों में भाग लेता रहा हूँ और कई बार मुझे पारितोषक भी मिल चुके हैं। स्कूल और कालेज में होने वाले वादविवादों में मुझे प्रतिवर्ष अपने भाषण के लिये प्रथम स्थान मिलता रहा है। मैं भली भाँति लोगों की भीड़ में निःसंकोच भाषण कर सकता हूँ।

अपने चरित्र, और खेल-कूदों के सम्बन्ध में मिले हुए कुछ प्रशंसा पत्र मैं इस प्रार्थना-पत्र के ही साथ आपके निरीक्षणार्थ भेज रहा हूँ। ये सब मेरे उक्त कथन की पुष्टि करेंगे।

आशा है कि आप मेरी योग्यताओं को देखते हुए मुझे गाँव-पंचायतों के एक इन्सपैक्टर का पद देने की अवश्य कृपा करेंगे। इसके लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँगा।

सादाबाद (मथुरा) — प्रार्थी
५ दिसम्बर सन् १९५० — सुरेशचन्द्र उपाध्याय

शोक-पत्र

(मित्र को उसकी माता की मृत्यु पर)

राजामंडी
आगरा, २७ मार्च सन् ४७

प्रिय कैलाशनाथ ! नमस्ते

कल अत्यन्त दुख के साथ, मैंने आपकी पूज्य माताजी के स्वर्गवास होने का समाचार सुना। मैं कल्पना नहीं कर सकता कि उनकी इस असामयिक मृत्यु से आपको तथा अन्य पारिवारिक जनों को कितना दुख हुआ होगा। आपके घर के संचालन का सारा बोझ केवल माताजी के ही ऊपर तो था। उन जैसी योग्य और गृह-कार्य में कुशल महिला मैंने अन्यत्र कदाचित ही देखी हों। मेरे ऊपर तो उनका विशेष स्नेह था। जब कभी मैं आपके यहाँ आता था, तो माताजी मुझे देख कर फूली नहीं समाती थीं। वह मुझे आपके समान ही अपना बेटा समझती थीं। उनके गुणों से सारे पड़ौसी उनका सम्मान करते थे। सभी के लिये उनके हृदय में प्रेम की सरिता प्रवाहित होती रहती थी और यही कारण था कि घर के लोगों के अतिरिक्त बाहर वाले भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। भाई, आपके समूचे परिवार पर, माताजी के इस निधन से वज्र-पात सा हुआ है। क्या किया जाय ? विधि की गति विचित्र है।

इस दारुण शोक के समय भी मैं आपको यही लिखूँगा कि धैर्य से काम लेना चाहिये और विपत्तियों को साहस के साथ झेलना चाहिये। आपके दुख में, मैं अपनी समवेदना प्रकट करता हूँ और आपकी माताजी की दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये कामना करता हूँ।

आपके दुख से दुखी
प्रकाशचन्द्र मीतल

शोक-प्रस्ताव

समस्त कुरसंडा-निवासियों की यह गाँव-सभा, भारतीय-स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रगण्य एवं कर्मठ नेता, और वर्त्तमान भारत-सरकार के गृह-मंत्री, सरदार वल्लभ भाई पटैल की इस असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह दुख-संतप्त परिवार को सान्त्वना एवं दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

कुरसंडा
२० दिसम्बर सन् १६५०

प्रशंसा-पत्र

द्वारिकाप्रसाद उपाध्याय
बी० ए० एल० टी०
हैड मास्टर, गवर्नमेंट हाई-स्कूल
हाथरस

मुझे यह प्रमाणित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि श्रीसुरेन्द्रनाथ शर्मा ने मेरे स्कूल में तीन वर्ष विद्याध्ययन किया है और इस वर्ष ये हाई-स्कूल की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हैं। पढ़ने में इनकी विशेष रुचि है। खेल-कूद के कार्यों में भी ये सदैव भाग लेते रहे हैं और फुटबाल के मैचों में इन्हें पुरुष्कार मिलता रहा है। इनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम है। वाद-विवादिनी सभाओं एवं अन्त्याक्षरी सम्मेलनों में भी ये भाग लेते रहे हैं।

मैंने श्री सुरेन्द्रनाथ जैसे उच्च चरित्र के बहुत कम विद्यार्थी देखे हैं। आज्ञा-पालन, नम्रता, शिष्टाचार एवं सौजन्यता आदि विद्यार्थियोचित सभी गुण इनमें वर्त्तमान है। कर्त्तव्य-

पालन में तो मेरे स्कूल का कोई विद्यार्थी इनकी समता नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है कि जिस पद पर ये कार्य करेंगे। उसके उत्तरदायित्व का पूरा निर्वाह करेंगे। मेरी कामना है कि जीवन में ये सफलता और समृद्धि प्राप्त करें।

द्वारिकाप्रसाद उपाध्याय
तारीख १ अगस्त सन् १६४८

सूचना-पत्र

सर्व साधारण को विदित हो कि आज शाम को ७ बजे नागरी-प्रचारणी-सभा आगरा के भवन में एक वृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। कवि-सम्राट बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त सभापति का आसन ग्रहण करेंगे। नगर के तथा बाहर के कई प्रसिद्ध कवियों के आने की संभावना है। अतः सभी लोगों से आग्रह है कि उचित समय पर अधिक से अधिक संख्या में नियुक्त-स्थान पर पधार कर कवि-सम्मेलन को सफल बनाने का प्रयत्न करें।

तारीख २ जनवरी सन् १६४६ — निवेदक
मंत्री—नागरी-प्रचारिणी-सभा आगरा

भारतीय गण-तन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति
महामान्य डाक्टर श्री राजेन्द्रप्रसाद की
सेवा में
सादर श्रद्धाञ्जलि

महामान्य,

आज आगरा कालिज अपने सुदीर्घ जीवन के सवासौ से कुछ अधिक वर्ष पूर्ण कर शतोत्तरीय रजत-जयंती महोत्सव मना रहा है। इस संस्मरणीय और हर्ष वर्धक सुअवसर पर महाविद्यालय छात्र-संघ के सदस्यगण श्रीमान् के चरणारविन्दों में अपनी स्वागत-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए अपार आनन्द और अपूर्व गौरव अनुभव कर रहे हैं। आप इस महिमामयी मातृ-भूमि की परम प्राचीन पावन परम्परा-पूर्ण सत्संकृति के पुण्य प्रतीक हैं, अतः आज आपको इस जयन्ती महोत्सव के अध्यक्षीय पीठ पर प्रतिष्ठित देख हमें अपार और अकथनीय प्रसन्नता प्राप्त हो रही है।

देशरत्न,

आप प्रकाण्ड पंडित, विमल विचार-धारा धुरीण, ओजस्वी लेखक सुविख्यात विधि-विधानज्ञ, गम्भीर और दूरदर्शी राजनीति निपुण नेता ही नहीं, अपितु सदाचार-पूर्ण-जीवन और उदार एवं उच्च आदर्शों की सजीव प्रतिमा हैं। भारतीय जन-तन्त्र के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होकर भी आपका संयत-सात्विक तपोमय जीवन जनता के दुःख-सुख में तदाकार दृष्टिगत होता है। भारतीय स्वतन्त्रता-समर के सफल सत्याग्रही सत्य और अहिंसा के अविचल अनुयायी, भारतीय सुख समृद्धि के सजग प्रहरी, हमें अभिमान है कि हमारे राष्ट्र रथ के सुदक्ष सारथी आप हैं।

महानुभाव,

हमारी यह मात्र-संस्था आगरा कालिज, जिसे आज आपके पावन पदार्पण से अपने को पवित्र करने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है, स्वर्गीय श्री गंगाधर शास्त्री की विवेक पूर्ण वदान्यता से उद्भूत एक विद्या-मन्दिर के रूप में १८२३ ई० में संस्थापित हुई थी। उत्तरी भारत की यह प्राचीनतम शिक्षा-संस्था है। आर्थिक कृच्छता जन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ संघर्ष करता हुआ, यह महाविद्यालय आशातीत उन्नति मार्ग पर अग्रसर हुआ है। इसमें शिक्षा प्राप्त किये हुए कई विद्वानों ने उत्तर-भारत, मध्य-भारत राजपूताना आदि के सुविस्तीर्ण क्षेत्रों तक ज्ञान-विज्ञान की समुज्ज्वल ज्योति का विस्तार किया है।

आगरा कालिज का यह संघ पिछले अनेक वर्षों से विभिन्न कलाओं के गम्भीर और मनोरञ्जक कार्य-क्रमों द्वारा अपनी विचार-धाराओं की अनवरत अभिव्यक्ति करता आ रहा है। सार्वजनिक सम्भाषण-कला, विविध विषयों पर स्वतन्त्र और सुस्पष्ट सवाक् चिन्तन, संसदीय जनतंत्र की प्रमुख पद्धतियों का शिक्षण हमें इस महाविद्यालय द्वारा निरन्तर प्राप्त होता रहा है। संघ के तत्वावधान में महान् जन-नायकों, सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियों और विशेषज्ञ विद्वानों ने समय-समय पर पधार कर अपनी विवेक-वचनावलियों द्वारा हमारा ज्ञान-वर्द्धन किया है। लगभग अठारह वर्ष पूर्व इसी महाविद्यालय में दिये गये आपके प्रेरणापूर्ण अभिभाषण की ओजस्विनी शब्द-योजना आज भी अनेक व्यक्तियों के कर्ण-कुहरों में गम्भीरता से गूँज रही है।

शान्ति दूत,

स्वतंत्र भारत में इस संघ को भी स्वातन्त्र्य-भावना के

लिये अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ है, जो कि व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। जननी-जन्म-भूमि की सात्विक सेवा की भद्र भाव से ओत-प्रोत, महाविद्यालय द्वारा संस्थापित 'सेवादल' अपना अस्तित्व चरितार्थ करने के लिये सदैव सचेत और सचेष्ट है। ज्यों-ज्यों यह महाविद्यालय अपने उद्योगों और आयोजनों में सफल होता जाता है त्यों-त्यों इसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। हमारे पुस्तकालय, वाचनालय, छात्रालय और प्रयोगशालाएँ आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त नहीं हैं। महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त प्राचीन व्यक्ति और वर्तमान विद्यार्थी-वृन्द, सार्वजनिक साहाय्य द्वारा किसी अंश में आवश्यकता पूर्ति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि आपका कृपा पूर्ण संरक्षण उपलब्ध कर यह महाविद्यालय राजकीय साहाय्य और प्रोत्साहन प्राप्त करने में सफल-प्रयत्न होगा। वह दिन धन्य होगा, जब आपकी कृपा-कोर पाकर यह महाविद्यालय। 'साश्रम विश्व-विद्यालय' का रूप धारण कर हमारे सुख-स्वप्न को साकार करेगा।

आपने हमारी विनम्र विनती पर इस महाविद्यालय में पधार कर हमें जो प्रतिष्ठा प्रदान की है, तदर्थ हम हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए आशा पूर्ण हैं कि भविष्य में भी इसी प्रकार हमारे ऊपर अपार अनुकम्पामृत और असीम स्नेह-सुधा की विमल वर्षा करते रहेंगे।

हम हैं, आपके अनुयायी
आगरा कालिज के
छात्र-संघ के सदस्य

आगरा कालिज
२६-१-१९५१